बी.एड. द्वितीय वर्ष

शांति शिक्षा

(PEACE EDUCATION)

GEDE-21

मध्यप्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय – भोपाल

MADHYA PRADESH BHOJ (OPEN) UNIVERSITY - BHOPAL

Reviewer Committee

1. Dr. M.Sen Gupta
   Professor
   Regional Institute Of Education, NCERT Bhopal (M.P.)

2. Dr. Diwakar Singh
   Professor
   Christ College, Bhopal (M.P.)

3. Pravini Pandaagle
   Professor
   NRI Group Of Institutions, Bhopal (M.P.)

Advisory Committee

1. Dr. Jayant Sonwalkar
   Hon'ble Vice Chancellor
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University,
   Bhopal (M.P.)

2. Dr. L.S. Solanki
   Registrar
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)

3. Dr. Hemlata Dinkar
   HOD, DME
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)

4. Dr. M.Sen Gupta
   Professor
   Regional Institute Of Education,
   NCERT Bhopal (M.P.)

5. Dr. Diwakar Singh
   Professor
   Christ College, Bhopal (M.P.)

6. Pravini Pandaagle
   Professor
   NRI Group Of Institutions, Bhopal (M.P.)

COURSE WRITERS

Manisha Singh, Assistant Professor, New Era College of Science & Technology, Ghaziabad
Units (1-2)

Copyright © Reserved, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Registrar, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal.

Information contained in this book has been published by VIKAS® Publishing House Pvt. Ltd. and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, the Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal, Publisher and its Authors shall in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use.

Published by Registrar, MP Bhoj (Open) University, Bhopal in 2020

VIKAS®

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.

VIKAS® PUBLISHING HOUSE PVT. LTD.
E-28, Sector-8, Noida - 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 • Fax: 0120-4078999
Regd. Office: A-27, 2nd Floor, Mohan Co-operative Industrial Estate, New Delhi 1100 44
• Website: www.vikaspublishing.com • Email: helpline@vikaspublishing.com

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

शांति शिक्षा

Syllabi	Mapping in Book
इकाई–1 शांति की समझ : शांति की प्रासंगिकता के बारे में जागरूकता शांति की चुनौतियां : तनाव (प्रतिबल), संघर्ष, अपराध, आतंकवाद, हिंसा, संकट शांति मूल्य बनाम संवैधानिक मूल्य भिन्नताओं एवं पारिस्थितिक संसाधनों का सम्मान शांति की स्थापना समाज में शांति के लिए पूर्व आवश्यकताएं : अंतर–सांस्कृतिक सद्भाव धर्मनिरपेक्ष और लोकतांत्रिक विचारों के लिए उत्तरदायी नागरिकता का सम्मानः ऐतिहासिक अवधारणाएं संधारणीय या सतत् विकास जीवनशैली और सतत् विकास शांति शिक्षा के दृष्टिकोण शांति के विभिन्न सिद्धांतों की मुख्य विशेषताएं : गांधी, अरविंदो, विवेकानंद, टैगोर और दलाई लामा राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पहल संघर्षों की समझ और समाधान संघर्ष का स्वरूप एवं प्रकार संघर्ष समाधान मध्यस्थता एवं संघर्ष समाधान की सृजनात्मक नीतियां	**इकाई 1** : एक सामाजिक आवश्यकता के रूप में शांति **(पृष्ठ 3–113)**
इकाई–2 पाठ्यक्रम प्रक्रियाओं पर महत्वपूर्ण चिंतन विभिन्न समूहों– लिंग, जाति, संस्कृति के लिए कक्षा के बाहर स्वस्थ अनुशासन पद्धतियां कक्षा के बाहर शिक्षा अनुशासन के लिए दंडात्मक की अपेक्षा सुधारात्मक दृष्टिकोण शांति शिक्षा का महत्वपूर्ण शिक्षाशास्त्र स्कूल स्तर पर तनाव, परीक्षा भय, शारीरिक दंड, हिंसा और संघर्ष को दूर करने के शैक्षणिक कौशलों एवं रणनीतियों के बारे में जागरूकता शैक्षिक, व्यक्तिगत, सामाजिक और सांस्कृतिक विषयों से संबंधित व्यवहार में करुणा, प्रेम, देखभाल का समावेशन शांति के मूल्यों को स्पष्ट करने हेतु पाठ्यपुस्तक सामग्री का प्रयोग शांति शिक्षक बनना संवाद के लिए श्रवण कौशल का विकास संभाषणमूलक (संवाद के लिए) श्रवण प्रक्रिया श्रवण कौशल का संवर्धन व विकास भाव और अभिव्यक्ति की चेतना का विकास सामाजिक–आर्थिक, सांस्कृतिक तथा लिंग और जाति भेद के प्रति संवेदनशीलता संवेगात्मक सहायता के कौशल	**इकाई 2** : शांति शिक्षा का शिक्षाशास्त्र **(पृष्ठ 115–182)**

विषय–सूची

परिचय 1

इकाई 1 एक सामाजिक आवश्यकता के रूप में शांति 3–113

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 शांति की समझ : शांति की प्रासंगिकता के बारे में जागरूकता
 1.2.1 शांति की चुनौतियां : तनाव (प्रतिबल), संघर्ष, अपराध, आतंकवाद, हिंसा, संकट
 1.2.2 शांति मूल्य बनाम संवैधानिक मूल्य
 1.2.3 भिन्नताओं एवं पारिस्थितिक संसाधनों का सम्मान
1.3 शांति की स्थापना
 1.3.1 समाज में शांति के लिए पूर्व आवश्यकताएं : अंतर–सांस्कृतिक सद्भाव
 1.3.2 धर्मनिरपेक्ष और लोकतांत्रिक विचारों के लिए उत्तरदायी नागरिकता का सम्मान : ऐतिहासिक अवधारणाएं
 1.3.3 संधारणीय या सतत् विकास
 1.3.4 जीवनशैली और सतत् विकास
1.4 शांति शिक्षा के दृष्टिकोण
 1.4.1 शांति के विभिन्न सिद्धांतों की मुख्य विशेषताएं : गांधी, अरविंदो, विवेकानंद, टैगोर और दलाई लामा
 1.4.2 राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पहल
1.5 संघर्षों की समझ और समाधान
 1.5.1 संघर्ष का स्वरूप एवं प्रकार
 1.5.2 संघर्ष समाधान
 1.5.3 मध्यस्थता एवं संघर्ष समाधान की सृजनात्मक नीतियां
1.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.6 सारांश
1.7 मुख्य शब्दावली
1.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.9 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 2 शांति शिक्षा का शिक्षाशास्त्र 115–182

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 पाठ्यक्रम प्रक्रियाओं पर महत्वपूर्ण चिंतन
 2.2.1 विभिन्न समूहों– लिंग, जाति, संस्कृति के लिए कक्षा के बाहर स्वस्थ अनुशासन पद्धतियां
 2.2.2 कक्षा के बाहर शिक्षा
 2.2.3 अनुशासन के लिए दंडात्मक की अपेक्षा सुधारात्मक दृष्टिकोण
2.3 शांति शिक्षा का महत्वपूर्ण शिक्षाशास्त्र
 2.3.1 स्कूल स्तर पर तनाव, परीक्षा भय, शारीरिक दंड, हिंसा और संघर्ष को दूर करने के शैक्षणिक कौशलों एवं रणनीतियों के बारे में जागरूकता
 2.3.2 शैक्षिक, व्यक्तिगत, सामाजिक और सांस्कृतिक विषयों से संबंधित व्यवहार में करुणा, प्रेम, देखभाल का समावेशन
 2.3.3 शांति के मूल्यों को स्पष्ट करने हेतु पाठ्यपुस्तक सामग्री का प्रयोग
2.4 शांति शिक्षक बनना
 2.4.1 संवाद के लिए श्रवण कौशल का विकास
 2.4.2 संभाषणमूलक (संवाद के लिए) श्रवण प्रक्रिया
 2.4.3 श्रवण कौशल का संवर्धन व विकास

2.4.4 भाव और अभिव्यक्ति की चेतना का विकास
2.4.5 सामाजिक–आर्थिक, सांस्कृतिक तथा लिंग और जाति भेद के प्रति संवेदनशीलता
2.4.6 संवेगात्मक सहायता के कौशल
2.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.6 सारांश
2.7 मुख्य शब्दावली
2.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.9 सहायक पाठ्य सामग्री

परिचय

टिप्पणी

प्रस्तुत पुस्तक 'शांति शिक्षा' का लेखन विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित बी.एड. द्वितीय वर्ष के पाठ्यक्रम के अनुरूप किया गया है।

शांति का उद्देश्य पूरी दुनिया में अहिंसा, प्रेम और भाईचारा स्थापित करना है। यह एक ऐसा मूल्य है जिसे दुनिया का प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक समुदाय या राष्ट्र चाहता है। बढ़ते तनाव, विवादों, हिंसा और युद्धों के चलते शांति की जितनी जरूरत आज है उतनी शायद पहले कभी महसूस नहीं की गई थी। विकास व्यक्तिगत हो, सामूहिक हो या सामाजिक, विकास की पहली शर्त शांति का होना ही है।

शांति अपने आप में केवल अकेला मूल्य ही नहीं है बल्कि अपने साथ अन्य मूल्यों जैसे दया, करुणा, अहिंसा, प्रेम व सद्भाव को समेटे रहता है। देश का विकास इस बात पर निर्भर करता है कि देश में आंतरिक रूप से कितनी शांति है और विश्व के अन्य देशों से उसके कितने मधुर संबंध हैं। शांति वर्तमान की एक अपरिहार्य व विशद् आवश्यकता है।

इस पुस्तक में शांति शिक्षा से संबंधित सभी पहलुओं का स्तरीय अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इकाई के आरंभ में उससे संबंधित विषय का परिचय और उद्देश्य स्पष्ट कर दिए गए हैं। विद्यार्थियों के स्व–मूल्यांकन के लिए प्रत्येक इकाई के बीच–बीच में 'अपनी प्रगति जांचिए' स्तंभ के तहत वैकल्पिक प्रश्न भी दिए गए हैं। अध्ययन की सुविधा के लिए समूचे पाठ्यक्रम को दो इकाइयों में समायोजित किया गया है। इन इकाइयों का विवरण इस प्रकार है–

पहली इकाई 'एक सामाजिक आवश्यकता के रूप में शांति' पर केंद्रित है। इसमें शांति की अवधारणा, शांति की स्थापना, शांति शिक्षा के दृष्टिकोण, शांति की चुनौतियां, शांति के मूल्य, संघर्षों की समझ व समाधान आदि तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है।

दूसरी इकाई शांति शिक्षा के शिक्षाशास्त्र पर आधारित है। इसमें शांति शिक्षा में पाठ्यक्रम प्रक्रिया, कक्षा के बाहर शिक्षा, शांति शिक्षा के लिए महत्वपूर्ण शिक्षाशास्त्र, स्कूल स्तर पर तनाव, परीक्षा भय, शारीरिक दंड और संघर्ष आदि के शैक्षिक कौशल एवं नीतियां, शांति शिक्षक बनने की प्रक्रिया आदि विषयों का विस्तृत वर्णन किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक में 'शांति शिक्षा' से संबंधित सभी आवश्यक पहलुओं का विश्लेषण सरल एवं रोचक रूप से किया गया है। हमें आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक अध्येताओं का ज्ञानवर्धन कर उनके मार्गदर्शन में सहायक सिद्ध होगी।

इकाई 1 एक सामाजिक आवश्यकता के रूप में शांति

टिप्पणी

संरचना

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 शांति की समझ : शांति की प्रासंगिकता के बारे में जागरूकता
  1.2.1 शांति की चुनौतियां : तनाव (प्रतिबल), संघर्ष, अपराध, आतंकवाद, हिंसा, संकट
  1.2.2 शांति मूल्य बनाम संवैधानिक मूल्य
  1.2.3 भिन्नताओं एवं पारिस्थितिक संसाधनों का सम्मान
1.3 शांति की स्थापना
  1.3.1 समाज में शांति के लिए पूर्व आवश्यकताएं : अंतर–सांस्कृतिक सद्भाव
  1.3.2 धर्मनिरपेक्ष और लोकतांत्रिक विचारों के लिए उत्तरदायी नागरिकता का सम्मान : ऐतिहासिक अवधारणाएं
  1.3.3 संधारणीय या सतत् विकास
  1.3.4 जीवनशैली और सतत् विकास
1.4 शांति शिक्षा के दृष्टिकोण
  1.4.1 शांति के विभिन्न सिद्धांतों की मुख्य विशेषताएं : गांधी, अरविंदो, विवेकानंद, टैगोर और दलाई लामा
  1.4.2 राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पहल
1.5 संघर्षों की समझ और समाधान
  1.5.1 संघर्ष का स्वरूप एवं प्रकार
  1.5.2 संघर्ष समाधान
  1.5.3 मध्यस्थता एवं संघर्ष समाधान की सृजनात्मक नीतियां
1.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.6 सारांश
1.7 मुख्य शब्दावली
1.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.9 सहायक पाठ्य सामग्री

1.0 परिचय

शांति शिक्षा का अर्थ है– शांति की शिक्षा और शांति के लिए शिक्षा प्राप्त करना। इसे अपेक्षाकृत कम हिंसक ढंग से सब के साथ मिलकर रहने की मानव–क्षमता के विकास की एक सर्वांगीण प्रक्रिया के रूप में देखा जाता है। इसका लक्ष्य परंपरागत मानवीय मूल्यों की संरचना के भीतर रहते हुए मनुष्य के शारीरिक, संवेगात्मक, बौद्धिक और सामाजिक विकास की शिक्षा देना है। यह वस्तुतः शिक्षा के एक सर्वांगीण दृष्टिकोण को प्रोत्साहित करने वाली एक व्यापक अवधारणा है। शांति की शिक्षा ग्रहण करने का अर्थ शांति में योगदान करने वाले कारकों, उसे क्षति पहुंचाने वाले कारकों, युद्ध के कारकों, प्रत्येक स्तर पर 'शांति' के अर्थ आदि का ज्ञान और समझ प्राप्त करना है।

प्रस्तुत इकाई में शांति की अवधारणा, शांति की स्थापना, शांति शिक्षा के दृष्टिकोण, संघर्षों की समझ एवं समाधान, शांति की चुनौतियां, शांति के संवैधानिक मूल्यों, समाज में शांति के लिए पूर्व आवश्यकताएं आदि तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है।

1.1 उद्देश्य

टिप्पणी

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- शांति की अवधारणा को समझ पाएंगे;
- शांति की चुनौतियों एवं मूल्यों के बारे में जान पाएंगे;
- शांति की स्थापना में उत्तरदायी कारकों को समझ पाएंगे;
- शांति शिक्षा के विभिन्न दृष्टिकोणों को जान पाएंगे;
- शांति शिक्षा में गांधी, अरविंदो, विवेकानंद, टैगोर व दलाई लामा जैसे विचारकों के योगदान को समझ पाएंगे;
- संघर्षों के समाधान हेतु सृजनात्मक नीतियों को जान पाएंगे।

1.2 शांति की समझ : शांति की प्रासंगिकता के बारे में जागरूकता

संसार में शांति बहुत आवश्यक है। अपने कार्यों को पूरा करने के लिए हमें इसकी आवश्यकता होती है। हर धर्म अपने अनुयायियों को शांति का पालन करने की सीख देता है। शांति के बिना कोई भी राष्ट्र विकास नहीं कर सकता। यह मनुष्य को मानवता का पाठ पढ़ाती है। इसके बिना किसी भी व्यक्ति के लिए सही अर्थों में जीना संभव नहीं है, इसलिए हर कोई शांति चाहता है।

कई आयामों में शांति का अभाव स्वतः दिखाई देता है। क्या आपका सामना कभी किसी संकट की स्थिति से हुआ है? आपने लोगों को लड़ते और अंततः जेल जाते देखा होगा। स्कूलों में भी छात्र लड़ते–झगड़ते हैं और अपनी हानि करते हैं। ऐसा निश्चय ही शांति के भंग होने के कारण होता है। कहीं आने–जाने, अपने कार्यों को पूरा करने के लिए हमें शांति की आवश्यकता होती है।

1.2.1 शांति की चुनौतियां : तनाव (प्रतिबल), संघर्ष, अपराध, आतंकवाद, हिंसा, संकट

आज इस शांति को अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। यहां हम उन कुछ महत्वपूर्ण चुनौतियों की चर्चा करेंगे, जो समस्त संसार के लिए आवश्यक इस शांति की स्थापना में बाधा खड़ी करती हैं। इन चुनौतियों में तनाव, संघर्ष या द्वंद्व, अपराध, आतंकवाद, हिंसा आदि मुख्य हैं, जिनका क्रमवार विवेचन यहां प्रस्तुत है।

- **तनाव (प्रतिबल)**

आज प्रायः हर व्यक्ति किसी न किसी रूप में तनावग्रस्त है। यही कारण है कि बीते कुछ समय से तनाव अथवा प्रतिबल पर चर्चा आम हो चली है। हमारे जीवन में अकसर ऐसी कठिन परिस्थितियां आती रहती हैं, जो हमें तनावग्रस्त कर देती हैं। यह किसी को भी, कभी भी, किसी न किसी कारण से अपने प्रभाव में ले सकता है।

प्रतिबल एक विश्वव्यापी परिघटना है। प्रत्येक पांच में से एक व्यक्ति को नकारात्मक प्रतिबल की शिकायत रहती है। कुंठाएं, असंतोष और दैनिक जीवन के दबाव संवेगात्मक प्रतिबल को जन्म देते हैं।

तेजी से हो रहे शहरी विकास कार्य, जीवन में कॉर्पोरेट जगत के बढ़ते जाल, परंपरागत मूल्यों के क्षरण, जीवन और संपत्ति की सुरक्षा को खतरे समेत बढ़ते व्यक्तिगत व सामूहिक संघर्षों और आधुनिक तकनीकियों से समायोजन की चुनौती के फलस्वरूप जीवन के प्रतिबलों और तनावों से निपटने के हमारे पारंपरिक तंत्र तेजी से टूट–बिखर रहे हैं। जीवन में होने वाले परिवर्तनों और उनसे प्रेरित प्रतिबल से निपटने की परंपरागत प्रणालियों का ह्रास इस प्रतिबल के विषाणु को आधुनिक समाज में जीवन को दूषित करने की छूट देता है।

प्रतिबल की समस्याएं आम हैं और कई लोग अकसर कहते देखे जाते हैं कि वे नकारात्मक प्रतिबल से ग्रस्त हैं। ऐसे में कहा जा सकता है कि प्रतिबल से ग्रस्त होना सार्वभौमिक मानवीय परिघटना है, जिसके प्रभाव से प्रायः कोई नहीं बच पाता।

प्रतिबल क्या है?

प्रतिबल के अंग्रेजी शब्द Stress की उत्पत्ति लैटिन के Stringere शब्द से हुई है, जिसका अर्थ तानना या खींचना होता है (कॉक्स, 1978)। (कॉक्स, *स्ट्रेस*, मैकमिलन प्रेस, लंदन) आज यह शब्द इतना प्रचलित हो चला है कि स्कूल, कार्यालय, हाट–बाजार, घर–परिवार, समाज, दैनिक जीवन, आदि में इसे अकसर सुना जा सकता है। हमें स्वयं भी अकसर तनाव की अनुभूति होती रहती है।

इस शब्द का उपयोग पहली बार कब हुआ, इसे लेकर विद्वान एकमत नहीं हैं। कुछ विद्वानों का मानना है कि सत्रहवीं शताब्दी में लोगों के संबंधों और कष्टों को जताने के लिए इसका उपयोग बहुत अधिक होता था। वहीं कुछ अन्य विद्वानों के अनुसार अठारहवीं शताब्दी में इसका उपयोग दबाव अथवा तनाव के संदर्भ में होने लगा। फिर आगे चलकर इसका उपयोग किसी व्यक्ति द्वारा उसकी बाधाओं के प्रति प्रतिक्रिया के रूप में होने लगा।

इसके विपरीत लायन जैसे कुछ विद्वानों के अनुसार मानवीय संदर्भों में प्रतिबल शब्द का उल्लेख सबसे पहले वैज्ञानिक साहित्य में सन् 1930 के दशक में हुआ, किंतु सामान्य साहित्य और बोलचाल में इसका चलन सन् 1970 के दशक में शुरू हुआ। आज हम इसका उपयोग अप्रिय अनुभूति की अवस्थाओं के वर्णन में करते हैं। उदाहरण के लिए, जब हम परेशान होते हैं, जब हमें क्रोध आता है, जब हम संघर्ष या द्वंद्व की स्थिति में होते हैं, जब हम किसी स्थिति से अभिभूत होते हैं, तब हम अकसर कहा करते हैं कि हम दबावग्रस्त हैं।

प्रतिबल शब्द के व्यापक स्तर पर उपयोग के बावजूद, यह एक नितांत अस्पष्ट अवधारणा है, जिसकी कोई सुस्पष्ट व्याख्या या परिभाषा करना कठिन है। इसकी आरंभिक संकल्पना मुख्यतः एक बाहरी प्रेरणा के रूप में प्रतिबल पर केंद्रित थी।

इस संदर्भ में प्रतिबल के अग्रणी अध्येताओं में से एक हार्वर्ड चिकित्सा स्कूल के प्रख्यात अमेरिकी शरीरक्रिया विज्ञानी वॉल्टर केनन के शोध का उल्लेख किया जा सकता है। बीसवीं शताब्दी पूर्वार्ध में, प्रतिबल के प्रति शरीर की क्रियात्मक प्रतिक्रियाओं को पहचानने वाले वे पहले व्यक्ति थे। अपने शोध में उन्होंने मुख्य रूप से संघर्ष अथवा पलायन (युद्ध अथवा पलायन/रण अथवा रणछोड़) की प्रतिक्रिया का अध्ययन किया। वहीं मनुष्यों और पशुओं पर प्रतिबल के प्रभाव का विशेष रूप से अनुशीलन के साथ–साथ शारीरिक परिवर्तनों का अवलोकन भी किया।

प्रतिबल परिस्थितियों में परिवर्तन अथवा किसी अशुभ या भयसूचक स्थिति के प्रति किसी व्यक्ति की प्रतिक्रिया है। इसे किसी बाहरी घटना अथवा आवश्यकता को लेकर चिंता के प्रति एक निजी प्रतिक्रिया के रूप में देखा जा सकता है। वस्तुतः जब कोई व्यक्ति अपनी समस्या का समाधान नहीं कर पाता, तब उसे प्रतिबल अपने प्रभाव में ले लेता है।

आज की बढ़ती आवश्यकताओं और दबावों को देखते हुए यह तय है कि सभी लोग प्रतिबल के शिकार होंगे। प्रतिबल जीवन का महज एक उप–उत्पाद है। हमारा प्रयास यह हो कि हम इसे नियंत्रित रखें। वस्तुतः हमारा यह विश्वास कि हम प्रतिबल को नियंत्रण में रख सकते हैं, अकसर इसके स्तरों को कम करता है।

प्रतिबल की व्याख्या हम यह कहते हुए कर सकते हैं कि इसमें 'किसी परिवर्तन के प्रति संज्ञानात्मक, संवेगात्मक और शारीरिक प्रतिक्रियाएं' होती हैं। प्रतिबल किसी बदलते, कष्टकर माहौल के प्रति एक प्रतिक्रिया है। परिवर्तन हर समय होते रहते हैं, और जब हम उनका सामना कर रहे होते हैं, तब हमें प्रतिबल की अनुभूति होती है।

प्रतिबल पर किसी परिवर्तन के प्रति प्रतिक्रिया के रूप में विचार करने से पता चलता है कि यह केवल नकारात्मक नहीं होता, बल्कि कभी–कभी सकारात्मक भी हो सकता है। उदाहरणस्वरूप, खिलाड़ी अकसर विश्व कीर्तिमान को प्रतिबल के प्रभाववश तोड़ते हैं। रोज़गार मिलना, उच्चतर शिक्षा प्राप्त करने के लिए किसी उच्चतर शिक्षा संस्थान में स्थान मिलना जैसे जीवन में होने वाले कुछ परिवर्तन सकारात्मक और जीवन के संवर्धन की घटनाएं हैं, किंतु, जब तक हमें ये अवसर मिल नहीं जाते तब तक हम तनावग्रस्त रहते हैं। ऐसे में, इसे केवल नकारात्मक रूप में देखना हमें इसके सच्चे स्वरूप की एक गलत छवि प्रदान कर सकता है।

प्रतिबल के हमारे अनुभव में स्थिति के अनुरूप अंतर होता है – कभी यह अति गंभीर होता है तो कभी कम। किसी घटना विशेष के प्रति प्रतिक्रिया में हम किस सीमा तक प्रतिबल से ग्रस्त होते हैं यह इस बात पर निर्भर करता है कि उस स्थिति से निपटने की आवश्यकताओं को पूरा करना हमारे लिए कितना आवश्यक है। यदि उन्हें पूरा करना हमारे लिए बहुत ज़रूरी न हो, तो हमें प्रतिबल अधिक नहीं होता। इसके विपरीत, यदि उन्हें पूरा करना निहायत ज़रूरी हो, तो हमें तीव्र प्रतिबल का अनुभव होता है।

प्रतिबल की परिभाषाएं

सेल्ये (1956) के अनुसार, प्रतिबल सामंजस्य स्थापित करने के लिए शरीर की किसी आवश्यकता के प्रति सामान्य प्रतिक्रिया है। (सेल्ये, एच., *दि स्ट्रेस ऑफ लाइफ,* मैकग्रॉहिल, न्यूयॉर्क, अमेरिका)

आर. एस. लजारस (1966) के अनुसार, प्रतिबल तब उत्पन्न होता है जब लोगों को भान होता है कि वे अपेक्षाओं (Demands) अथवा उनके कल्याण के संकटों का समुचित ढंग से समाधान नहीं कर सकते। (*साइकॉलॉजिकल स्ट्रेस एंड दि कोपिंग प्रॉसेस,* मैकग्रॉहिल, न्यूयॉर्क)

टी. कॉक्स (1978) के अनुसार तर्क दिया जाता है कि प्रतिबल की सुष्ठ परिभाषा किसी व्यक्ति की अपेक्षा (Demand) और उसका सामना करने की उसकी क्षमता के बीच तुलना से उत्पन्न एक प्रत्यक्ष ज्ञानात्मक स्थिति के रूप में की जा सकती है। जब समाधान आवश्यक हो, तब इस तंत्र में किसी प्रकार के असंतुलन से तनाव की अनुभूति

होती है और उसकी प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है। (*स्ट्रेस, बेसिंगस्टोक,* मैकमिलन एजुकेशन, संदर्भ : रिसर्च रिपोर्ट नं. 7, रूरल स्ट्रेस रिव्यू फाइनल रिपोर्ट, मैट लॉब्ले, गिलियन जॉनसन, मैट रीड, माइकल विंटर एवं जो लिट्ल)

टिप्पणी

आर. एस. लजारस और फॉकमैन (1984) का मानना है कि प्रतिबल अपेक्षाओं और संसाधनों के बीच असंतुलन के फलस्वरूप उत्पन्न होता है। (*स्ट्रेस, एप्रेजल एंड कोपिंग,* स्प्रिंगर, न्यूयॉर्क)

एस. पामर (1989) के अनुसार, प्रतिबल मनोवैज्ञानिक, दैहिक और आचरणिक प्रतिक्रिया है, जो किसी व्यक्ति में तब उत्पन्न होती है, जब उसे अपनी अपेक्षाओं और उन्हें पूरा करने की उसकी क्षमता के बीच असंतुलन का भान होता है, और ऐसे में वह कुछ समय पश्चात् बीमार हो जाता है। (*ऑक्युपेशनल स्ट्रेस, दि हेल्थ एंड सेफ्टी प्रैक्टिशनर,* खंड 7, अंक 8)

पामर (1999) ने ही इसकी एक लघु परिभाषा और दी है। उसके अनुसार प्रतिबल तब उत्पन्न होता है, जब दबाव प्रभावित व्यक्ति की अनुमानित क्षमता से अधिक हो जाता है। (*ऑक्युपेशनल स्ट्रेस,* संदर्भ : स्ट्रेस ऐट वर्क : ए रिपोर्ट प्रिपेअर्ड फॉर दि वर्क फाउंडेशंस प्रिंसिपल पार्टनर्स)

फलसेत्ती, मोनियर और रेसनिक (2005) ने प्रतिबल की परिभाषा किसी अपेक्षा के प्रति शारीरिक प्रतिक्रिया के रूप में की है। उनके अनुसार प्रतिबल अनुकूल अथवा प्रतिकूल अनुभवों के फलस्वरूप उत्पन्न हो सकता है। (*इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मेडिकल रिव्यूज,* खंड 2, अंक 2, 2015)

बेहनूदी (2005) का मानना है कि चिकित्सा विज्ञान और जीव विज्ञान में प्रतिबल ऐसा कोई शारीरिक, मनोवैज्ञानिक और संवेगात्मक कारक है, जो शारीरिक और मनोवैज्ञानिक तनाव को जन्म देता है। (*इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मेडिकल रिव्यूज,* खंड 2, अंक 2, 2015)

यहां उल्लेख समीचीन है कि प्रतिबल के वैज्ञानिक अध्ययन का आरंभ लगभग एक शताब्दी पूर्व आरंभ हुआ। इसके वैज्ञानिक अध्ययन एवं शोध में कुछ विद्वानों का विशेष योगदान रहा है, जिनमें वॉल्टर ब्रैडफोर्ड केनन एवं हैंस सेल्ये प्रमुख हैं।

प्रतिबल के कारक

प्रतिबल के मुख्यतः 5 कारक हैं – महत्वाकांक्षी व्यक्तित्व, शत्रुता अथवा विद्वेष, पूर्णतावाद या दोष परिहार (शुचिता), दीर्घसूत्रता, अनियंत्रणीय घटनाओं से निपटने की क्षमता की कमी।

महत्वाकांक्षी व्यक्तित्व : इस सिद्धांत का प्रतिपादन दो वैज्ञानिकों मेयर फ्राइडमैन और रोजेनमैन ने किया। इस व्यक्तित्व का सम्बन्ध उन व्यक्तियों से है, जो प्रतिष्ठा को लेकर अत्यंत सजग, अधीर, अपेक्षाकृत अधिक प्रतिस्पर्धी, अति व्यवस्थित, समय के प्रति अत्यधिक सजग अथवा आक्रामक होते हैं। वे अत्यधिक काम करने वाले होते हैं और उन्हें विलंब व द्वैधवृत्ति बरदाश्त नहीं होते।

महत्वाकांक्षी व्यक्तित्व उन कारकों में से एक है जिनके कारण किसी व्यक्ति में प्रतिबल की संभावना अधिक हो सकती है। इस व्यक्तित्व के लोगों में अपने कुछ उद्देश्यों की पूर्ति के प्रति व्यग्रता होती है। वे किसी समय सीमा के भीतर अधिक से अधिक प्राप्त कर लेना चाहते हैं। उद्देश्यों की पूर्ति नहीं होने की स्थिति में उनमें चिड़चिड़ापन आ सकता है। उन्हें अकसर क्रोध आता रहता है।

टिप्पणी

विद्वेष : प्रतिबल से प्रभावित लोगों में क्रोध अथवा विद्वेष की भावना अधिक होती है। उनमें करुणा की कमी होती है और वे दूसरों में बुराई देखते हैं और उनके प्रति ईर्ष्या का भाव रखते हैं। यह विद्वेष जीवन की सामान्य घटनाओं में भी देखा जा सकता है। प्रतिबल प्रभावित लोगों में दूसरों को दोष देने की प्रवृत्ति होती है और यदि यह प्रवृत्ति प्रबल हो तो वे उन पर आक्रमण भी कर सकते हैं, जिन्हें वे दोष देते हैं।

इस प्रकार, विद्वेष या शत्रुता एक अभिवृत्ति है, जो यदि लंबे समय तक बनी रहे, तो इसका प्रतिकूल प्रभाव न केवल किसी प्रभावित व्यक्ति के स्वास्थ्य पर बल्कि उसके सामाजिक संबंधों पर भी पड़ सकता है।

दोष परिहार (शुचिता): दोष परिहार या शुचिता की प्रवृत्ति को अकसर दोष की बजाय एक सकारात्मक शीलगुण के रूप में देखा जाता है, जो किसी व्यक्ति की सफलता में सहायक होता है, किंतु यह उस व्यक्ति में आत्मघाती विचारों अथवा आचरणों को भी जन्म दे सकता है, जो लक्ष्यों की पूर्ति में बाधा खड़ी कर सकते हैं। इसके चलते व्यक्ति में प्रतिबल, दुश्चिंता, अवसाद और अन्य मानसिक समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं। यह व्यक्तित्व की एक बहुआयामी और बहुस्तरित विशेषता है। शुचिता के इस आग्रह या प्रवृत्ति का दो रूपों में वर्गीकरण किया जा सकता है – आंतरिक और बाह्य। आंतरिक शुचिता के प्रति आग्रही लोगों को स्वयं से बहुत अधिक अपेक्षाएं होती हैं, और इस आग्रह या प्रवृत्ति का न केवल उनके स्वास्थ्य पर बल्कि उनकी उत्पादकता पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। यही नहीं, यह आग्रह उनके आत्मसम्मान और संबंधों पर भी नकारात्मक प्रभाव डाल सकता है। शैफर (2004) के अनुसार, ऐसे लोगों में यह भावना होती है कि वे जो भी करें उसमें किसी प्रकार का दोष न हो। अपनी एक भी गलती को वे अपनी संपूर्ण असफलता मान लेते हैं। दूसरी ओर, वे अन्य लोगों के कार्य करने के ढंग से कभी संतुष्ट नहीं होते, उनमें दोष ढूंढ़ते रहते हैं, और जब कोई उनकी अपेक्षाओं के अनुरूप कार्य नहीं करता, तो उसके प्रति उनमें विद्वेष पैदा हो जाता है। यह शुचिता के प्रति आग्रह का दूसरा रूप है। (शैफर, डब्ल्यू., *स्ट्रेस मैनेजमेंट फॉर वेलनेस,* टॉमसन वड्सवर्थ, अमेरिका)

दीर्घसूत्रता : दीर्घसूत्रता के अंग्रेजी शब्द Procrastination की उत्पत्ति लेटिन के procrastinatus से हुई है जिसका अर्थ किसी कार्य को पूरा करने में यह जानते हुए भी अनावश्यक रूप से विलंब करना होता है कि इसका परिणाम प्रतिकूल या नकारात्मक हो सकता है। अर्थात् इसका तात्पर्य किसी कार्य को पूरा करने में अनावश्यक रूप से विलंब करने अथवा उसे स्थगित करने से है। इसकी व्याख्या कोई कार्य शुरू या पूरा करने में आदतन अथवा इरादतन विलंब करने के रूप में भी की जा सकती है। हम अकसर अपने दैनिक कार्यों को कल पर छोड़ देते हैं, या कुछ विशिष्ट कार्यों को टाल देते हैं – यही दीर्घसूत्रता है। यह प्रवृत्ति किसी व्यक्ति की उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है, इसीलिए इसे एक नकारात्मक शीलगुण के रूप में देखा जाता है। इस दीर्घसूत्रता के कारण लोग प्रतिबल से ग्रसित हो सकते हैं, और उनमें अपराधबोध और आत्मनिंदा की प्रवृत्ति जन्म ले सकती है। दीर्घसूत्रता भय अथवा आलस्य के कारण उत्पन्न होती है।

अनियंत्रणीय घटनाओं से निपटने की क्षमता में कमी : यह एक मानसिक अवस्था है जिसमें कोई व्यक्ति प्रतिकूल, पीड़ादायक अथवा अप्रिय परिस्थिति का सामना करने को विवश होता है और उससे बचने का प्रयास करता है। इसका तात्पर्य यह है कि किसी परिस्थिति के परिणाम पर नियंत्रण नहीं हो पाने की स्थिति में परिणति

नैदानिक अवसाद और उससे संबद्ध मानसिक बीमारी में होती है। यह प्रवृत्ति तब उत्पन्न होती है, जब किसी व्यक्ति को किसी ऐसी प्रतिकूल स्थिति का सामना बार–बार करना पड़ता है, जिससे बचा नहीं जा सकता। अंततः वह व्यक्ति उस स्थिति से बचने का प्रयास छोड़ देता है। फिर स्थिति ऐसी हो जाती है कि उससे बचने के अवसर मिलें तो भी यह प्रवृत्ति कुछ करने से रोकती है।

प्रतिबल के प्रकार और प्रभाव

दैनिक जीवन में हम अकसर प्रतिबल शब्द का उपयोग अपनी प्रतिकूल या नकारात्मक स्थितियों के लिए करते हैं, किंतु प्रतिबल हमेशा प्रतिकूल या नकारात्मक नहीं होता। यह शरीर की अपेक्षाओं के कारक परिवर्तनों के प्रति प्रतिक्रिया मात्र है। विद्वानों ने इसके तीन प्रकार बताए हैं– सकारात्मक, नकारात्मक और तटस्थ। यहां इन तीनों का अलग–अलग वर्णन प्रस्तुत है–

1. **सकारात्मक प्रतिबल** : इस प्रतिबल का तात्पर्य प्रतिबल की स्वस्थ, अनुकूल और विकासात्मक अनुक्रियाओं से है, जैसे किसी का किसी से प्रेम होना। यह किसी व्यक्ति में प्रतिबल के अनुकूल स्तर का संकेत देता है। इसके अनुकूल स्तर पर होने की स्थिति में लोग अपनी पूरी क्षमता से कार्य करते हैं। किंतु, इसके विपरीत यदि यह अनुकूल से कम स्तर पर हो, तो लोगों में ऊब या क्लांति देखी जाती है, प्रेरणादायक स्तर कम हो जाता है और उदासीनता आ जाती है। यदि लोगों को परिवेश में अपेक्षित स्तर से कम प्रतिबल की स्थिति में लंबे समय तक कार्य करना पड़े और उन्हें ऊब महसूस हो, तो इसका उनके कार्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। ऐसे में वे गलतियां करने लगते हैं, उनकी स्मरण शक्ति कमज़ोर हो जाती है और उनमें अन्यमनस्कता व शिथिलता आ जाती है। इस सकारात्मक प्रतिबल से हमें कार्य करने की अभिप्रेरणा मिलती है, हमारा ध्यान हमारी क्षमता पर केंद्रित होता है और हम चाक–चौबंद रहते हैं।

   रोज़गार में प्रोन्नति या सेवा में पदोन्नति, नए काम की शुरुआत, विवाह, घर खरीद, संतान का जन्म, यात्रा, अवकाश, छुट्टियों के दिन, आदि सकारात्मक प्रतिबल के मुख्य उदाहरण हैं।

2. **नकारात्मक प्रतिबल** : यह प्रतिबल की एक अस्वस्थ और नकारात्मक प्रतिक्रिया है, जो सामान्यतया तीव्र होती है। यह अल्पकालिक और दीर्घकालिक दोनों हो सकता है। इसका सामना करना कठिन होता है। प्रभावित लोगों के कार्यकलाप और क्षमता पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। उन्हें श्रांति, थकान और शिथिलता की अनुभूति होती है। यही नहीं, इसके प्रभाववश वे अनिद्रा, पेट की समस्याओं और अन्य मनःकायिक विकारों (Psychosomatic Disorders) से ग्रस्त हो सकते हैं।

   इसके अनेकानेक उदाहरण हैं, जिनमें जीवनसाथी की मृत्यु, तलाक, प्रियजनों से संपर्क विच्छेद, परिवार में किसी की मृत्यु, चोट अथवा रोग, लोगों द्वारा उपेक्षा अथवा दुर्व्यवहार, पति और पत्नी या प्रेमी और प्रेमिका के बीच अलगाव, अंतर्वैयक्तिक संबंधों में द्वंद्व, दिवालियापन या आर्थिक समस्या, बेरोज़गारी, स्कूल में बच्चों की समस्या, कानूनी समस्याएं, आदि मुख्य हैं।

3. **तटस्थ प्रतिबल** : यह न तो नकारात्मक होता है और न ही सकारात्मक। विश्व के किसी दूसरे हिस्से में आए भूकंप का समाचार सुनकर हम में प्रतिक्रिया होती है, जो प्रतिबल है, किंतु उसका हम पर कोई व्यक्तिगत प्रभाव नहीं पड़ता।

टिप्पणी

प्रतिबल के प्रभाव

प्रतिबल भयसूचक, भ्रामक, संकटपूर्ण अथवा उत्तेजक स्थितियों के प्रति हमारे शरीर की मानसिक, शारीरिक और रासायनिक अनुक्रिया है। चिकित्सकीय दृष्टिकोण से, इसे सामान्य परिवेशीय प्रेरक कारकों के प्रति शरीर की सामान्य अनुक्रिया माना जा सकता है। उदाहरण के लिए, यदि प्रतिबल का उपयोग समुचित ढंग से हो, तो यह हमारा मित्र हो सकता है और किसी प्रतिकूल परिवर्तन का सामना करने में हमारी सहायता कर सकता है। किंतु, यदि इसका उपयोग गलत ढंग से हो, तो यह हमारा शत्रु बन जाता है, जो रक्तचाप, व्रण या घाव, दमा और अति सक्रिय थाइरॉयड का वाहक बन सकता है। गलत ढंग से उपयोग के फलस्वरूप शरीर तंत्र पर पड़ने वाले प्रतिबल के प्रभाव इस प्रकार हैं– शारीरिक पीड़ा, संवेगात्मक क्लेश और अन्य लोगों के साथ संबंध में कटुता।

शारीरिक पीड़ा : प्रतिबल के कारण अनेक प्रकार की शारीरिक पीड़ाएं हो सकती हैं, जिनमें अधकपारी या आधासीसी, सिरदर्द, पेशीकंकाली विकार (Musculoskeletal Disorders) मुख्य हैं। श्वासोच्छ्वास में कठिनाई प्रतिबल के कारण होने वाली एक अन्य शारीरिक पीड़ा है। किसी प्रियजन की मृत्यु होने की स्थिति में होने वाले अतिपाती प्रतिबल (Acute Stress) के फलस्वरूप दमा (अस्थमा) का दौरा पड़ सकता है।

यदि प्रतिबल दीर्घकालिक हो, तो इसके अत्यधिक नकारात्मक प्रभाव हो सकते हैं। इसके फलस्वरूप उत्तर–अभिघातज प्रतिबल विकार (Post-traumatic Disorders), गंभीर अवसादी विकार (Major Depressive Disorder) और अन्य गंभीर मनोरोग हो सकते हैं। इसके लंबे समय तक बने रहने की स्थिति में व्यक्ति को उच्च रक्तचाप, हृदयाघात, मस्तिष्काघात, आदि हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त इस स्थिति में यकृत अतिरिक्त रक्त शर्करा उत्पन्न करता है, जिसके फलस्वरूप मधुमेह की संभावना बढ़ जाती है।

संवेगात्मक दुःख : प्रतिबल के कारण भय, क्रोध, उदासीनता, कुंठा जैसे संवेग भी उत्पन्न हो सकते हैं। ये भावनाएं अवसाद और आक्रामकता जैसे लक्षणों को जन्म दे सकती हैं। इनका प्रभावित लोगों के सामान्य सुख पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। वे लोगों से दूर–दूर रहने लगते हैं, वे अनिद्रा, चिड़चिड़ापन, आदि से ग्रस्त हो जाते हैं।

संबंध में कटुता : प्रतिबल का संबंधों पर विभिन्न रूपों में प्रभाव पड़ता है। इसके प्रभाववश लोगों में एकाकीपन आ जाता है। वे लोगों से दूर–दूर रहने लगते हैं। उनमें इस परिवर्तन के फलस्वरूप उनके जीवनसाथी में भी नकारात्मकता आ जाती है। उनका संबंध कटु हो जाता है और वे एक–दूसरे के साथ दुर्व्यवहार तक करने लगते हैं। जब लोग तनाव या दबावग्रस्त होते हैं, तो थकान हो जाती है। इसका कामप्रवृत्ति पर बुरा प्रभाव पड़ता है और दोनों के बीच की अंतरंगता समाप्त हो जाती है।

प्रतिबल का वर्गीकरण और विशेषताएं

प्रतिबल एक अनुभूति है जो लोगों में तब होती है जब वे आर्थिक, कार्यजन्य, संबंधों, परिवेश और अन्य स्थितियों की चुनौतियों को दूर करने के लिए संघर्ष कर रहे होते हैं।

यह यथार्थ और अनुमानित खतरे से शरीर की स्वाभाविक सुरक्षा तंत्र है। खतरे से बचने अथवा उसका सामना करने हेतु शारीरिक तंत्र को तैयार करने के लिए यह शरीर में विभिन्न हार्मोनों को जन्म देता है। इसका वर्गीकरण दो रूपों में किया गया है – अतिपाती या तीव्र प्रतिबल (Acute Stress) और घटनाजन्य अथवा सांयोगिक अतिपाती प्रतिबल (Episodic Acute Stress)।

प्रतिबल के उक्त रूपों की अपनी–अपनी विशेषताएं, लक्षण एवं अवधि होते हैं। यहां इनका विस्तृत विश्लेषण समीचीन है।

अतिपाती प्रतिबल

यह सर्वाधिक आम और जब–तब होने वाला प्रतिबल है। यह भयजन्य, अभिघातज अथवा चकित करने वाले अनुभव के प्रति एक मनोवैज्ञानिक अनुक्रिया है। यह अल्पकालिक होता है। इसे संघर्ष–अथवा–पलायन (युद्ध–अथवा–पलायन/रण–अथवा–रणछोड़/Fight-Or-Flight) अनुक्रिया भी कहा जाता है। यह किसी घटना, चुनौती या भय के प्रति हमारे शरीर की तात्कालिक प्रतिक्रिया है। अतिपाती प्रतिबल अनुक्रिया तात्कालिक और तीव्र होती है और कुछ स्थितियों में यह रोमांचक भी हो सकती है। नौकरी के लिए साक्षात्कार, आर्थिक समस्याएं, तलाक या यातायात नियमों का उल्लंघन करने की स्थिति में दंड आदि इसके उदाहरण हैं। यह अकसर प्रतिक्रियावादी सोच के कारण होता है। सद्यः घटित स्थितियों अथवा घटनाओं या फिर संभावित स्थितियों, घटनाओं या अपेक्षाओं के प्रति प्रभावित व्यक्ति की सोच नकारात्मक होती है। अतिपाती प्रतिबल के लक्षण और संकेत शरीर, मस्तिष्क एवं संवेगों में उत्पन्न होते हैं, किंतु प्रतिबल के अन्य रूपों की तरह यह कोई गंभीर क्षति नहीं पहुंचाता। किंतु, गंभीर होने की स्थिति में यह मानसिक स्वास्थ्य की समस्याओं, जैसे उत्तर–अभिघातज विकार, को जन्म देता है। इसके फलस्वरूप पेट की गड़बड़ियों, नींद की समस्याओं अथवा हृदयाघात जैसी शारीरिक समस्याएं भी हो सकती हैं।

अतिपाती प्रतिबल के लक्षण और संकेत

अतिपाती प्रतिबल के कुछ मुख्य लक्षण और संकेत इस प्रकार हैं।

अंतर्वेधी लक्षण (Intrusion Symptoms): यह तब उत्पन्न होता है, जब कोई व्यक्ति अपने अतीत, स्मृतियों, और सपनों में बार–बार आने वाली किसी अभिघातज घटना को आने से रोक नहीं पाता।

नकारात्मक भावदशा (Negative Mood): प्रभावित व्यक्ति के मन में नकारात्मक विचार, निराशा और नकारात्मक भावदशा उत्पन्न होती है।

विघटनशील लक्षण (Dissociative Symptoms): इनमें संज्ञाहीनता या सांवेगिक अनुक्रियाओं के प्रति निर्लिप्तता, शारीरिक निर्लिप्तता, परिवेश के प्रति जानकारी में कमी, अभिघातज घटना के मुख्य पक्षों को स्मरण कर पाने में अक्षमता, आदि आते हैं।

परिहारी या परिवर्जनी लक्षण (Avoidance Symptoms): इन लक्षणों से ग्रस्त लोग जानबूझकर अभिघातज घटनाओं से जुड़े विचारों, भावनाओं, लोगों अथवा स्थानों से परहेज करते हैं।

उत्तेजनाकारी लक्षण (Arousal Symptoms): इनमें अनिद्रा और नींद की अन्य गड़बड़ियां, एकाग्रता में कठिनाई, चिड़चिड़ापन, मौखिक या शारीरिक आक्रमण की

भावना, आदि आती हैं। प्रभावित व्यक्ति को तनाव या साकांक्षता की अनुभूति हो सकती है और वह आसानी से स्तब्ध हो सकता है।

टिप्पणी

इस प्रकार अतिपाती प्रतिबल कई समस्याओं को जन्म दे सकता है। इसके चलते प्रभावित व्यक्ति अवसाद, दुश्चिंता, भावदशा विकार और सत्व दुरुपयोग की समस्याओं से ग्रस्त हो सकता है।

सांयोगिक अतिपाती प्रतिबल

इस प्रकार का प्रतिबल तब उत्पन्न होता है जब लोगों को बार–बार होने वाले अतिपाती प्रतिबल का अनुभव होता है, या फिर जब लोगों के जीवन में बार–बार प्रतिबल आता रहता है। अतिपाती प्रतिबल से ग्रस्त लोगों का जीवन अस्तव्यस्त और संकटग्रस्त रहता है। लोग क्षमता से ज्यादा दायित्व अपना लेते हैं। इन लोगों पर अतिपाती प्रतिबल का बोझ हमेशा बना रहता है। यह प्रतिबल महत्वाकांक्षी, अधीर और प्रतिस्पर्धी लोगों में अधिक होता है।

सांयोगिक अतिपाती प्रतिबल के लक्षण

अत्यधिक क्रोध और चिड़चिड़ापन, मांसपेशियों में खिंचाव और पीड़ा, धड़कन की गति में तीव्रता, हृदय में चुभन, पेट की समस्याएं, आतंक के जब–तब दौरे, उत्तेजना, चक्कर, अधकपारी या आधासीसी, हाथों या पैरों में ठंडापन, उदर–स्फीति, बदहज़मी, कब्ज, उद्दीप्य आंत्र संलक्षण (Irritable Bowel Syndrome), सांस में कमी, अनिद्रा, सीने में दर्द, आदि सांयोगिक अतिपाती प्रतिबल के लक्षण हैं। यदि इनका सही समय पर समुचित उपचार न हो, तो प्रभावित व्यक्ति उच्च रक्तचाप, हृदय रोग आदि से ग्रसित हो सकता है।

प्रतिबल से मुक्ति के उपाय

संवेगात्मक अविनियमन से मनोचिकित्सा और तनाव से संबद्ध शारीरिक विकास, अनिवार्य रक्तचाप, मुख्य अवसादक विकार, हृदय–धमनी रोग आदि हो सकते हैं। इसके विपरीत, स्व–मार्गदर्शन, लक्ष्य निर्धारण, किसी गतिविधि के प्रति लगाव और प्रयोजन का एक बोध ये सब मिलकर किसी व्यक्ति को हृदय की तीव्र गति, श्वासोच्छ्वास में कठिनाई और आंत की सख्ती से मुक्ति दिलाते हैं।

तनाव के कई प्रतिरोधक किसी व्यक्ति की दैहिक और मनोवैज्ञानिक अवस्थाओं पर पड़ने वाले तनाव के प्रभावों को कम करते हैं। सामाजिक सहायता, समाधान का सकारात्मक मार्ग, आशावादिता, पूजा–ध्यान, व्यायाम और इससे संबद्ध तकनीक प्रतिरोधकों के उदाहरण हैं। व्यायामों में मनोसामाजिक संकट के नकारात्मक प्रभावों का प्रतिरोध करने की क्षमता होती है।

प्रतिबल, पोषण और आहार

जब कोई तनावपूर्ण स्थिति हमारे समक्ष आती है, तब हमारा तंत्रिका तंत्र और अधिवृक्क ग्रंथियां शरीर के शेष भागों को संकेत देती हैं और हमारा मस्तिष्क इसकी प्रतिक्रिया करने हेतु तत्पर हो उठता है। इस प्रतिक्रिया को संघर्ष अथवा पलायन प्रतिक्रिया कहा जाता है।

हमें इसका ज्ञान होना चाहिए कि हमारा शरीर किस प्रकार कार्य करता है और किस प्रकार तनाव व तनावपूर्ण स्थितियों का सामना करता है। किसी तनावपूर्ण अवधि

के बाद मानव शरीर एक रोग निवृत्ति की स्थिति में जा सकता है जिसमें भूख और भोजन की चाह बढ़ जाती है। वहीं, उपापचयन की गति कम हो जाती है, जिससे ऊर्जा का संरक्षण होता है। इन स्थितियों का ज्ञान तनाव के स्तरों पर नियंत्रण करने में हमारी सहायता कर सकता है। पोषण तथा आहार की सहायता से हम अपेक्षाकृत अधिक तेजी से तनावपूर्ण स्थितियों से छुटकारा पाने में अपने शरीर की सहायता कर सकते हैं और नकारात्मक प्रभावों में कमी ला सकते हैं।

आहार में हमें विटामिन 'बी', विटामिन 'सी' और मैग्नीशियम से युक्त पदार्थों का सेवन करना चाहिए। फल एवं सब्जियां अधिक से अधिक लेनी चाहिए और भोजन के अन्य पदार्थों का सेवन करते समय उनके हानिकारक प्रभावों का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

व्यायाम

स्वास्थ्यप्रद आहार के अतिरिक्त व्यायाम तनाव को कम करने में सहायक हो सकता है, किंतु यह आवश्यक नहीं कि श्रमसाध्य व्यायाम ही किए जाएं। हलके व्यायाम भी सहायक होते हैं, जैसे तैरना, ध्यान एवं योग।

विश्रांति (शिथिलन)

आज के इस तेज रफ्तार दौर में आराम बहुत दुर्लभ है। किंतु व्यस्त कार्यक्रमों में भी हमें आराम के लिए समय निकालना चाहिए।

व्यायाम के लाभ

- **व्यायाम से ऊर्जा का स्तर बढ़ता है :** व्यायाम हमारे हृदवाहिनी तंत्र की शक्ति का संवर्धन करते हुए उसकी क्षमता में सुधार लाता है, जिससे हमारी मांसपेशियों को ऑक्सीजन और पोषण मिलते हैं। हमारा हृदवाहिनी तंत्र यदि स्वस्थ रहे, तो हमारे शरीर में स्फूर्ति रहती है और हम कोई भी कार्य सरलता से कर पाते हैं।
- **व्यायाम से मांसपेशियों की क्षमता बढ़ती है :** व्यायाम से मांसपेशियां मजबूत होती हैं, जिससे शरीर के जोड़ों और कटि प्रदेश में पीड़ा का खतरा कम होता है। उनमें पर्याप्त संतुलन भी बना रहता है।
- **व्यायाम से मस्तिष्क के कार्यकलाप में सुधार आता है :** व्यायाम से मस्तिष्क में रक्त संचार और ऑक्सीजन का प्रवाह समुचित ढंग से होता है। यह मस्तिष्क के स्मृति और ज्ञान का संचालन करने वाले अंगों में कोशिकाओं का निर्माण करने वाली रासायनिक क्रियाओं, जैसे अंतःस्रावी रसों का निस्सरण, को भी बढ़ावा देता है। इससे एकाग्रता के स्तरों और ज्ञान क्षमता में वृद्धि होती है और अलजाइमर्स जैसे ज्ञान का हरण करने वाले रोगों का खतरा भी कम होता है।
- **हमारे हृदय के लिए भी व्यायाम आवश्यक है :** व्यायाम से हमारी धमनियों में रक्त संचार को बाधित करने वाले कोलेस्टेरॉल में कमी, शरीर के लिए उपयोगी कोलेस्टेरॉल में वृद्धि और रक्तचाप में कमी आती है, जिससे हमारे हृदय पर पड़ने वाले तनाव में कमी आती है। इसके अतिरिक्त, व्यायाम से हमारे हृदय की मांसपेशियां भी मजबूत होती हैं। स्वास्थ्यप्रद आहार और समुचित व्यायाम हृदय–धमनी रोग के बढ़ने के खतरे को कम करते हैं।

टिप्पणी

- **नियमित व्यायाम से दूसरी श्रेणी के मधुमेह का खतरा कम होता है :** नियमित व्यायाम से रक्त शर्करा का स्तर नियंत्रित रहता है, जिससे दूसरी श्रेणी का मधुमेह या तो होता ही नहीं या फिर विलंब से होता है। वहीं, इससे मोटापा नहीं होता, जो दूसरी श्रेणी के मधुमेह के बढ़ने का मुख्य कारक होता है।
- **व्यायाम से रोग प्रतिरोधक तंत्र सुदृढ़ होता है :** व्यायाम जहां एक ओर शरीर के सभी अंगों को ऑक्सीजन और पोषक तत्व पहुंचाता है, वहीं दूसरी ओर जीवाणुओं और विषाणुओं से लड़ने वाली कोशिकाओं को सक्रिय करता है।

आहार और व्यायाम के अतिरिक्त तनाव पर नियंत्रण के कुछ अन्य महत्वपूर्ण उपायों का विवरण इस प्रकार है।

प्रतिबल अथवा तनाव के स्रोतों को समझना

प्रतिबल प्रबंधन के लिए सबसे पहले उसके कारकों के स्रोतों को समझना आवश्यक है। हालांकि यह एक जटिल कार्य है, किंतु प्रतिबल का सामना करने के मुख्य प्रयासों में से एक है। हमारे तनाव के स्रोत हमेशा स्पष्ट नहीं होते। कभी–कभी तनाव के प्रेरक विचारों, भावनाओं तथा व्यवहारों पर हमारा ध्यान नहीं जाता। इन स्रोतों को समझने के लिए हमें अपनी आदतों–व्यवहारों और अभिवृत्ति पर गौर करना चाहिए। संभव है कि हम स्वयं को कार्य के बोझ तले दबा महसूस करें, या हमें हमारा परिवेश अथवा कार्यालय या कार्यस्थल हमेशा अव्यवस्थित लगे या फिर हम अपने तनाव का दोष अन्य लोगों या बाहरी घटनाओं को दें। यदि स्थितियां ऐसी हों, तो हमें अपने कर्तव्य और दायित्व को समझना और स्वीकार करना चाहिए, अन्यथा हमारे तनाव पर हमारा नियंत्रण नहीं हो सकता। निचोड़ यह है कि यदि हम तनाव के स्रोतों और अपने कर्तव्य को समझें, तो तनाव पर काबू पा सकते हैं।

तनावपूर्ण स्थिति से बचना, उसमें परिवर्तन करना, उसे स्वीकार करना अथवा अपने अनुकूल बनाना

यदि किसी स्थिति अथवा व्यक्ति के कारण किसी अन्य व्यक्ति को तनाव हो या होने की संभावना हो तो उसे अपनी सीमाओं को ध्यान में रखते हुए उससे बचने का प्रयास करना चाहिए। यदि बचना संभव न हो, तो उसे उस व्यक्ति के साथ ऐसा व्यवहार करना चाहिए कि वह तनाव पैदा करने का प्रयास ही न करे। वहीं, उसे तनावपूर्ण या तनावकारी स्थिति में परिवर्तन करने का प्रयास करना चाहिए। उसे अपने आचार–विचार को लचीला रखना, और स्थिति को स्वीकार करना अथवा उससे समझौता करना चाहिए। उसे उन सभी चीजों को स्वीकार कर लेना चाहिए जिन पर उसका वश न हो। उसे चुनौतियों का सामना और अपने विचार और भावनाएं दूसरों के साथ साझा करना चाहिए। जिन स्थितियों पर उसका नियंत्रण न हो, उन पर निर्भर करने की बजाय उनसे आगे बढ़ जाना चाहिए। उसे बुरी से बुरी स्थितियों का सामना करने के लिए हमेशा तैयार रहना चाहिए।

सकारात्मक अभिवृत्ति अपनाना

जीवन में खुशी, खुशहाली और प्रगति के लिए सकारात्मक अभिवृत्ति अथवा सोच आवश्यक है। मन की इस अवस्था से मनुष्य के जीवन में प्रकाश, आशा और उत्साह का समावेश होता है। सकारात्मक अभिवृत्ति का अर्थ मन की वह अवस्था है, जिसमें कोई व्यक्ति परिणामों के अनुकूल होने की आशा रखता है। वह मानता है कि हर स्थिति

ठीक हो जाएगी। यह एक ऐसी अभिवृत्ति है, जो लोगों में अच्छाई देखने में हमारी सहायता करती है। यह एक मानसिक अभिवृत्ति है, जो हमारे जीवन में नकारात्मकता और असफलता की बजाय अच्छाई देखती है। सकारात्मक अभिवृत्ति एक मानसिकता है, जो अवसरों को देखने और समझने में हमारी सहायता करता है। इसका अर्थ सकारात्मक सोच है। मानसिक अभिवृत्ति जीवन के उज्ज्वल पक्ष पर ही ध्यान देती है।

सकारात्मक अभिवृत्ति अपनाने का अर्थ स्थितियों और परस्पर व्यवहारों के साथ–साथ अपने प्रति आशावादी होना है। सकारात्मक सोच के लोग कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी अच्छाई देखते हैं। इसे अपनाने का अर्थ यह कतई नहीं है कि जीवन हमेशा सरल रहेगा, मार्ग में खाइयां भी होती हैं। किंतु, यदि इसे आप अपनाते हैं, तो कोई भी बाधा किसी को रोक नहीं सकती या फिर उसकी मानसिक स्थिति को बदल नहीं सकती। यदि वह स्थिति को बदल नहीं सकता, तो कम से कम अपने में परिवर्तन ला ही सकता है। अपनी अपेक्षाओं और अभिवृत्तियों में परिवर्तन लाकर वह तनावपूर्ण स्थिति को अपने अनुकूल ढाल सकता है और स्वयं पर नियंत्रण पुनः प्राप्त कर सकता है।

जिन पर वश न हो उन स्थितियों को स्वीकार करना और आगे बढ़ना

हमारे जीवन में ऐसी परिस्थितियाँ अक्सर आती रहती हैं, जिन पर हमारा कोई वश नहीं होता, जो अपरिहार्य होती हैं, जैसे किसी अपने की मृत्यु, कोई गंभीर बीमारी, कोई चीज खो जाना, आदि। कुछ स्थितियां हमारे अपने कारण तनावपूर्ण हो जाती हैं। इन्हें बदलना असंभव होता है, इसलिए हमें इन्हें स्वीकार कर लेना चाहिए। यह कठिन हो सकता है, किंतु उन स्थितियों पर सोचते रहने से आसान है। हम अपने वर्तमान को बेहतर करने के लिए अतीत को बदल नहीं सकते, किंतु भविष्य को उज्ज्वल बनाने के लिए वर्तमान में परिवर्तन ला सकते हैं। हमें उन स्थितियों को अपने वश में करने का प्रयास नहीं करना चाहिए, जिन पर नियंत्रण संभव न हो। इसकी बजाय हमें उन स्थितियों पर ध्यान देना चाहिए, जिन पर हम नियंत्रण कर सकें। गंभीर चुनौतियों के सामने आने पर हमें उन्हें अपने विकास के लिए अवसर के रूप में देखना चाहिए। यदि कोई स्थिति हमारे अपने कारण तनावपूर्ण हुई हो, तो हमें अपने पर मंथन कर अपनी गलतियों से सबक लेना चाहिए। हमें अपनी भावनाएं साझा करनी चाहिए। अपने विश्वस्त मित्रों से बातचीत करना या किसी चिकित्सक से सलाह लेना लाभदायक हो सकता है। स्थिति को बदल न सकें, तो भी आप जिस मनोदशा से गुजर रहे हों, उसे व्यक्त करना लाभदायक हो सकता है। इस तथ्य को स्वीकार करें कि हम जिस संसार में रहते हैं, वह अधूरा है। लोगों से गलतियां होती ही हैं। क्रोध और द्वेष से परहेज करें।

शरीर को नियमित रूप से कुछ आराम देना और अपनी देखभाल स्वयं करना तनाव पर नियंत्रण का एक विशेष उपाय है। इससे मन और शरीर दोनों को स्वस्थ रखने के साथ–साथ रोज के तनाव को कम करने में सहायता मिलती है। अपनी व्यस्तता में कुछ आराम और कुछ आनंद के लिए रोज थोड़ा समय निकाल कर नीचे दिए गए उपायों को अपना सकते हैं।

श्वासोच्छ्वास

श्वासोच्छ्वास का व्यायाम आराम के सर्वाधिक सरल उपायों में से एक है। किसी शांत और सुरक्षित स्थान में, जैसे अपने बिस्तर पर अथवा घर में किसी फर्श पर बैठें या लेट

जाएं और एक हाथ अपने पेट पर रखकर तीन बार धीरे–धीरे सांस लें और छोड़ें। इससे आपके तनावग्रस्त शरीर को आराम मिल सकता है।

टिप्पणी

अपने शरीर को ढीला छोड़ दें

जब हमें किसी मानसिक तनाव की अनुभूति होती है, तो हम अक्सर शरीर में भी तनाव महसूस करते हैं। ऐसे में शरीर के इस तनाव को छोड़ देने अर्थात् शरीर को ढीला छोड़ देने से शरीर और मन को आराम मिल सकता है। सुबह टहलने जाना, प्रकृति से स्वयं को जोड़े रखना, अच्छे मित्रों से मिलना, दीर्घ स्नान करना, एक प्याली गरम चाय या कॉफी पीना, पालतू पशुओं के साथ खेलना, बगीचे में काम करना, कोई अच्छी पुस्तक पढ़ना, गीत–संगीत सुनना, आदि तनाव से छुटकारा दिलाने में सहायक हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त स्वास्थ्यप्रद आहार, नियमित व्यायाम और पर्याप्त नींद भी तनाव से मुक्ति के लिए आवश्यक होते हैं।

• संघर्ष या द्वंद्व

संसार के प्रायः हर हिस्से को व्यापक स्तर पर प्रचंड और कष्टप्रद संघर्षों का सामना करना पड़ा है। संघर्ष प्रभावित ज्यादातर समाजों में ये संघर्ष सीमित रूप से उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों के वितरण में असमानता को लेकर होते रहे हैं। इसलिए संवृद्धि और विकास से संबद्ध भोजन और आवास की बुनियादी भौतिक आवश्यकताओं तथा मनुष्य की बुनियादी शारीरिक आवश्यकताओं को पूरा करने के प्रयास आवश्यक हैं। अलग–अलग राष्ट्रों में शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व के महत् कार्य को पूरा करने के लिए, 'शांति की संस्कृति' का सृजन करते हुए मानव समाज के सभी स्तरों पर शांति शिक्षा आवश्यक है।

संघर्षों से बचाव के लिए, रोकथाम की समुचित नीतियों की आवश्यकता हमेशा होती है। यही नहीं, संघर्ष के पनपने के पहले उसके संकेतों को समझना भी ज़रूरी होता है। वहीं, संघर्षों से निपटने के लिए शांति की स्थापना निश्चय ही एक स्थायी और कारगर तरीका होता है। इसके लिए सुशासन के जरिए शांति का पोषण करने के साथ–साथ मानव सुरक्षा सुनिश्चित करने और संघर्ष उत्पन्न होने की स्थिति में उसे दूर करने हेतु संस्थाओं की आवश्यकता होती है।

शीतयुद्ध की समाप्ति के बाद कुछ देशों के बीच यदा–कदा संघर्ष होते रहे हैं। इन्हें अंतर्राष्ट्रीय संघर्ष कहा जाता है। आज हम अकसर किसी देश के भीतर किसी न किसी रूप में गृह संघर्ष होता देखते हैं। क्या आपने कभी सोचा कि युद्ध और युद्ध के प्रकारों की व्याख्या कैसे की जाती है? जब हम युद्ध की – संघर्ष की – बात करते हैं, तो हमारे मन में लोगों के एक दूसरे पर गोली चलाने, बमों के धमाके, टैंकों के प्रहार, मरते लोगों की छवि उभर आती है। हम उदास हो जाते हैं, शक्तिहीन महसूस करते हैं और संभ्रम में पड़ जाते हैं।

युद्ध के बारे में हम क्या जानते हैं? हम जानते हैं कि युद्ध में हिंसा का सहारा लिया जाता है। हम जानते हैं कि युद्ध का अर्थ किसी देश के भीतर अथवा देशों के बीच राजनीतिक व्यवस्था का भंग हो जाना है। हम जानते हैं कि युद्ध को कोई व्यक्ति अथवा कोई समूह रोक नहीं सकता। हम जानते हैं कि युद्ध किसी समाज पर गहरे घाव छोड़ जाता है।

टिप्पणी

अनेकानेक विद्वानों ने इसका पता लगाने का प्रयास किया है कि संघर्ष क्यों होता है। एक बिंदु, जिस पर ये सभी विद्वान एकमत हैं, यह है कि किसी भी संघर्ष के कई कारण होते हैं, कोई गंभीर और कुछ अन्य। सभी इस पर सहमत हैं कि संघर्ष पर शोध करना जटिल है। नीचे संघर्ष के पांच मुख्य कारणों का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत है। किसी स्थिति वृत्तांत का अध्ययन करते समय छात्रों को इन कारणों को ध्यान में रखना चाहिए।

1. **विचारधारा का संघर्ष** : यह उन मूलभूत मूल्यों का संघर्ष है, जिनका संबंध इन बातों से होता है कि समाज में सरकार की भूमिका क्या हो, आर्थिक संसाधन कैसे प्राप्त हों और उनका उपयोग किस प्रकार हो, लोगों के लिए निर्णय कौन ले, निर्णयों का निर्धारण किस प्रकार किया जाए और किसी समाज में किसे पुरस्कार दिया जाए और किसे दंड। विचारधारा एक 'विश्व दृष्टिकोण' है। यह वह ताल है, जिससे सभी वस्तुओं को अनुभव किया जा सकता है।
2. **क्षेत्र और पर्यावरण का संघर्ष** : इसमें ज़मीन, पानी, नदियों पर नियंत्रण, प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण और उपयोग तथा पर्यावरण से संबद्ध विवाद आते हैं। क्षेत्र अकसर वह स्थान होता है, जहां अन्य प्रकार के संघर्ष होते हैं। इस संघर्ष के केंद्र में ज़मीन, पानी और अन्य प्राकृतिक संसाधन होते हैं।
3. **पहचान का संघर्ष** : यह संघर्ष इस प्रश्न को लेकर होता है कि हम कौन हैं। या फिर मैं कौन हूं। लोग चाहते हैं कि वे जहां रहें, सुरक्षित रहें। वे नहीं चाहते कि उनके जीवन को, उनकी जीविका को कोई खतरा या संकट हो अथवा उनके साथ किसी प्रकार का भेदभावपूर्ण व्यवहार हो। इस कोटि में जनजातीय, धार्मिक, जातीय, भाषायी और राष्ट्रीयता से जुड़े संघर्ष आते हैं। ज्यादातर अन्य संघर्षों की तरह पहचान का संघर्ष मूल्यों, मानकों और परंपरा के संघर्ष के प्रश्न का रूप ले लेता है। ये मान्यताएं लोगों के लिए इतनी अहम हो जाती हैं कि उन्हें उनके अस्तित्व को लेकर भय और आशंका रहती है और वे उन लोगों से घृणा करते हैं, जो उनकी इन मान्यताओं की उपेक्षा करते हैं।
4. **जातीय संघर्ष** : यह पहचान के संघर्ष का एक रूप है। मूल्यों और मान्यताओं की बजाय यह किसी समुदाय के लोगों के रंग से जुड़ा संघर्ष है। बाहरी रंग–रूप पर आधारित भेदभाव तब उत्पन्न होता है, जब स्वयं को श्रेष्ठ समझने वाला कोई समुदाय या समूह किसी अन्य समुदाय या समूह को उपेक्षा की दृष्टि से देखता है।
5. **शासन और सत्ता का संघर्ष** : यह संघर्ष शक्ति के दुरुपयोग के कारण पनपता है। सरल शब्दों में, ऐसे संघर्ष इस बात को लेकर उत्पन्न होते हैं कि किसी समूह के प्रति निर्णय कौन लेता है। निर्णय–निर्धारण की शक्ति के साथ आर्थिक मामलों, क्षेत्र और न्याय के मामले से जुड़े निर्णय आते हैं। यह संघर्ष अकसर इसलिए उत्पन्न होता है क्योंकि सत्तासीन लोग जाति अथवा धर्म के आधार पर भेदभाव करते हैं।

राजनीतिक संघर्ष

विद्वानों ने मानव अस्तित्व के अपरिहार्य तथ्यों में से एक 'राजनीति' का अलग–अलग ढंग से वर्णन किया है। यह मनुष्य के शांतिपूर्ण और संगठित सह–अस्तित्व का आधार

टिप्पणी

है। यह समाज के अन्य तंत्रों का नियमन करती है ताकि संघर्षों को कम किया जा सके, रोका जा सके। राजनीति एक अपरिहार्य प्रक्रिया है जिसके सहारे लोग परस्पर विचारों के आदान–प्रदान और कार्य के साथ–साथ अपने–अपने हितों के क्षेत्र में अपने–अपने निर्धारित लक्ष्यों को पूरा करते हैं। उनके अपने–अपने लक्ष्यों को पूरा करने का यह प्रयास अकसर राजनीतिक क्षेत्र में संघर्ष पैदा कर देता है।

राजनीतिक हिंसा से तात्पर्य है लोगों को चोट पहुंचाने अथवा उनकी हत्या करवाने या फिर संपत्ति को क्षति पहुंचाने की मंशा से कुछ लोगों या लोगों के किसी समूह द्वारा अपने विरोधियों को धमकी देना या उन पर शारीरिक प्रहार करना। उनके उद्देश्य, लक्ष्य, आसपास की स्थितियों, क्रियान्वयन और प्रभाव का राजनीतिक महत्व होता है। उनकी प्रवृत्ति किसी शक्ति संरचना की प्रचलित व्यवस्था में उस राजनीतिक तंत्र के लिए कुछ परिणामों के साथ अन्य लोगों के आचरणों को सुधारने की होती है।

इस परिभाषा की विशेष बात यह है कि हिंसक आचरण के प्रयोजन, विधियों और संकल्प के राजनीतिक आधार होने चाहिए। इसका वर्णन किसी राजनीतिक व्यवस्था के विरुद्ध, किसी राजनीतिक समुदाय के भीतर समस्त सामूहिक प्रहारों के रूप में किया जा सकता है। राजनीतिक संघर्ष में राज्यों के बीच युद्ध, राज्यों के विरुद्ध सशस्त्र क्रांति (छोटे संघर्षों से वृहत् स्तर के गृह युद्धों तक), विभिन्न पैमानों पर सशस्त्र अलगाववादी क्रांति और तख्ता पलट आते हैं।

राजनीतिक संघर्ष कुंठा, अभाव और आक्रमण के कारण हो सकता है। दोलां के शब्दों में, ''किसी अपेक्षित लक्ष्य के प्रति किसी व्यक्ति के प्रयास को रोकने के कारण उत्पन्न कुंठा में हमेशा आक्रमण की प्रेरणा होती है। प्रत्येक आक्रमण के पीछे कुंठा होती है...'' समूह या फिर लोग भी विद्रोह इसलिए करते हैं क्योंकि राजनीतिक तंत्र से उनकी अपेक्षा और उससे समुचित ढंग से जो कुछ उन्हें मिल सकता है, इन दोनों के बीच अंतर के कारण उनमें कुंठा उत्पन्न होती है। मनोविज्ञान आधारित विश्लेषण में कई भिन्नताएं हैं और अलग–अलग विद्वान संदर्भों पर अलग–अलग ढंग से जोर देते हैं। अभाव एक सापेक्ष विचारधारा है, जो संकेत देती है कि अभाव की ऐसी कोई परम अवस्था नहीं होती बल्कि दूसरों के प्रति किसी व्यक्ति के विचार हैं, जो महत्वपूर्ण होते हैं। अभाव और तथ्यतः कुंठा की भावना तब प्रबल हो जाती है जब कोई वस्तु किसी एक समूह के लिए अप्राप्य बताकर किसी दूसरे समूह को उपलब्ध करा दी जाती है। अभाव की व्याख्या से गहनता से जुड़ी एक विशिष्ट विचारधारा और भी है। इसके अनुसार यह केवल अभाव नहीं बल्कि अपूरित आशाएं और अपेक्षाएं हैं, जो हिंसक संघर्ष को जन्म देती हैं। समूहों–समुदायों के बीच संघर्ष असंतोष से उत्पन्न भावना के कारण पनपता है।

पहचान (सम्मान या मान्यता) का संघर्ष

मान्यता का संघर्ष उतना ही प्राचीन है जितना कि ज्ञात इतिहास। दि एंड ऑफ हिस्ट्री और दि लास्ट मैन के लेखक योशिहिरो फ्रांसिस फुकुयामा के अनुसार, यह ''हमारे आसपास हर जगह दिखाई देता है और विश्व भर में समकालीन आंदोलनों को रेखांकित करता है'। भोजन, आवास, सुरक्षा और जीवन की चाह स्वाभाविक है, किंतु मनुष्य की यह चाह यहीं तक सीमित नहीं है। वह मान्यता और स्वीकृति की कामना

भी रखता है। फुकुयामा हेगेल के इस सिद्धांत को स्वीकार करते हैं कि 'अन्य लोगों से मान्यता मिले बगैर कोई व्यक्ति आत्मचेतन नहीं हो सकता, अर्थात्, उसे एक अलग मनुष्य के रूप में आत्मबोध नहीं हो सकता।' इस प्रकार, उनके अनुसार, मनुष्य न केवल अन्य लोगों से मान्यता चाहता है बल्कि एक व्यक्ति के रूप में भी मान्यता चाहता है। वह चाहता है कि लोग उसकी क्षमताओं, गुणों और अन्य विशिष्ट जानकारियों को भी स्वीकार करें। इसलिए पहचान (मान्यता) में किसी व्यक्ति का आत्म–संकल्पन (Self-conception) और आत्म–परिचय (Self-definition) आते हैं, जिनकी व्याख्या सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक अथवा क्षेत्रीय संदर्भों में की जा सकती है। पहचान का मुद्दा एक सीमा का निर्धारण करता है, जिसके अनुरूप कोई व्यक्ति स्वयं को किसी समुदाय के सदस्य अथवा उससे इतर के रूप में देखता है। पहचान का विचार उस त्याग की सीमा के मानदंड भी तय करता है, जो त्याग समुदाय के हितार्थ लोग और समूह करने को तैयार रहते हैं।

जातीयता एक जटिल विषय है, जिसका संबंध हमेशा राजनीतिक, धार्मिक, कानूनी और मानव अस्तित्व के अन्य सामाजिक पहलुओं से रहा है। इसलिए, इस अवधारणा पर गंभीर अध्ययन हुए हैं और इसकी अनेकानेक व्याख्याएं भी हुई हैं। उदारहणस्वरूप, मैक्स वेबर जातीय समूहों का वर्णन इस प्रकार करते हैं, "वे मानवीय समूह जिनमें भौतिक अथवा प्रथागत समानताओं या दोनों समानताओं के कारण, या फिर उपनिवेशिक स्मृतियों और प्रवासन के कारण, अपने सामूहिक कुल की व्यक्तिगत मान्यता के प्रति आग्रह होता है।"

आर्थिक संघर्ष

आर्थिक संघर्ष वे संघर्ष होते हैं, जो तंत्र या व्यवस्था में सामाजिक–आर्थिक वंचना और असमानता से प्रेरित आर्थिक पुनर्वितरण की मांग के कारण जन्म लेते हैं। यह संघर्ष मुख्यतः उस स्थिति में पनपता है, जब किसी समूह को बुनियादी आर्थिक संसाधनों और अवसरों की सुविधा से वंचित रखा जाता है। अतः आर्थिक संघर्ष मुख्यतः बुनियादी आर्थिक संसाधनों और अवसरों की सुविधा से वंचित रखने की स्थिति में होता है। आर्थिक संघर्ष का एक कारक ज़मीन सर्वाधिक महत्वपूर्ण संसाधन है। यह वह आधार है जिस पर लोगों, उनके परिवारों और समाजों का जीवन टिका होता है। मानवीय मामलों में ज़मीन की भूमिका अहम होती है, क्योंकि यह परिवारों, समुदायों और समूहों को स्थायित्व दिलाने में पहली सीढ़ी का कार्य करती है। भूमि उपयोग को लेकर पशुचारकों और किसानों के बीच संघर्ष वस्तुतः भूमि संसाधनों, भूमि संसाधन आधार का उपयोग करने वाले सांस्थानिक साधनों–उपकरणों और भूमि उपयोग की प्रक्रिया के प्रति मतभेद के कारण उत्पन्न होता है।

• अपराध

अपराध मानव जाति की एक गंभीर समस्या रहा है और रहेगा। मानव समाज में, अपराध आदि काल से ही अस्तित्व में रहा है। अपराध सर्वव्यापी है, जिसकी घटनाएं अलग–अलग रूपों में हर समय हर जगह होती रहती हैं। यह तब भी था जब मनुष्य जाति का उदय हुआ और आज भी सभी मानव समाजों में व्याप्त है। इसका प्रभाव सभी लोगों और समुदायों–समूहों पर किसी न किसी रूप में पड़ता है। अपराध के स्थानीय, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय रूप होते हैं।

मानव समाज में अपराध का स्वरूप और स्थान

अपराध किसी नियम अथवा कानून का उल्लंघन है, जिसके विरुद्ध किसी सरकारी सत्ता द्वारा तय कोई दंड दिया जाता है। अपराध शब्द लेटिन के Crimen से व्युत्पन्न है जिसका मूल अर्थ दोष, आरोप है।

कोई वांछित सामाजिक व्यवस्था कायम करने और बनाए रखने के लिए अनौपचारिक संबंध और स्वीकृतियां पर्याप्त नहीं थीं, इसलिए राज्य के सामाजिक नियंत्रण की औपचारिक व्यवस्थाएं कायम हुईं। सांस्थानिक और विधिक तंत्र के साथ राज्य की संस्थाएं और अभिकरण लोगों को आचरणिक नियमों का पालन करने को विवश करते हैं और जो नहीं करते उन्हें दंड देते हैं। कानून के नियमों के अनुकूल आचरण को नियमित करने तथा कानूनों का पालन सुनिश्चित करने के लिए सभी देशों ने अलग–अलग तंत्रों का गठन और अपराधों की रोकथाम के लिए नीतियां व प्रणालियां तैयार की हैं। इनके अतिरिक्त कुछ उपचार और प्रतिबंध होते हैं और वे मिलकर एक दंड न्याय तंत्र का गठन करते हैं।

अपराध की परिभाषा

अपराध की एक आदर्श परिभाषा के अनुसार यह एक ऐसा आचरण है, जो प्रचलित नियमों, विशेष रूप से सांस्कृतिक मानदंडों का उल्लंघन करता है। इस दृष्टिकोण में अपराध की अवधारणा से जुड़े जटिल यथार्थों पर विचार करने के साथ–साथ यह भी समझने का प्रयास किया जाता है कि बदलते सामाजिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक और आर्थिक परिवेश, अपराध की वर्तमान परिभाषाओं, कानून के प्रवर्तन तथा राज्य द्वारा तय दंड प्रक्रियाओं पर किस प्रकार प्रभाव डालते हैं। ये संरचनात्मक यथार्थ अस्थिर और अकसर विवादास्पद होते हैं। उदाहरणस्वरूप, संस्कृतियों और राजनीतिक परिवेश में परिवर्तन होने पर, आचरण गैर–कानूनी अथवा कानूनसम्मत हो सकता है, जिसका अपराध की सांख्यिकीय दरों पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है।

इसी प्रकार, जिस विधि से अपराध के आंकड़ों को सही या उनकी गणना की जाती है, उसमें किसी तरह के परिवर्तन का प्रभाव लोगों के किसी निर्दिष्ट 'अपराध समस्या' के प्रति विचार पर पड़ सकता है। दैनिक जीवन में लोगों के अनुभव के साथ अपराध सांख्यिकी के ये सभी समायोजन अभिवृत्तियों को इस प्रकार आकार देते हैं कि लोग समझें कि समाज के किसी मानदंड विशेष के प्रवर्तन के लिए कानून का किस सीमा तक उपयोग किया जाना चाहिए। ऐसे कई तरीके हैं, जिनकी सहायता से दंड न्याय तंत्र की सहायता के बिना आचरण पर नियंत्रण किया जा सकता है। वस्तुतः, जिन मामलों में किसी निर्दिष्ट मानदंड पर कोई स्पष्ट सामंजस्य या सर्वसम्मति न हो, उनमें सत्ताधारी समूह द्वारा किसी दूसरे समूह के आचरण को रोकने के लिए कानून के उपयोग को उस दूसरे समूह की स्वतंत्रता पर अनुचित प्रतिबंध माना जा सकता है। समाज के सामान्य लोगों में कानून के प्रति सम्मान में कमी आ सकती है, चाहे वह विवादित कानून सक्रियता से लागू किया जाए या नहीं।

अपराध के कारण

समाज विरोधी आचरण अपराध होता है और उसे समाज के विरुद्ध अपराध ठहराया जाता है, जिसके लिए सरकार दंड देती है। अपराध के अनेकानेक कारण होते हैं, जिनमें कुछ सामान्य कारण इस प्रकार हैं :

टिप्पणी

- ग़रीबी
- कुछ लोगों की आपराधिक प्रवृत्ति
- लोक मानदंडों का अभाव/परिवेश की अस्थिरता
- न्याय संचालन की कमज़ोर व्यवस्था
- धार्मिक भावना व आस्था
- लालच
- कानून प्रवर्तन की कमज़ोर संस्थाएं
- कमज़ोर कानून
- कमज़ोर समाजीकरण
- मानसिक अस्थिरता
- कानून की जानकारी का अभाव

अपराध अनेक प्रकार की प्रतिकूल सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और पारिवारिक स्थितियों के कारण होता है। अपराध की रोकथाम के लिए उसकी जड़ों को समझना आवश्यक होता है। ये जड़ें जटिल और परस्पर संबद्ध हो सकती हैं, जिन्हें यहां संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है :

- आर्थिक कारक/ग़रीबी
- सामाजिक परिवेश
- पारिवारिक संरचना

आर्थिक कारक/ग़रीबी : ग़रीबी वित्तीय संसाधनों के अभाव के अतिरिक्त, शिक्षा के अवसरों की कमी, रोज़गार के सार्थक विकल्पों के अभाव, समुचित आवास की कमी, आशा के अभाव और ग़रीबी में जी रहे लोगों के साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार में दिखाई देती है।

सामाजिक परिवेश : किसी समाज की संरचना उस समाज का आईना होती है, जिसमें उसके लोगों और समुदायों के मूल्य और प्राथमिकताएं दिखाई देती हैं। असमानता, सेवाओं की यथार्थ अथवा अनुमानित असुलभता, परिवारों और पड़ोसियों को सहायता का अभाव, मूल्यहीनता, समुदायों में नेतृत्व की कमी, सत्ता में पक्षपात, मनोरंजन के एक साधन के रूप में टेलिविजन का अत्यधिक उपयोग, आदि अपराध के मूल सामाजिक कारण हैं।

पारिवारिक संरचना : समाज के लोगों को स्वस्थ और दायित्वनिष्ठ बनाने में परिवार की भूमिका अहम् होती है। दूसरी तरफ, परिवारों की दुष्क्रियाशील स्थितियों के कारण अपराध हो सकते हैं।

अपराध के सिद्धांत

अपराध नियमों अथवा कानूनों का उल्लंघन है जिसके लिए कोई सरकारी सत्ता अंततः किसी अपराध सिद्धि का निर्धारण कर सकती है। अपराध और अपराधों की व्याख्या अलग–अलग समाज अलग–अलग स्थानों पर और अलग–अलग कालों में अलग–अलग ढंग से कर सकते हैं। आधुनिक समाज आम तौर पर अपराध को जनता और राष्ट्र के

विरुद्ध अपराधों, अपकृत्यों से अलग के रूप में देखते हैं, जो निजी पक्षों के विरुद्ध वे अन्याय होते हैं जो वाद हेतुक को जन्म दे सकते हैं।

टिप्पणी

समाजशास्त्र में, मानकीय व्याख्या में अपराध को आपराधिक आचरण के रूप में स्थान दिया गया है जो प्रचलित मानकों अथवा सांस्कृतिक मानदंडों का उल्लंघन करते हैं – यह स्थापना देते हुए कि मनुष्य को सामान्यतः किस प्रकार आचरण करना चाहिए। यह उपागम अपराध की अवधारणा के इर्दगिर्द जटिल यथार्थों पर विचार करता है और यह समझने का प्रयास करता है कि बदलते सामाजिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक और आर्थिक परिवेश अपराध की बदलती परिभाषाओं और समाज की कानूनी, कानून–प्रवर्तन और दंडात्मक प्रतितिक्रियाओं के स्वरूप को पर किस प्रकार प्रभाव डाल सकते हैं।

ये संरचनात्मक यथार्थ अस्थिर और अकसर विवादास्पद रह जाते हैं। उदाहरण के लिए, संस्कृतियां बदलती रहती हैं और राजनैतिक परिवेश में परिवर्तन होता रहता है, इसलिए समाज कुछ खास आचरणों को आपराधिक अथवा कानूनी ठहरा सकते हैं, जिनका अपराध की सांख्यिकीय दरों पर प्रत्यक्ष प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, वहीं वे कानूनों के प्रवर्तन के लिए प्राकृतिक संसाधनों के आवंटन पर भी प्रभाव डालते हैं और इससे जनमत पुनः प्रभावित होता है। अनिष्टकारी आचरण करने का विचार रखने वाले किसी व्यक्ति को, दंड के रूप में डर का उपयोग करते हुए, उस आचरण से बचाने के लिए आपराधिक ठहराने के इस कार्य को समाज की एक निवारक, क्षति से बचाव करने वाली प्रक्रिया के रूप में देखा जा सकता है। राष्ट्र या राज्य इसमें इसलिए शामिल हो जाते हैं क्योंकि शासी संस्थाएं इस बात को लेकर आश्वस्त हो सकती हैं कि अन्य लोगों की क्षति को कम करने हेतु, व्यक्तिगत स्वतंत्रता को सीमित करते हुए, क्षतियों पर कोई रोक लगाए बिना, उन्हें आपराधिक न ठहराने का मूल्य आपराधिक ठहराने के मूल्य से अधिक होता है।

इसी प्रकार, अपराध से संबद्ध आंकड़ों के संग्रह और गणना में परिवर्तनों का प्रभाव अपराध की किसी निर्दिष्ट समस्या की सीमा के प्रति लोगों के विचार पर पड़ सकता है। लोगों के दैनिक जीवन में उनके अनुभव के साथ अपराध के विवरणों के ये समस्त समंजन उस सीमा पर अभिवृत्तियों को आकार देते हैं, जिस सीमा तक राज्यों या राष्ट्रों को किसी विशेष सामाजिक मानदंड को लागू करने अथवा बढ़ावा देने के लिए कानून या सामाजिक योजना का उपयोग करना चाहिए। अपराध विज्ञान व्यक्ति और समाज दोनों में आपराधिक आचरण के स्वरूप, सीमा, कारणों और उस पर नियंत्रण का वैज्ञानिक अध्ययन है।

अपराध के प्रकार

दीवानी कानून के विपरीत फौजदारी कानून, कानून का वह अंग है जिसका संबंध अपराध से होता है और जो वर्जित आचरण की व्याख्या करता है। इसकी व्याख्या नियमों के उस निकाय के रूप में की जा सकती है, जो उस वर्जित आचरण की व्याख्या करता है और जो इन कानूनों का उल्लंघन करने वालों के लिए दंड का निर्धारण करता है। दंड विधि विशिष्ट रूप से गंभीर परिणामों के, अथवा प्रतिबंधों के लिए, उसके नियमों का पालन करने में असफलता के लिए विशिष्ट होती है।

दंड विधि में, व्यक्ति के विरुद्ध अपराधों का अर्थ सामान्यतया एक ऐसा अपराध होता है, जो किसी व्यक्ति द्वारा किसी दूसरे व्यक्ति को शारीरिक कष्ट पहुंचाने अथवा

टिप्पणी

उसके साथ बल प्रयोग करने के रूप में किया जाता है। इन अपराधों का विश्लेषण आम तौर पर घातक अपराधों का, यौन अपराधों का अथवा इन दोनों से इतर अपराधों का वर्गीरण कर किया जाता है। हालांकि ज्यादातर यौन अपराध व्यक्ति के विरुद्ध अपराध भी होते हैं, किंतु यौन अपराधों का वर्गीकरण आम तौर पर अलग से किया जाता है। इसी प्रकार, हालांकि कई नरसंहारों में व्यक्ति के विरुद्ध कोई अपराध भी आता है, किंतु उनका वर्गीकरण आम तौर पर अपेक्षाकृत अधिक गंभीर श्रेणी के अंतर्गत किया जाता है।

हिंसात्मक अपराध : हिंसात्मक अपराध का तात्पर्य उस अपराध से है, जिसमें अपराधी पीड़ित पर हिंसात्मक बल का प्रयोग करता है या इसकी धमकी देता है। हिंसात्मक अपराधों में शस्त्रों की सहायता से या उनके बिना किये गए अपराध आते हैं। इनमें वे अपराध भी आते हैं, जिनमें अपराधी का उद्देश्य हिंसक कार्य, जैसे हत्या करना, होता है और वे अपराध भी जिनमें हिंसा किसी स्वार्थ, जैसे डकैती, का माध्यम होती है। इन अपराधों में हत्या, बलात्कार, डकैती, उत्तेजित हमला और सामान्य हमला मुख्य हैं।

यौन अपराध : यौन अपराध मानव यौन आचरण के वे रूप हैं जो अपराध हैं। ऐसा अपराध करने वाले व्यक्ति को यौन अपराधी कहा जाता है। कुछ यौन अपराध हिंसा के वे अपराध हैं, जिनमें यौनाचार शामिल होता है। अन्य यौन अपराधों में सामाजिक वर्जनाओं, जैसे कौटुंबिक व्यभिचार, पुरुषमैथुन, अभद्र अंग प्रदर्शन, आदि मुख्य हैं। अलग–अलग संस्कृतियों में इस बात को लेकर अंतर होता है कि क्या अपराध है और क्या नहीं, और अपराधों का दंड किस प्रकार व किस सीमा तक दिया जाए।

संपत्ति अपराध : अपराध की इस कोटि में चोरी, सेंधमारी, वाहन चोरी, आगजनी, उठाईगिरी और गुंडागिरी, आदि आते हैं। यह अपराध केवल धन–संपत्ति पर केंद्रित होता है और इसमें किसी पीड़ित के साथ न तो कोई बल प्रयोग किया जाता है न ही उसकी धमकी दी जाती है।

घृणा अपराध : यह अपराध तब होता है, जब कोई अपराधी किसी पीड़ित को केवल इसलिए अपना शिकार बनाता है क्योंकि वह किसी सामाजिक समूह विशेष का होता है।

आभासी अपराध : इस अपराध का तात्पर्य किसी अप्रत्यक्ष आपराधिक कृत्य से है, जो एक मैसिव मल्टीप्लेयर ऑनलाइन गेम (MMOG) में किया जाता है।

संगठित अपराध : संगठित अपराध अवैध कार्य में शामिल होने के उद्देश्य से अति केंद्रित उपक्रमों के पार– राष्ट्रीय, राष्ट्रीय अथवा स्थानीय समूहों द्वारा किया जाता है, जिनका संचालन अपराधी करते हैं। यह अपराध ज्यादातर धन लाभ के लिए किया जाता है। कभी–कभी अपराधी संगठन लोगों को अपने साथ व्यवसाय करने को विवश करते हैं, जैसे जब कोई गैंग 'सुरक्षा' के नाम पर दुकानदारों से धन ऐंठता है।

किशोर अपराध : किशोर अपराध का अर्थ नाबालिगों का अवैध कार्यों में शामिल होना है। अठारह वर्ष से कम आयु के किसी व्यक्ति द्वारा किया कोई अवैध कार्य किशोर अपराध की श्रेणी में आता है। अधिकांश विधिक तंत्र किशोरों के अपराध पर नियंत्रण के लिए विशेष प्रक्रियाओं की व्यवस्था करते हैं, जैसे किशोर कारावास (किशोर नरबंदी) केंद्र और न्यायालय। कोई किशोर अपराधी (अपचारी) वह व्यक्ति होता है, जिसकी आयु 18 वर्ष से कम हो और वह कोई ऐसा कार्य करे जो किसी वयस्क व्यक्ति

द्वारा किए जाने पर अपराध होता। इस प्रकार किसी अपराध के प्रकार और तीव्रता के अनुरूप, 18 वर्ष से कम आयु के लोगों को वयस्कों के रूप में दोषी ठहराया और उन पर मुकदमा चलाया जा सकता है।

टिप्पणी

किशोर अपराध का तीन श्रेणियों में वर्गीकरण किया जा सकता है :

1. **अपराध** : नाबालिगों द्वारा किये गए अपराध जिनकी सुनवाई किशोर न्यायालयों और न्याय तंत्र में की जाती है;
2. **आपराधिक आचरण** : वे अपराध जिनकी सुनवाई दंड–न्याय तंत्र में हो;
3. **स्थिति अपराध** : ऐसे अपराध जिनका वर्गीकरण केवल इस रूप में इसलिए किया जाता है क्योंकि अपराधी नाबालिग होता है, जैसे बिना अनुमति स्कूल से पलायन, इन अपराधों की सुनवाई भी किशोर न्यायालयों में की जाती है।

युवा लोग अत्यधिक किशोर अपराध करते हैं। नारीवाद के सिद्धांतकारों और अन्य लोगों ने इस पर शोध किया है कि ऐसा क्यों होता है। एक सिद्धांत यह है कि पुरुषत्व की भावना के कारण युवाओं में इस अपराध के विचार के पनपने की संभावना अधिक रहती है। युवा का शक्तिशाली, आक्रामक, दुस्साहसी और प्रतिस्पर्धी होना वे गुण हैं जो युवाओं को उनकी पुरुषत्व की भावना को व्यक्त करने को प्रेरित करते हैं। वे यथार्थतः स्वाभाविक रूप से आक्रामक, साहसी और ज़ोखिम लेने के प्रति प्रवृत्त होते हैं।

किशोर अपराधियों के प्रति जातीय आंकड़ों में एक उल्लेखनीय दृष्टिकोण भी है। इन आंकड़ों पर, जो बताते हैं कि अश्वेत और लेटिन अमेरिकी किशोरों में अपराध करने की संभावना अपेक्षाकृत अधिक होती है। विचार करते समय, ये बातें ध्यान में रखना ज़रूरी है : ग़रीबी, माता–पिता की यथा आवश्यक निगरानी का अभाव, कठोर पालन–पोषण और समकक्ष अपराधी समूहों से संबंध। ग़रीबी के कारण माता–पिता यथा आवश्यक देख–रेख नहीं कर पाते। उनके पालन–पोषण का तरीका कठोर होता है। वहीं, ग़रीबी किशोरों को समकक्ष अपराधी समूहों में शामिल होने को प्रेरित करती है। इन सब कारणों से किशोरवय बच्चे अपराध की ओर उन्मुख होते हैं।

नीचे कुछ पारिवारिक कारकों का विवरण प्रस्तुत है, जिनके चलते किशोरों के अपराध की ओर प्रवृत्त होने की संभावना रहती है :

- पालन–पोषण की देखरेख का स्तर;
- बच्चे को अनुशासन सिखाने का माता–पिता का तरीका;
- विशेष रूप से कठोर दंड;
- माता–पिता में झगड़ा या अलगाव;
- अपराधी माता–पिता या सगे–संबंधी;
- माता–पिता का दुर्व्यवहार अथवा उपेक्षा;
- माता–पिता के साथ संतान के संबंध की गुणवत्ता।

किशोर अपराध की रोकथाम : किशोरों में अपराध की प्रवृत्ति के कई कारक होते हैं, जिनकी रोकथाम ज़रूरी होती है और इसके लिए व्यापक स्तर पर प्रयास किए जाने चाहिए। रोकथाम के प्रयासों में सत्व दुर्व्यवहार, शिक्षा एवं उपचार, पारिवारिक परामर्श, युवा परामर्शदाता, माता–पिता को पालन–पोषण की शिक्षा, पढ़ाई–लिखाई में सहायता और किशोरों को आश्रय, आदि आते हैं।

टिप्पणी

गबन : गबन धनलोलुपता से प्रेरित एक अहिंसात्मक अपराध है, जिसमें अपराधी का उद्देश्य अवैध रूप से धन प्राप्त करना होता है। गबन कॉर्पोरेट अपराध के समान होता है, क्योंकि इसमें कर्मचारियों के कपट, घूसखोरी, धोखाधड़ी, भेदिया व्यापार (Insider trading), साइबर अपराध, प्रकाशनाधिकार उल्लंघन, हवाला, किसी की व्यक्तिगत अथवा वित्तीय जानकारी की चोरी (Identity theft), जालसाजी, आदि में लिप्त होने की संभावना अधिक रहती है।

शांति के विरुद्ध अपराध

अंतर्राष्ट्रीय कानून में शांति के विरुद्ध अपराध की व्याख्या 'आक्रमण के युद्धों की आयोजना, तैयारी, आरंभ, अथवा संचालन, या अंतर्राष्ट्रीय संधियों, समझौतों अथवा आश्वासनों के उल्लंघन में किसी युद्ध, या किसी सामूहिक योजना अथवा अभिसंधि या कपटसंधि में सहभागिता' के रूप में की गई है। शांति के विरुद्ध अपराध के उदाहरण इस प्रकार हैं : वर्ष 1935 में, 1937 में जापान का चीन पर आक्रमण, 1939 में स्तालिन और हिटलर के बीच दो गुप्त संधियां – पोलैंड के विभाजन और बाल्टिक राज्यों पर कब्जे के लिए, 1939 में ही फिनलैंड पर सोवियत रूस का आक्रमण, द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान जर्मनी की विजय, 1950 में उत्तर कोरिया की दक्षिण कोरिया पर चढ़ाई और 1990 में कुवैत पर इराक की चढ़ाई।

युद्ध अपराध : युद्ध अपराधों की व्याख्या 'हत्या', किसी दास श्रमिक से दुर्व्यवहार या उसके अथवा किसी अन्य प्रयोजन से अधिकृत क्षेत्र के लोगों के निर्वासन, युद्ध बंदियों की हत्या या उनसे दुर्व्यवहार, बंधकों की हत्या, सार्वजनिक या निजी संपत्ति की लूट, नगरों, कस्बों अथवा गांवों की अकारण बरबादी या सैन्य आवश्यकता के विपरीत तबाही समेत युद्ध के कानूनों अथवा प्रथाओं के उल्लंघनों के रूप में की जाती है।

मानवता के विरुद्ध अपराध : मानवता के विरुद्ध अपराधों की व्याख्या ऐसे कार्यों के रूप में की जाती है जो युद्ध अथवा शांति के दौरान नागरिकों के विरुद्ध व्यापक अथवा सुव्यवस्थित नीति के अंग के रूप में सोद्देश्य किये जाएं। इनमें हत्या, संहार, दासता, निर्वासन और अन्य अमानवीय कृत्य, या राजनीतिक, जातीय अथवा धार्मिक आधार पर अत्याचार या उत्पीड़न शामिल हैं।

- **आतंकवाद**

आतंकवाद के अंग्रेजी शब्द Terrorism की उत्पत्ति एक लेटिन शब्द (अनुमानतः Terreo) से हुई है, जिसका अर्थ 'आतंकित करना' या 'डराना' होता है। यह terror cimbricus वाक्य खंड का एक अंग बन गया जिसका रोमनों ने प्राचीन काल में ई. पू. 105 में एक क्रूर लड़ाकू जनजाति के आक्रमण का सामना करने हेतु जाते समय उत्पन्न आतंक के लिए किया। आगे चलकर फ्रांसीसी क्रांति के दौरान मैक्समिलिएन रॉब्सपियरे के खूनी शासन काल में इसका पुनः उपयोग किया गया।

आतंक असीम भय की एक अनुभूति है, और यही भय रॉब्सपीयरे ने फ्रांस में फैलाया। लुई सोलहवें को फांसी देने के बाद, रॉब्सपियरे फ्रांस का शासक बना। वह राजनीतिक दल जैकोबिन का सदस्य था, और अपनी शक्ति का उपयोग उसने अपने राजनीतिक शत्रुओं का दमन करने के लिए किया। हजारों लोग मारे गए और उसका यह शासन काल फ्रांस के इतिहास में क्रूरतम काल सिद्ध हुआ। समय की यह अवधि आतंक का शासन के नाम से इतिहास में दर्ज हुई। यह शासन लगभग एक वर्ष तक रहा और फिर स्थिति बदली और रॉब्सपियरे को गद्दी से उतार कर मार डाला गया।

टिप्पणी

फ्रांस की जनता ने राहत की सांस ली और तभी से लोगों ने बल का डर दिखाकर शक्ति का दुरुपयोग करने वाले लोगों को आतंकवादी कहना शुरू किया। आगे चलकर इंगलैंड के एक पत्रकार ने अपने एक आलेख में रॉब्सपियरे की कारस्तानियों का वर्णन करने के लिए आतंकवाद शब्द का उपयोग किया और इस प्रकार यह शब्द चलन में आया।

आतंकवाद शब्द का इतिहास

आतंकवाद शब्द का उपयोग सबसे पहले कब हुआ यह निश्चयात्मक रूप से कहना कठिन है, किंतु आज जिस आतंकवाद शब्द का उपयोग हो रहा है, उसकी जड़ें कम से कम 2000 वर्ष पूर्व के इतिहास में देखी जा सकती हैं। यही नहीं, आज का आतंकवाद कुछ अर्थों में धार्मिक विश्वासों से प्रेरित है। शब्द के सामान्यतः स्वीकृत उपयोग में इसे अकसर एक राजनीतिक आयाम भी दिया जाता है।

प्राचीन साहित्य में अत्याचार का पर्याप्त उल्लेख मिलता है, क्योंकि इसे यूनानी–रोमन सभ्यता के सर्वाधिक बड़े संकट के रूप में देखा जाता था। मध्यकाल के दार्शनिक भी अत्याचार की अवधारणा का ही उपयोग करते थे।

परिभाषा

आतंकवाद एक पद्धति है, जिसका उपयोग कोई भी व्यक्ति अथवा समूह किसी भी प्रयोजन से कर सकता है। हिंसा के एक स्वरूप के रूप में, आतंकवाद हमें उन लोगों की किंचित जानकारी दे देता है, जो इसका उपयोग करते हैं, किंतु इसकी कार्यनीति से यह पता नहीं चलता कि इसका उपयोग क्यों किया जा रहा है। इसलिए प्रवृत्तियों या रुझानों के विस्तृत विश्लेषण से पहले, यह स्मरण रखना उचित है कि केवल कार्यनीतिक समानता– अर्थात् 'आतंकवादी' साधनों के उपयोग – के आधार पर एक दूसरे से भिन्न हिंसात्मक संघर्षों के स्तरीय समाधानों को जोड़ना और उनका निर्धारण करना कोई उपयुक्त भविष्यवाणी नहीं करता। जैसा कि ब्रायन जेनकिन्स का मानना है– आतंकवाद सतह की एक पतली परत है और इसीलिए जिन विशिष्ट राजनीतिक और सामाजिक परिवेशों में यह पनपता है, उनके संदर्भ को समझे बिना इसे नहीं समझा जा सकता। किसी हिंसात्मक संघर्ष विशेष के 'आतंकवादी' स्वरूप के आधार पर उसके कारणों और समाधानों की परख करने के प्रयास से हम किसी उचित निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकते।

इन सीमाओं को ध्यान में रखते हुए, इस इकाई का उद्देश्य कुछ प्रवृत्तियों और घटनाक्रमों की पहचान करना है, जो उस संदर्भ की व्याख्या करने में सहायक हो सकते हैं, जिनमें एक कार्यनीति के रूप में आतंकवाद का उपयोग किया जाता रहा है और आगे भी किया जा सकता है। यहां आतंकवाद के स्वरूप में आए कुछ उन परिवर्तनों–बदलावों का विश्लेषण किया जाएगा, जिन्हें अकसर सम्मिलित रूप में 'नया आतंकवाद' कहा जाता है। ध्यान दें कि किस प्रकार सलाफी जिहादी आतंकवाद और आतंक के विरुद्ध युद्ध ने इस्लामी आतंकवाद की गतिविधियों को नई दिशा दी।

बीसवीं शताब्दी का यह विश्व अपेक्षाकृत अधिक अस्थिर, अननुमेय और अपेक्षाकृत अधिक असुरक्षित है, जैसा मानव जाति के इतिहास में पहले कभी नहीं रहा। आतंकवाद व्यापक स्तर पर फैल चुका है और इसके प्रभाव पूरे विश्व में महसूस किए जाते हैं। हालांकि आतंकवाद की समस्या को पूरा विश्व झेल रहा है, किंतु इसके स्वरूप को लेकर अंतर्राष्ट्रीय समुदाय अंतिम रूप से एकमत नहीं है। हॉफमैन (1998) के अनुसार, शब्द आतंकवाद राजनीति और संवेग से आवेष्टित है, जिसके फलस्वरूप इसका कोई सटीक अर्थ निकालना कठिन हो जाता है।

सन् 1970 और 1980 के दशकों में, संयुक्त राष्ट्र ने आतंकवाद की व्याख्या करने का प्रयास किया, किंतु राष्ट्रों की स्वतंत्रता और आत्म–निर्णय के मुद्दे पर संघर्षों को लेकर हिंसा के प्रति सदस्य राष्ट्रों के मतों में अंतर होने के कारण कोई सर्वमान्य व्याख्या प्रस्तुत नहीं हो सकी। सन् 1998 में श्मिट एवं जोंगमैन द्वारा संचालित शोध के अनुसार आतंकवाद की असंख्य परिभाषाएं हैं। संयुक्त राज्य आतंकवादी शोध केंद्र का भी मानना है कि 'स्वरूप के आधार पर इसकी व्याख्या करना कठिन है'। इस प्रकार, आतंकवाद की कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं है, किंतु यहां कुछ प्रमुख परिभाषाओं का उल्लेख समीचीन होगा।

कर्स्टेन बॉक्सटेट ने आतंकवाद की परिभाषा किसी असममित संघर्ष में राजनीतिक हिंसा के रूप में की है, जो हिंसक अत्याचार और युद्ध के प्रति अनिच्छुक समूहों का नाश कर आतंक और शारीरिक भय फैलाने के लिए शुरू किया जाता है। इन कार्यों का प्रयोजन किसी अवैध और गुप्त संगठन का संदेश प्रसारित करना होता है। आतंकवाद का उद्देश्य छोटे–बड़े लक्ष्यों की पूर्ति हेतु ज्यादा से ज्यादा प्रचार के लिए जनसंचार माध्यमों का दोहन करना होता है।

जेम्स एम. पोलैंड के अनुसार, आतंकवाद किसी राजनीतिक अथवा कार्यनीतिक लाभ प्राप्त करने हेतु, भय और संत्रास फैलाने के लिए निर्दोष लोगों की सुनियोजित, सुविचारित, सुव्यवस्थित हत्या, उत्पात और धमकी है।

ब्रायन जेनकिन्स आतंकवाद को राजनीतिक परिवर्तन के लिए बल का उपयोग या धमकी भरा उपयोग मानते हैं।

वॉल्टर लेकियर मानते हैं कि आतंकवाद किसी राजनीतिक उद्देश्य को प्राप्त करने के ध्येय से बल का अवैध उपयोग है, जिसमें निर्दोष लोगों को आखेट बनाया जाता है।

स्टर्न का मानना है कि आतंकवाद प्रतिशोध लेने के ध्येय से युद्ध के प्रति अनिच्छुक लोगों के विरुद्ध हिंसा का एक कार्य अथवा धमकी है।

संयुक्त राष्ट्र के अनुसार आतंकवाद को राजनीतिक प्रयोजनों से जनसाधारण में, लोगों के किसी समूह या समुदाय के बीच आतंक फैलाने या किसी व्यक्ति विशेष को भयभीत करने की आपराधिक गतिविधि के रूप में देखा जा सकता है, जो किसी भी स्थिति में अनुचित है।

हालांकि आतंकवाद ने एक लंबे समय से विश्व को झकझोर रखा है, किंतु 11 सितंबर, 2001 को अमेरिका पर किया गया आतंकवादी हमला सर्वाधिक दुखद था जिसने समस्त विश्व का ध्यान आकृष्ट किया। इस त्रासद घटना में भारी संख्या में लोग मारे गए, जिनमें अमेरिकी भी थे और विदेशी भी। इस भयंकर घटना से वे देश भी डर गए, जो अब तक आतंकवाद को कोई गंभीर सामाजिक और राजनीतिक समस्या नहीं मानते थे, और उन्होंने इस संकट का नाश करने के वैश्विक आंदोलन में सहयोग करने का निश्चय किया। आज सभी देश मानते हैं कि यह आतंकवाद उनकी विदेश नीतियों के समक्ष चुनौती बन कर खड़ा है।

स्वरूप

आतंकवादी गतिविधियां संघर्ष और शांति दोनों के दौरान हो सकती हैं। इनमें वे अपराध आते हैं जो तर्कों व आदर्शों के जटिल परिवेश से प्रेरित होती हैं। इनका चित्रण उन

लोगों या संगठनों पर निर्भर करता है, जो इन्हें अंजाम देते हैं और जो समय के साथ–साथ बदल भी सकते हैं। यासेर अराफात और नेल्सन मंडेला इसके उदाहरण हैं, जिन्हें अमेरिका ने कभी आतंकवादियों की अपनी सूची में दर्ज कर रखा था। कालांतर में इन दोनों व्यक्तियों को नोबेल शांति पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इससे यह सिद्ध होता है कि आतंकवाद की समस्या और कोई व्यक्ति आतंकवादी है या नहीं इसका निर्धारण एक गंभीर राजनीतिक व विवादास्पद मामला है। आतकंवाद के जटिल स्वरूप और आतंकवाद को हवा देने वाले लोगों के प्रति राजनीतिक व प्रचलित अवधारणाओं पर विचार करने के बाद, स्थितियों पर विचार और उनका मूल्यांकन करने के साथ–साथ, इस बात पर भी ध्यान देना चाहिए कि आतंकवाद पर उनका प्रभाव किस प्रकार पड़ सकता है। ऐसे में यह आवश्यक है कि आतंकवाद के स्वरूप का विस्तृत विश्लेषण किया जाए और हम आतंकवाद व अपराध और युद्ध पर अलग–अलग ढंग से विचार करें। हम आतंकवाद की विशेषताओं और उसकी वैचारिक अभिप्रेरणा पर भी विचार करेंगे।

आतंकवाद को अपराध अथवा युद्ध माना जाए या राजनीतिक सैन्य कार्य इस पर विद्वान एकमत नहीं हैं। यदि आतंकवाद को अपराध माना जाए, तो इसके लिए साक्ष्यों का संग्रह कर उसे भड़काने वालों को कानून के समक्ष उपस्थित करना होगा। यह दृष्टिकोण अंतर्राष्ट्रीय सहयोग की समस्याओं को जन्म देता है। आतंकवाद को पारंपरिक युद्ध समझना भी उचित नहीं है। किसी देश की सेना का उसके दुश्मन देश की सेना को मारने के लिए उसके किसी शहर में प्रवेश करना और इस क्रम में निर्दोष लोगों की हत्या करना युद्ध अपराध का एक उदाहरण है, किंतु अपराध होते हुए भी इसे आतंकवाद नहीं कहा जाता। आतंकवाद और अपराध के बीच अंतर करते समय ध्यान आक्रमण के लक्ष्य की बजाय, उसके कारण और प्रभाव पर देना चाहिए।

आतंकवाद की विशेषताएं

आतंकवाद अपराध से इस अर्थ में भिन्न होता है कि अपराध–विशेष किसी निर्दिष्ट लक्ष्य पर केंद्रित होता है, जबकि आतंकवादी गतिविधियां आतंकवादी संगठनों की दीर्घकालिक अभिप्रेरणाओं के अनुरूप आम तौर पर जारी रहती हैं। इनमें आतंकवादी युवा पत्थर मारने से शुरू करते हैं और अंततः 9 सितंबर जैसी घटना को अंजाम देते हैं। आपराधिक गतिविधियां उद्‌देश्यों पर केंद्रित होती हैं, जबकि आतंकवादी गतिविधियां अकसर अंधाधुंध होती हैं। आपराधिक गतिविधियों में कुछ ही लोग शामिल होते हैं और यथासंभव चुपके से काम करते हैं। इसके विपरीत आतंकवादी संगठन हालांकि गोपनीयता बरतते हैं, किंतु अपने उद्‌देश्यों के प्रचार के लिए जनसंचार माध्यमों का सहारा लेते हैं। आतंकवाद के स्वरूप के मुख्य तत्व इस प्रकार हैं :

1. आतंकवाद एक अंतर्राष्ट्रीय घटना है, जो सुविचारित होता है।
2. यह एक हिंसात्मक कार्य है, जो भय और आतंक फैलाता है।
3. यह किसी लक्षित श्रोतावर्ग अथवा समाज को अपना ध्येय बनाता है और उसमें बदलाव लाना चाहता है।

इतिहास

आतंकवाद का इतिहास लगभग दो हजार वर्ष पुराना है। कुछ लोगों के अनुसार इसकी जड़ें रोमन साम्राज्य में थीं। कुछ अन्य लोग इसे ईसवीं सन् की पहली शताब्दी में कट्‌टरपंथियों से जोड़ कर देखते हैं। रोमन शासक अपने घरेलू असंतोष पर काबू करने

के ध्येय से संदिग्ध शत्रुओं का नाश करने के लिए आतंकवाद के विभिन्न स्वरूपों का उपयोग करते थे। इन गतिविधियों विषपान कराना, सूली पर चढ़ाना, सरेआम फांसी देना, आदि मुख्य थीं। ये कट्टरपंथी रोमन साम्राज्य के घोर विरोधी थे। उनका लक्ष्य मुख्य रूप से उत्सवों के दिन बाजारों की भीड़ में या भीड़ भरे किसी अन्य स्थल पर हत्याएं करना था, ताकि इसका संदेश रोमनों और उनसे सहानुभूति रखने वाले यहूदियों तक पहुंच सके।

ईसवी सन् की ग्यारहवीं से तेरहवीं शताब्दियों के बीच ईसाई धर्म–योद्धाओं से लड़ने में यही नीति इस्लामी आंदोलन ने भी अपनाई। कट्टरपंथियों की तरह ही इस्लामी आंदोलनकारी भी रोमनों को आक्रांता के रूप में देखते थे। वे सीरिया के कुछ हिस्सों में भी धर्म–योद्धाओं को आक्रांता के रूप में देखते थे। आत्मघाती हमले का चलन संभवतः इन्हीं दिनों शुरू हुआ जो आज भी फिदायीन के रूप में जारी है। हिंसा को वे पुण्य का कार्य मानते थे। उनकी मान्यता थी कि इस प्रकार कुर्बानी देने पर क़यामत के दिन उन्हें स्वर्ग मिलेगा।

फ्रांसीसी क्रांति के पहले आतंकवाद को उचित ठहराने के लिए धर्म का उपयोग किया जाता था। तब माना जाता था कि राजा को दैवीय अधिकार होते हैं, अर्थात् उसे उसके अधिकार ईश्वर से प्राप्त होते हैं। किंतु, बढ़ते आतंकवाद ने इस मान्यता को खत्म कर दिया। धीरे–धीरे सत्ता के लोग मारे जाने लगे और 1881 में तो जार अलेक्जांडर द्वितीय को ही मार डाला गया।

इस प्रकार सदियों से पनपता–बढ़ता आतंकवाद अपने वर्तमान स्वरूप में आया। आज इसने लगभग समूचे विश्व को अपने जाल में फंसा रखा है।

कारण

आतंकवाद के कारणों की व्याख्या अलग–अलग विद्वानों ने अपने–अपने ढंग से की है। कुछ विद्वानों के अनुसार इसके मूल में आर्थिक वंचना है। गर्र (1970) का मानना है कि ग़रीबी और आर्थिक असमानता जैसी कुछ संरचनात्मक आर्थिक स्थितियां कुंठा को जन्म देती हैं, जिसके चलते हिंसा की संभावना बढ़ जाती है। लोगों के मनोवैज्ञानिक चिंतन में भी आतंकवाद का कारण निहित होता है। इन विद्वानों ने उन स्थितियों और विशेषताओं की सीमा के अन्वेषण और विश्लेषण का प्रयास किया है, जिनके चलते संकट इतना बढ़ सकता हो कि कोई उग्र सुधारवादी समूह आतंकवाद की राह पर चल पड़े। रासो का मानना है कि राजनीतिक, धार्मिक और दार्शनिक मीमांसाएं आतंकवाद का कारण हैं। उनके अनुसार, ग़रीबी, अज्ञानता, क्लेश, अकाल, सामाजिक बहिष्कार, उपेक्षा, आदि अंतर्निहित कारक हैं, जो लोगों को आतंकवाद को अपनाने के लिए प्रेरित करते हैं। (गर्र, *ह्वाइ मेन रिबेल,* प्रिंस्टन यूनिवर्सिटी प्रेस, प्रिंस्टन)

इस प्रकार, आतंकवाद के अनेकानेक कारण हैं। विद्वानों ने मनोवैज्ञानिक, वैचारिक और कार्यनीतिक परिप्रेक्ष्यों में आतंकवाद के कारणों पता लगाने का प्रयास किया है, जिनका संक्षिप्त विश्लेषण निम्नलिखित है–

मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य

लोगों की अपनी मनोवैज्ञानिक मनोदशा के अनुरूप आतंकवाद में शामिल होने के उनके कारण नितांत रूप से अपने हो सकते हैं। उनका अभिरोचन या अभिप्रेरण घृणा अथवा सत्ता की आकांक्षा से अधिक कुछ नहीं हो सकता।

टिप्पणी

वैचारिक या विचारधारात्मक परिप्रेक्ष्य

विचारधारा की परिभाषा सिद्धांतों, मूल्यों और मान्यताओं के रूप में की जाती है, जिनसे कोई समूह अपने विशेष लक्ष्यों और उद्‌देश्यों की पहचान करता है। विचारधारा में धर्म अथवा राजनीतिक दर्शनों और कार्यक्रमों का समावेश हो सकता है। जर्मनी का बदर मीनहॉफ, श्री लंका का लिबरेशन टाइगर्स ऑव तमिल ईलम (एलटीटीई), उत्तरी आयरलैंड का आइरिश रिपब्लिकन आर्मी (आइआरए), आदि किसी विशिष्ट विचारधारा से प्रेरित आतंकवादी समूहों के उदाहरण हैं। जर्मनी के मध्यवर्गीय वयस्कों का आतंकवादी समूह बदर मीनहॉफ पूंजीवाद का विरोधी था और देश में पूंजीवाद की आधारभूत संरचना को उखाड़ फेंकना चाहता था। श्री लंका का लिबरेशन टाइगर्स ऑव तमिल ईलम देश के तमिल लोगों के लिए एक अलग राज्य का गठन करना चाहता है। आइरिश रिपब्लिकन आर्मीज आयरलैंड को इंग्लैंड से अलग करना चाहता है।

कार्यनीतिक परिप्रेक्ष्य

आतंकवाद को कभी–कभी राजनीति की असफलता के एक तार्किक विस्तार के रूप में भी देखा जाता है। यदि सरकार लोगों के कष्ट पर ध्यान नहीं दे, तो वे हिंसा का सहारा ले सकते हैं। इसे आतंकवाद का एक कार्यनीतिक कारण कहा जा सकता है। दक्षिण अफ्रीका का संगठन अफ्रीकी राष्ट्रीय कांग्रेस (एएनसी) इसका एक उदाहरण है, जिसने समस्या के राजनीतिक उपायों के असफल हो जाने पर आतंकवाद का रुख किया। देश अपने रणनीतिक हितों को पूरा करने के लिए आतंकवाद का सहारा लेते हैं।

आतंकवाद के प्रकार

आधुनिक सुरक्षा विशेषज्ञों और विद्वानों ने आतंकवाद की व्याख्या और वर्णन सुव्यवस्थित प्रारूपिक वर्गीकरणों के संदर्भ की सीमा में किया है। विभिन्न विधाओं में प्रारूपिक वर्गीकरणों अथवा प्रकारों का उपयोग आतंकवादी संगठनों के माध्यम के रूप में किया गया है। विषयों तथा विचारों के संरूपों और संयोजन का अध्ययन कई अर्थों में उपयोगी है। हमारे अध्ययन के इस अंश में हम आतंकवाद के निम्नलिखित प्रकारों का विवेचन करेंगे–

- वैश्विक या अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद
- राष्ट्रीय आतंकवाद
- क्षेत्रीय आतंकवाद
- राज्य संचालित और राज्य समर्थित आतंकवाद
- घरेलू आतंकवाद
- धार्मिक आतंकवाद
- राजनीतिक आतंकवाद
- क्रांतिकारी आतंकवाद
- आत्मघाती आतंकवाद
- कृषि आतंकवाद
- पारिस्थितिकी आतंकवाद
- मादक द्रव्य आधारित आतंकवाद (Narcoterrorism)

टिप्पणी

- जैव–आतंकवाद
- रासायनिक आतंकवाद
- नाभिकीय आतंकवाद
- रेडियोधर्मी आतंकवाद
- साइबर–आतंकवाद

वैश्विक या अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद : वैश्विक या अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद का तात्पर्य एक से अधिक देशों के नागरिकों या भूभागों से संबद्ध आतंकवाद से है। आधुनिक युग में आतंकवाद सन् 1937 से अंतर्राष्ट्रीय समुदाय की चिंता का विषय रहा है, जब राष्ट्र संघ ने आतंकवाद निवारण एवं दंड अभिसमय का निर्धारण किया। किंतु, अंतर्राष्ट्रीय समुदाय सन् 1963 से अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद की रोकथाम से जुड़े कानूनी प्रणालियों पर जोर देता रहा है, जिनमें आतंकवाद के विरुद्ध वैश्विक कानूनी व्यवस्था शामिल है। कुछ समय से संयुक्त राष्ट्र महासभा की कार्यसूची में आतंकवाद उन्मूलन मापदंड दर्ज हैं।

राष्ट्रीय आतंकवाद : आतंकवाद का यह स्वरूप शासक वर्ग के दमन व उत्पीड़न के शिकार अल्पसंख्यक जातीय अथवा धार्मिक समूहों के हितों की रक्षा और उन्नयन के लिए कार्य करता है। नाइजीरिया में इस तरह के कुछ आतंकवादी संगठन सक्रिय हैं, जिनमें नाइजर डेल्टा, इगबेसू बॉयज नाइजर डेल्टा पीपल्स वॉलंटियर फोर्स (एनडीपीवीएफ), मूवमेंट फॉर दि इमैन्सिपेशन ऑफ दि नाइजर डेल्टा (एमईएनडी), मूवमेंट फॉर दि सर्वाइवल ऑव दि ओगोनी पिपल (एमओएसओपी), इजाव यूथ कांग्रेस (आइवाइसी) शामिल हैं। इस तरह के संगठनों के कार्यकर्ता ग़रीबी, बेरोज़गारी, वंचन और उपेक्षा के विरुद्ध कार्य करते हैं।

क्षेत्रीय आतंकवाद : यह आतंकवाद अपने क्षेत्र तक ही सीमित रहता है, किंतु अपने आसपास के देशों की सहायता लेता है। वहीं, क्षेत्रीय आतंकवाद के समूह राज्य स्तर पर एक दूसरे से जुड़े होते हैं। ये समूह न केवल एक दूसरे के हितों के प्रति सहानुभूति रखते हैं, बल्कि आवश्यकता पड़ने पर एक–दूसरे की वित्तीय, सूचनात्मक और तकनीकी सहायता भी करते हैं। उनके इस परस्पर व्यवहार का प्रभाव अन्य देशों पर भी पड़ता है।

राज्य संचालित और राज्य समर्थित आतंकवाद : अपने नागरिकों को भयभीत करने के लिए सरकारें अपने देश के भीतर बल अथवा बल की धमकी का प्रयोग या फिर अन्य देशों पर आक्रमण करने के लिए अपने भूभाग के भीतर आतंकवादी समूहों की सहायता कर सकती हैं। अपने स्वार्थपूर्ण लक्ष्यों को पूरा करने के लिए अपने नागरिकों को डराने हेतु सरकारें आतंकवाद का सहारा लेती हैं। शासन के लोग अपने विरोधियों का दमन करने के लिए भी कभी–कभी राजनीतिक आतंकवाद का प्रयोग करते हैं।

राज्य समर्थित आतंकवाद की व्याख्या एक गुप्त युद्ध के रूप में की जा सकती है, जिसका प्रयोजन आतंकवादियों की सहायता से गुप्त ढंग से युद्ध छेड़ना होता है। आतंकवाद को राज्य का समर्थन एक चिंताजनक प्रवृत्ति है, जो पिछले कुछ समय से तेजी से बढ़ी है।

घरेलू आतंकवाद : घरेलू आतंकवाद किसी देश की सीमा के भीतर तक सीमित रहता है, और इसलिए इससे निपटना केवल उस देश का दायित्व होता है। किंतु, घरेलू आतंकवाद के संगठन क्षेत्रीय और वैश्विक आतंकवादी समूहों की सहायता करते हैं।

टिप्पणी

घरेलू आतंकवाद, आतंकवाद का सर्वाधिक विस्तृत रूप है और कभी–कभी प्रभावित देश की सरकार इसे लेकर अत्यंत चिंतित रहती है। नाइजीरिया का बोको हरम संगठन घरेलू आतंकवाद का एक ऐसा ही संगठन है, जिसने कई आतंकवादी घटनाओं को अंजाम दिया है। यह जनसंचार माध्यमों के संस्थानों समेत सार्वजनिक व निजी संगठनों, लोगों, पूजास्थलों, सेना के बैरकों, पुलिस के मुख्यालयों, आदि को अपना निशाना बनाता है। इसने संयुक्त राष्ट्र के अबूजा स्थित भवन पर भी हमला किया।

धार्मिक आतंकवाद : आज पूरे विश्व में पैर पसार चुका धार्मिक आतंकवाद वैश्विक समुदाय के लिए एक मुख्य समस्या बन गया है। इसके विपरीत धर्मनिरपेक्ष आतंकवाद की घटनाओं में पर्याप्त कमी आई है। कट्टरपंथी विचारधाराओं के एक नए सशक्त सम्मिश्रण ने संघर्ष, उपनिवेशवाद विरोधी स्वतंत्रता और धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवाद की पुरानी विचारधाराओं के समक्ष चुनौती खड़ी कर दी है। दमनकारी समाजों में जहां एक ओर धार्मिक हिंसा को ज़मीनी स्तर पर असीम आतंकवादी सहायता मिलती है, वहीं सुधार की अनुमति नहीं दी जाती।

धार्मिक आतंकवाद एक प्रकार की राजनीतिक हिंसा है – किसी आस्था विशेष के बृहत्तर महिमामंडन के लिए एक ईश्वर प्रदत्त प्रबल मान्यता से प्रेरित आतंकवादी हिंसा। इस प्रकार यह धार्मिक लक्ष्यों की पूर्ति के लिए अपनाया जाने वाला आतंकवाद है। इसके अनुयायियों और संगठनों का मानना है कि आस्था के नाम पर किये गए कार्यों को ईश्वर क्षमा कर देता है और मरणोपरांत पुरस्कार भी देता है। संक्षेप में, किसी की धार्मिक आस्था हिंसा को वैध ठहराती है, जब तक वह ईश्वर की इच्छा के अनुरूप होती रहती है। कभी–कभी यह राजनीति से भी प्रेरित होता है।

धर्म के नाम पर आतंकवाद सदियों से मानवीय मामलों की एक विशेषता रही है। लोगों, सभ्यताओं, राष्ट्रों और साम्राज्यों के इतिहास इसके उदाहरणों से भरे पड़े हैं। यह आतंकवाद सांप्रदायिक, जातिसंहारजन्य, शून्यवादी (Nihilistic) अथवा क्रांतिकारी हो सकता है।

राजनीतिक आतंकवाद : राजनीतिक आतंकवाद, आतंकवाद का राजनीति से प्रेरित एक रूप है। आतंकावादियों को दिये गए ज्यादातर कार्य राजनीति से प्रेरित होते हैं। आतंकवाद एक राजनीतिक युक्ति है, जिसका उपयोग सक्रियतावादी तब करते हैं, जब उन्हें लगता है कि बदलाव का और कोई रास्ता नहीं रह गया है। हॉफमैन का मानना है कि यह आतंकवाद अपने लक्ष्यों एवं प्रयोजनों में नितांत रूप से राजनीतिक होता है।

इग्बिनोविया जैसे विद्वानों ने सीमित राजनीतिक आतंकवाद और यथार्थ राजनीतिक आतंकवाद में अंतर बताने का प्रयास किया है। वह कहते हैं कि सीमित राजनीतिक आतंकवाद का तात्पर्य आतंकवाद के उन कार्यों से है, जो वैचारिक अभिप्रेरणाओं के प्रति संकल्पबद्ध होते हैं, किंतु जो सत्ता पर कब्जा करने के किसी संगठित अभियान का हिस्सा नहीं होते। दूसरी ओर, यथार्थवादी राजनीतिक आतंकवाद का आधार क्रांतिकारी होता है, जिसका एकमात्र लक्ष्य राजनीतिक व्यवस्था को उखाड़ फेंकना हो सकता है।

क्रांतिकारी आतंकवाद : क्रांतिकारी आतंकवाद का लक्ष्य क्रांति अथवा सुनियोजित क्रांतिकारी उद्देश्यों की प्राप्ति होता है। क्रांतिकारी आतंकवादियों का हमेशा अपना एक लक्ष्य होता है और वे राजनीतिक सत्ता पर कब्जा और उप–संरचना व बृहत संरचना दोनों का पुनर्गठन करना चाहते हैं।

आत्मघाती (फिदायीन) आतंकवाद : आत्मघाती आतंकवाद राजनीति से प्रेरित एक हिंसात्मक हमला है, जिसे राजनीति के क्षेत्र में सजग लोग बढ़ावा देते हैं। इसमें लोगों को आत्मघात के लिए तैयार किया जाता है और फिर वे अपनी कुर्बानी देते हुए लक्ष्य पर हमला करते हैं। आत्मघाती बमबाजों को उनके कार्य के परिणाम का पता होता है। युद्ध के लिए मनोवैज्ञानिक और शारीरिक रूप से प्रशिक्षित आतंकवादी को अपने लक्ष्य को ध्वस्त करते हुए मर जाना होता है। आत्मघाती आतंकवाद की यह खास विशेषता उसे राजनीतिक हिंसा के पारंपरिक युद्ध, हत्या, क्रांति और छापामार युद्ध जैसे अन्य रूपों से अलग करती है।

कृषि आतंकवाद : कृषि पर आतंकवादी हमले को राष्ट्रीय सुरक्षा के संकट के रूप में देखा जाता है। कृषि आतंकवाद, जैव आतंकवाद का एक उपवर्ग है, और इसकी परिभाषा भय फैलाने, आर्थिक क्षति पहुंचाने या फिर समाज को अस्थिर करने के ध्येय से जानबूझकर पशु अथवा पौधे की किसी बीमारी को जन्म देने की गतिविधि के रूप की जाती है।

मवेशी और फसलों को बरबाद करने के लिए रोगजनक सामग्री तैयार करना लोगों की हत्या करने के लिए युद्ध सामग्री तैयार करने से कहीं ज्यादा आसान होता है। कृषि सामग्री की तोड़–फोड़ करना भी उसी तरह आसान होता है। फसलों की कई किस्में ऐसी होती हैं, जो अलग–अलग किस्मों के खेतों में और अलग–अलग जलवायवीय स्थितियों में उगाई जाती हैं, और हर फसल किसी बीमारी विशेष के प्रति सुग्राही होती है। पौधों को लगने वाली बीमारियां विभिन्न रूपों में और छूत के विभिन्न स्तरों पर मौजूद रहती हैं, जो अलग–अलग फसलों को अलग–अलग ढंग से क्षति पहुंचाती हैं। कोई आतंकवादी इन स्थितियों का लाभ उठाते हुए किसी देश की खेती की फसलों और मवेशी को बरबाद कर सकता है। वहीं फसलें दूषित भी हो सकती हैं, जिन्हें खाने से लोगों में बीमारी फैल सकती है। वस्तुतः, कृषि आतंकवादी ये गतिविधियां लक्षित देश को आर्थिक क्षति पहुंचाने, समाज में अशांति फैलाने आदि के ध्येय से करता है।

पारिस्थितिकी आतंकवाद : इसे पर्यावरणीय आतंकवाद भी कहा जाता है, हालांकि कुछ विद्वान दोनों में भेद करते हैं। यह उग्र सुधारवादी पर्यावरणवाद का एक रूप है। सन् 1960 से पहले शब्द पारिस्थितिकी आतंकवाद की कोई अवधारणा नहीं थी, हालांकि पर्यावरण की सुरक्षा और संरक्षण के लिए लोग आतंक का सहारा बहुत पहले से लेते रहे हैं। पारिस्थितिकी (परितंत्री) आतंकवादी किसी देश की पारिस्थितिकी को आसानी से क्षति पहुंचा सकते हैं, जिसके परिणाम दूरगामी हो सकते हैं। इन आतंकवादी गतिविधियों का विनाशकारी प्रभाव उस देश के आसपास के देशों पर भी पड़ सकता है। इसके विपरीत कुछ लोग पर्यावरण के हित में पारिस्थितिकी आतंकवाद का सहारा लेते हैं। इस आतंकवाद का सहारा राजनीतिक लाभ के लिए भी लिया जा सकता है।

मादक द्रव्य आधारित आतंकवाद (Narcoterrorism) : मादक द्रव्य आधारित आतंकवाद आज विदेश नीति अथवा घरेलू नीति में एक चर्चित शब्द है। इस शब्द का पहले पहल उपयोग सन् 1993 में पेरू के राष्ट्रपति फर्डिनेंडो बेलांद टेरी ने किया और उसके बाद से इसकी अलग–अलग ढंग से व्याख्याएं की जाती रहीं। इस शब्द का उपयोग उन स्थितियों के लिए किया जाता रहा है, जिनमें अपनी आतंकवादी गतिविधियों के लिए धन जुटाने हेतु आतंकवादी नशीले पदार्थों की तस्करी करते हैं। इसका मूल तात्पर्य नशीले पदार्थों के तस्करों द्वारा सरकार या समाज की नीतियों को

टिप्पणी

प्रभावित करने के प्रयास से है। सरकार पर प्रभाव डालने या नशीले पदार्थों के व्यापार को सरकार द्वारा रोकने के विरोध में ये आतंकवादी हिंसा का सहारा भी लेते हैं।

जैव–आतंकवाद (Bioterrorism) : जैव आतंकवाद किसी देश की या किसी देश के किसी क्षेत्र की जन समुदाय को तबाह करने के ध्येय से व्यापक स्तर पर खतरनाक रोगों को फैलाने के लिए जीवाणुओं, विषाणुओं अथवा उनके विषैले तत्वों का एक सुनियोजित और सुविचारित उपयोग है। इन जीवाणुओं, विषाणुओं या उनके विषैले तत्वों के फैलने से व्यापक स्तर पर लोगों की मौतें होती हैं या फिर महामारी और अन्य बीमारियां फैलती हैं और यही आतंकवादियों का लक्ष्य होता है।

रासायनिक आतंकवाद : रासायनिक आतंकवाद, आतंकवाद का वह रूप है, जिसमें हत्या करने, आघात और अन्य क्षति पहुंचाने तथा अर्थ व्यवस्था को तबाह करने के लिए रासायनिक पदार्थों के विषैले तत्वों का उपयोग किया जाता है। आतंकवादी रासायनिक पदार्थों का उपयोग राजनीतिक, धार्मिक या विचारधारात्मक कारणों से करते हैं।

नाभिकीय आतंकवाद : नाभिकीय शस्त्रात्रों के प्रसार से अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा के समक्ष उत्पन्न संकटों पर रक्षा विश्लेषक लंबे समय से विचार करते और उसके प्रति चिंता जताते रहे हैं। आतंकवादी गतिविधियों के कारण उत्पन्न समस्याओं की जांच भी होती रही है। किंतु, अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा के समक्ष उत्पन्न इन दो अलग–अलग संकटों – आतंकवादी अभिग्रहण और नाभिकीय विस्फोटक पदार्थों और उपकरणों का संभावित उपयोग – के गठजोड़ पर हाल में विशेष ध्यान दिया गया है।

नाभिकीय आतंकवाद की परिभाषा नाभिकीय विस्फोटक उपकरणों के उपयोग या उपयोग के प्रयास, नाभिकीय सामग्री के उपयोग या उपयोग के प्रयास अथवा नाभिकीय संयंत्रों पर हमले या हमले के प्रयास के रूप में किया जा सकता है। नाभिकीय आतंकवाद का शिकार कोई व्यक्ति, लोगों का कोई समूह, कोई संस्था या संगठन अथवा कोई सरकार हो सकती है।

रेडियोधर्मी (Radiological) आतंकवाद : पिछले कुछ दशकों से आतंकवादियों की दिलचस्पी रेडियोधर्मी सामग्री के प्रति बढ़ी है। रेडियोधर्मी आतंकवाद का तात्पर्य किसी क्षेत्र को रेडियोधर्मिता से संदूषित करने के ध्येय से रेडियोधर्मी पदार्थों के उपयोग से है। अपने लक्ष्यों की पूर्ति के लिए आतंकवादी इन पदार्थों का उपयोग कर सकते हैं। उनके लिए नाभिकीय आक्रमण से आसान रेडियोधर्मी आक्रमण करना हो सकता है। इस आक्रमण से अर्थव्यवस्था को भारी नुकसान पहुंच सकता है और प्रभावित क्षेत्र में आतंक का माहौल पनप सकता है, तथा वाणिज्यिक एवं अन्य गतिविधियां ठप्प पड़ सकती हैं। हालांकि इससे होने वाली क्षति नाभिकीय आक्रमण की तुलना में कम होती है।

साइबर आतंकवाद : आजकल आतंकवादी गतिविधियों में सूचना एवं संचार तकनीकी का उपयोग होने लगा है। इस तकनीकी का उपयोग विशेष रूप से आतंकवाद के अधिप्रचार, संगठनों के संचालन हेतु धनापूर्ति, कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षण, आक्रमणों की योजना, आक्रमण के क्रियान्वयन, आदि के लिए किया जाता है।

साइबर आतंकवाद एक विवादास्पद शब्द है। कुछ लेखक इसकी व्याख्या संकुचित रूप में करते हैं और इसे सूचना तंत्र के विरुद्ध ज्ञात आतंकवादी संगठनों के विनाशकारी कार्यों से जोड़ते हैं, जिनका उद्देश्य भय और आतंक फैलाना तथा

शारीरिक व भौतिक क्षति पहुंचाना होता है। इसके विपरीत कुछ अन्य लेखक इसकी व्याख्या विस्तृत स्तर पर करते हैं, जिसमें साइबर अपराध का समावेश भी होता है। इन व्याख्याओं और परिभाषाओं के आधार पर यह तय करना कठिन होता है कि कौन–सी गतिविधियां साइबर आतंकवाद की श्रेणी में हैं और कौन–सी साइबर अपराध की।

आतंकवाद से भारत की शांति और सुरक्षा को खतरा

आतंकवाद भारत की सबसे प्रमुख और बड़ी समस्या है, जिसने भारतीय प्रशासन व्यवस्था को जर्जर कर दिया है। आतंकवाद ने भारत की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि परिस्थितियों को प्रभावित किया है। जो क्षेत्र आज आतंकवादी गतिविधियों से लंबे समय से जुड़े हुए हैं, उनमें जम्मू–कश्मीर, मुंबई, मध्य भारत (नक्सलवाद) उत्तर–पूर्व के राज्य शामिल हैं। अतीत में पंजाब में पनपे उग्रवाद में आतंकवादी गतिविधियां शामिल हो गई हैं जो भारत देश की राजधानी दिल्ली तक फैली हुई है। आतंकवाद से भारत की शांति और सुरक्षा को सबसे बड़ा खतरा है।

आतंकवादी समूहों का मुख्य उद्देश्य लोगों के बीच आतंक पैदा करना होता है। जैश–ए–मोहम्मद, लश्कर–ए–तैयबा जैसे कई आतंकी संगठन भारत में सक्रिय हैं। भारत में धार्मिक आतंकवाद, नार्को आतंकवाद, वामपंथी आतंकवाद और राष्ट्रीय आतंकवाद शामिल हैं। आतंकवाद के कारण देश में विस्फोट, फायरिंग व अन्य प्रकार की गतिविधियां होती रहती हैं। आतंकवादी गतिविधियों की वजह से पर्यटन उद्योग लंबे समय तक ठप पड़ जाता है। भारत की अर्थव्यवस्था पर आतंकवाद का प्रतिकूल असर देखने को मिलता है। भारत में कई प्रतिभाशाली युवा देश में आतंकवादी हमलों की अनिश्चितताओं के कारण देश में नहीं रहना चाहते।

आतंकवाद सिर्फ भारत देश तक ही सीमित नहीं है बल्कि ये पूरे विश्व की समस्या बन चुकी है। विभिन्न देशों तथा भारत में आतंकवादी समूहों के गठन के कारण भिन्न–भिन्न हो सकते हैं।

आज भारत की सभी सीमाएं आतंकवादी गतिविधियों का सामना कर रही हैं। हम अपने पड़ोसी देशों पाकिस्तान, चीन, बांग्लादेश, श्रीलंका, आदि से चारों तरफ से असुरक्षित हैं। आतंकवादियों की वजह से भारत ने सबसे अधिक नुकसान उठाया है। बोडो, उल्फा, माओवादी और नक्सली जैसे आतंकवादी देश में आंतरिक आतंकवाद को संरक्षण देते रहे हैं। पाकिस्तान ने सीमा पार आतंकवाद में अहम भूमिका निभाई है। पाकिस्तान की खुफिया एजेंसी आई.एस.आई. आतंकवाद के निर्माण, प्रबंधन और प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। जम्मू–कश्मीर में युवाओं को धन का लालच देकर एवं धार्मिक भावनाओं को भड़काकर आतंकी घटनाओं को अंजाम देने के लिए तैयार किया जा रहा है। आई.एस.आई. द्वारा आतंकवादियों को दैनिक भत्ते दिए जा रहे हैं और आतंकवादी गतिविधियों को जारी रखने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है।

आतंकवाद से मुक्ति के उपाय

आतंकवाद राष्ट्रों और अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के समक्ष एक गंभीर संकट और चुनौती का रूप ले चुका है – विशेष रूप से अमेरिका, मैड्रिड और लंदन में हुए आतंकवादी हमलों के बाद। ऐसे में इसकी एक प्रभावशाली निराकरण या निवारण परमावश्यक हो चला है, किंतु निराकरण की इस प्रक्रिया में प्रजातंत्र, मानवाधिकारों, कानून के शासन, सर्वोच्च

मानवीय मूल्यों, आदि की अनदेखी नहीं की जा सकती। यहां इसकी रोकथाम का एक संक्षिप्त विवेचन समीचीन है।

टिप्पणी

आतंकवाद निवारण, जिसे पहले हिंसक अतिवाद निवारण कहा जाता था, आतंकवाद की विचारधारा के विभिन्न रूपों के विरुद्ध एक बहु–अभिकरणी, बहुविधायी, और सक्रिय उपागम है। आतंकवाद निवारण की प्रक्रिया आतंकवाद के संकटों और चुनौतियों से हमारे देश की रक्षा के लिए कार्य करती है। इसमें रोकथाम, हस्तक्षेप और मुक्ति के प्रयास किये जाते हैं। इसमें आतंकवादी समूहों के गठन को बढ़ावा देने वाले संकट के कारकों के साथ–साथ आतंकवादी अभियान की शुरुआत या फिर आतंकवादियों की किसी गंभीर आक्रमण की तैयारी का पता लगाते हुए उससे बचाव के प्रभावशाली उपाय करना शामिल है।

नीचे कुछ उपाय प्रस्तुत हैं, जिन पर विचार किया जा सकता है–

- आतंकवाद के विरुद्ध संदेश का प्रचार–प्रसार किया जाना चाहिए।
- राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर प्रजातांत्रिक मूल्यों और संस्कृति को बढ़ावा देना चाहिए, ताकि उपेक्षित वर्ग अपना स्थान सुदृढ़ कर सकें।
- इस समस्या के समाधान के लिए कूटनीतिक स्तर पर राजनीतिक प्रक्रियाएं अपनाई जानी चाहिए, बलप्रयोग कदाचित् इसका समाधान नहीं है।
- सरकारों को समाज में अलगाव के कारणों को दूर करना चाहिए। ग़रीबी, अशिक्षा, विकास की कमी, रूढ़िवाद, आदि पर ज़मीनी स्तर पर ही अंकुश लगाने या उन्हें दूर करने का प्रयास करना चाहिए।

• हिंसा

अपने विभिन्न रूपों में हिंसा हमारे समाज के प्रायः प्रत्येक पक्ष में व्याप्त है, अर्थात् सर्वव्यापी है। हम इसे समाचारपत्रों, पत्रिकाओं और किताबों में पढ़ते हैं, सिनेमाओं में और टेलिविजन कार्यक्रमों में देखते हैं, हम इस पर बातें करते हैं। अपने परिवारों, स्कूलों, समुदायों, कार्यालयों, खेल के मैदानों, युद्धक्षेत्रों, आदि में इसे देखते और महसूस करते हैं। इस प्रकार हमारे दैनिक जीवन में हिंसा के व्यापक स्वरूप को देखते हुए, इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि विद्वान और शोधकर्ता इसे अपने अध्ययन एवं शोध का विषय बनाते हैं। वहीं, चूँकि हिंसा का संबंध – लघु स्तर पर मित्रों तथा परिवारों के बीच परस्पर व्यवहार से और बृहत स्तर पर राष्ट्रों के बीच आक्रमणों तक – संस्थाओं और सामाजिक प्रक्रियाओं से है, इसलिए शोधकर्तागण अपनी–अपनी अभिरुचियों के अनुरूप इसे अपने शोध का विषय बना सकते हैं।

हिंसा से कोई भी देश अछूता नहीं है, किंतु इसका कोप मध्यम आय के देशों पर अधिक देखा जाता है, जिनमें से कई आंतरिक संघर्ष से ग्रस्त हैं। हिंसा उत्तरोत्तर अंतर्वैयक्तिक होती गई है, और विशेष रूप से शहरी क्षेत्रों में इसका जुड़ाव दिनोंदिन आपराधिक गतिविधियों से होता गया है।

कई देशों में उच्च स्तर की हिंसा और अपराध अकसर अंतर्निहित सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक चुनौतियों का संकेत देते हैं, जैसे सामाजिक असमानता, द्रुत गति से होता शहरीकरण, ग़रीबी, बेरोज़गारी और संस्थाओं की त्रुटियां।

किसी देश पर हिंसा का प्रतिकूल प्रभाव न केवल उसके नागरिकों के लिए बल्कि उसके समुदाय और अंततः उस देश के लिए अत्यंत हानिकारक होता है। कई देशों

में, हिंसा के प्रभाव के चलते उनका आर्थिक विकास कम हुआ है और ग़रीबी के उन्मूलन के मार्ग में बाधा आई है। दूसरी तरफ, हिंसा के कारण लोगों को शारीरिक और मानसिक अभिघात भी पहुंचता है और समस्त समाज के जीवन की गुणवत्ता कमज़ोर होती है।

हिंसा के अंग्रेजी शब्द Violence की उत्पत्ति लेटिन के Violentia से हुई है। लेटिन के इस शब्द का मूल Vis है, जिसका अर्थ बल होता है। हिंसा मुख्यतः लोगों या संपत्ति को क्षति पहुंचाने के लिए शारीरिक बल का प्रयोग है।

हिंसा का मुख्यतः तीन स्तरों में वर्गीकरण किया जा सकता है : अंतर्वैयक्तिक, सांस्थानिक और संरचनात्मक। अंतर्वैयक्तिक स्तर में हिंसा के सामाजिक–मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों पर विचार किया जाना चाहिए – कुंठा और लज्जा। हिंसा के सांस्थानिक स्तर में उन विधियों की जांच होनी चाहिए, जिनमें हिंसा को हमारी सामाजिक संस्थाओं (सेना, कुछ खेलों, महिला–पुरुष) के एक अंग के रूप में वैध ठहराया जाता है। अंत में, हिंसा के संरचनात्मक स्वरूप में, उन तरीकों पर ध्यान दिया जाता है, जिनमें समाज कुछ लोगों पर हिंसा करता है।

साथ ही, जनसंचार माध्यमों और हिंसा के बीच संबंध पर भी विचार किया जाना चाहिए। लोगों ने सहज बोध से हिंसा को कुछ समय से जनसंचार माध्यमों (गीतों, टेलिविजन, फिल्मों, वीडियो गेम, इंटरनेट) में इसके चित्रणों से जोड़ा है। यह समझना आवश्यक है कि यह संबंध लोगों के सहज बोध के निर्णय से कहीं अधिक जटिल है।

अंतर्वैयक्तिक हिंसा

अंतर्वैयक्तिक हिंसा को अकसर अंतरंग मित्र के साथ हिंसा, घरेलू हिंसा अथवा प्रताड़ना कहा जाता है। यह किसी व्यक्ति के किसी दूसरे व्यक्ति पर भय और अभित्रास के बल पर शासन और नियंत्रण कायम करने के आचरण का एक रूप है। इस दुर्व्यवहार के कई रूप हो सकते हैं : शारीरिक, संवेगात्मक या मानसिक हिंसा, यौन और आर्थिक तथा संतर्जन, लुक–छिप कर घूरना या नज़र रखना, अलगाव और अभित्रास। इसका शिकार कोई भी व्यक्ति हो सकता है, किंतु महिलाओं के इसका शिकार होने की संभावना अधिक रहती है।

सांस्थानिक हिंसा

पुलिस व कारा जैसी संस्थाओं तथा दमनकारी न्याय से होने वाली सांस्थानिक हिंसा अंतर्वैयक्तिक हिंसा का एक स्थापित स्वरूप है। यह हिंसा राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में दिखाई दे सकती है। राजनीतिक क्षेत्र में, कारा जैसी हिंसक संस्थाएं सभी राजनीतिक सत्ताओं में होती हैं। इस संदर्भ में, सांस्थानिक हिंसा के विरोध में हिंसा दंगों, क्रांतियों, विमान अपहरणों, कूटनीतिज्ञों के अपहरणों और स्थायी आतंकवाद के रूप में हो सकती है। आर्थिक क्षेत्रों में हिंसा अवपीड़न, प्रतिस्पर्धा, सट्टेबाजी, साख के नए रूपों, व्यावसायिक संघों–परिसंघों आदि के कारण होती है। इस हिंसा के प्रतिकारस्वरूप हड़ताल, उत्पाद की तोड़फोड़, विलासिता की सामग्री के बिक्री भंडारों की लूट, कार्य स्थगन, आदि हो सकते हैं। सांस्कृतिक हिंसा में किसी संस्कृति के किसी भी पहलू का उपयोग हिंसा के प्रत्यक्ष अथवा संरचनात्मक स्वरूप को वैध ठहराने या मान्यता दिलाने के लिए किया जाता है। इस हिंसा की झलक जनसंचार माध्यमों और फिल्मों में दिखाई दे सकती है।

टिप्पणी

संरचनात्मक हिंसा

संरचनात्मक हिंसा तब होती है, जब समाज के कुछ खास समूह या वर्ग सामानों, संसाधनों और अवसरों का लाभ लें और शेष लोगों को इनसे वंचित रखें, और यह असमान लाभ लोगों पर नियंत्रण रखने वाले समाज, राजनीतिक और आर्थिक तंत्रों में हो। नागरिकों के जीवन पर नियंत्रण रखने वाली प्रचलित, भेदभावपूर्ण संरचनाओं तथा संरूपों में परिवर्तन लाने के ध्येय से की जाने वाली संरचनात्मक हिंसा के लिए राजनीति और समाज दोनों में परिवर्तन की आवश्यकता होती है। इस शब्द की अवधारणा नॉर्वेजियाई समाजशास्त्री जोहान गालतुंग ने दी, जिन्होंने इसे सन् 1969 में प्रकाशित अपने आलेख 'वायॉलेंस, पीस एंड पीस रिसर्च' में प्रस्तुत किया। संस्थापित जातिवाद, महिला–पुरुष के आधार पर भेदभाव की नीति और वर्गवाद गालतुंग द्वारा प्रस्तावित संरचनात्मक हिंसा के कुछ उदाहरण हैं।

घरेलू हिंसा

घरेलू हिंसा को शारीरिक अथवा मानसिक प्रताड़ना के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। जब किसी परिवार का कोई सदस्य अपने ही परिवार के किसी दूसरे सदस्य को शारीरिक या मानसिक प्रताड़ना देता है तो यह घरेलू हिंसा की श्रेणी में आता है। इस हिंसा के चलते ऐसे परिवार की सुख–समृद्धि में संकट पैदा होता है अथवा उसमें कमी आती है। घरेलू या पारिवारिक हिंसा में पत्नी की शारीरिक एवं मानसिक प्रताड़ना और बलात्कार, बच्चों को शारीरिक दंड, भाई–बहनों के बीच लड़ाई–झगड़े, परिवार में हत्या, वृद्धों के साथ दुर्व्यवहार, आदि सर्वाधिक आम हैं। माना जाता है कि बाल्यावस्था में जिन बच्चों के साथ हिंसा होती है, उनके वयस्कावस्था में पहुंचने पर उनमें पत्नी अथवा बच्चों के साथ हिंसा करने की प्रवृत्ति उन लोगों की तुलना में अधिक होती है, जिनके साथ उनकी बाल्यावस्था में हिंसा नहीं हुई हो।

गिड्डेन (1998) का मानना है कि यह एक प्रकार का घरेलू और शारीरिक दुर्व्यवहार है, जो कोई व्यक्ति अपने ही परिवार के किसी सदस्य अथवा सदस्यों के साथ करता है। यह किसी आक्रामक व्यवहार के रूप में दिखाई दे सकता है। इसे उच्छृंखल व्यवहार के रूप में भी देखा जा सकता है, जो किसी परिवार के सदस्य एक–दूसरे के साथ करते हैं। आज घर कई लोगों के लिए एक खतरनाक स्थान बन गया है और किसी भी आयु का कोई भी पुरुष अथवा महिला कभी भी घरेलू हिंसा की शिकार हो सकती है। इस स्थिति में, इस हिंसा का अंतिम परिणाम परिवार के किसी बच्चे या बच्चों को भुगतना पड़ता है – विशेष रूप से तब जब यह पति और पत्नी के बीच हो। गिड्डेन (1998) कहते हैं कि पारिवारिक हिंसा अन्य लोगों की तुलना में महिलाओं के साथ अधिक होती है। किंतु, वह यह भी कहते हैं कि कई पत्नियां अपने पतियों और बच्चों के साथ उसी प्रकार हिंसात्मक व्यवहार करती हैं, जिस प्रकार कई पति अपनी पत्नियों और बच्चों के साथ। किंतु, पत्नियों पर प्रहार कदाचित ही परस्पर होता है, अर्थात् पत्नियां अपने पर हुए प्रहार का बदला पति से प्रायः नहीं लेतीं, या फिर अपने पति को प्रताड़ित नहीं करतीं। परिवार में जब हिंसा होती है, तो उसका प्रभाव किसी न किसी रूप में अन्य सदस्यों पर भी पड़ता है। घरेलू हिंसा के प्रकार इस प्रकार हैं : शारीरिक एवं संवेगात्मक बाल दुर्व्यवहार; पति और पत्नी का एक दूसरे पर प्रहार; यौन हिंसा; मानसिक प्रताड़ना; कामुकतापूर्ण उत्पीड़न; अवपीड़न और महिला अथवा पुरुष हिंसा। (एंथनी गिड्डेंस, *सोसियॉलॉजी*, तृतीय संस्करण, पॉलिटी प्रेस : कैंब्रिज)

शारीरिक एवं संवेगात्मक बाल दुर्व्यवहार (बच्चों के साथ शारीरिक एवं संवेगात्मक दुर्व्यवहार) : यह परिवार के किसी बच्चे पर बल प्रयोग अथवा उसके साथ किया जाने वाला दुर्व्यवहार है। इस दुर्व्यवहार के चलते असंख्य बच्चे घर छोड़ देते हैं और कुसंगति में पड़कर बुरे काम करने लगते हैं। कोई ठिकाना नहीं होने की स्थिति में वे मोटर गैराजों में अथवा पुलों के नीचे रहने लगते हैं, पर अपने घर वापस नहीं जाना चाहते। दुनिया भर में करोड़ों बच्चे अपने परिवारों से डरते हैं। ये बच्चे नशीले पदार्थों का सेवन और तस्कारी करने के कारण कुख्यात हो जाते हैं। कभी–कभी वे पटरी पर धंधा करने लगते हैं या फिर गुंडा–मवाली बन जाते हैं। वे डकैती, हत्या और जालसाजी जैसे काम भी करने लगते हैं।

पति और पत्नी का एक दूसरे पर प्रहार : पतियों का पत्नियों पर अमानुषिक शारीरिक प्रहार की घटनाएं अकसर देखने को मिल जाती हैं। किंतु, पत्नियां पतियों के साथ ऐसा व्यवहार प्रायः नहीं करतीं।

यौन हिंसा : इसका तात्पर्य यौन दुर्व्यवहार अथवा उत्पीड़न, अवांछित अथवा अनचाहे यौन संबंध, यौन अभित्रास, बलपूर्वक यौन समागम अथवा बलात्कार और देहव्यापार से है। यौन हिंसा कष्टदायक और अभिघातज हो सकती है। इसके फलस्वरूप एचआइवी और एआइडीएस जैसे रोग हो सकते हैं। यौन हिंसा से केवल शारीरिक चोट नहीं बल्कि मानसिक आघात भी पहुंचता है। कभी–कभी तो मानसिक आघात शारीरिक चोट से कहीं ज्यादा गंभीर होता है।

मानसिक प्रताड़ना : यह वस्तुतः शक्तिशाली लोगों का एक अस्त्र है, जिसका उपयोग वे कमज़ोरों को भय दिखाने के लिए करते हैं। इस प्रकार की हिंसा या प्रताड़ना शारीरिक हिंसा की तुलना में अधिक गंभीर होती है। यह प्रभावित व्यक्ति के मन में कुंठा और आक्रमण की भावना को भी जन्म देती है। यह परिवार के बाहर भी हो सकती है। इसका प्रभाव प्रभावित व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य और उसके सामाजिक तंत्र पर पड़ता है। इसके चलते व्यक्ति भविष्य में व्यक्तिगत, सामाजिक और आर्थिक विकास के अवसरों से वंचित हो सकता है।

नीचे परिवार से बाहर होने वाली हिंसा के विभिन्न रूपों का विवेचन प्रस्तुत है–

मनोवैज्ञानिक हिंसा : मनोवैज्ञानिक हिंसा की व्याख्या किसी व्यक्ति के किसी दूसरे व्यक्ति के प्रति दुर्भावनापूर्ण व्यवहार के रूप में की जा सकती है। यह कमज़ोरों पर वर्चस्व कायम करने, उन्हें अपने वश में रखने का बलवानों का एक अस्त्र है। यह हिंसा शारीरिक हिंसा से कहीं अधिक घातक होती है। किसी का भयादोहन करना, उसे सार्वजनिक रूप से कलंकित करना, किसी को किसी के कारण अपने नाम और प्रतिष्ठा खोने का डर होना, कार्यालय में किसी कर्मचारी पर मानसिक दबाव डालना, किसी व्यक्ति का किसी दूसरे व्यक्ति के परिवार की मान–प्रतिष्ठा को क्षति पहुंचाने का प्रयास करना, मानसिक पीड़ा पहुंचाना, तिरस्कार करना, नीचा दिखाना, गाली देना, उपहास करना, आदि मनोवैज्ञानिक या मानसिक हिंसा के कुछ उदाहरण हैं।

मौखिक हिंसा : हिंसा का यह एक आम रूप है, जिसे मौखिक दुर्व्यवहार भी कहा जाता है और जो विश्व की लगभग सभी संस्कृतियों में पाई जाती है। इसमें अनुचित व्यवहार अथवा अनुचित शब्दों का प्रयोग किया जाता है। इसमें आरोप लगाना, अवहेलना करना, मौखिक धमकी देना, आदेश देना, निरंतर भूलते रहना, मुंह बंद कराना,

टिप्पणी

दोष मढ़ना, गाली देना, अत्यधिक आलोचना करना, आदि आते हैं। यह शारीरिक और मानसिक हिंसाओं समेत हिंसा के अन्य रूपों के समान है। हलकी सी भी उत्तेजना होने पर अपमानजनक भाषा में अपना स्वर ऊंचा करते हुए लोग अन्य लोगों पर वर्चस्व प्राप्त करने का प्रयास करते हैं, जो उनकी हिंसक प्रवृत्ति को दर्शाता है। ऐसा वह कहीं भी करते हैं – घर में, कार्यालय में, बाजार में और अपने निजी जीवन में।

यौन हिंसा : यौन हिंसा का अर्थ किसी व्यक्ति का किसी दूसरे व्यक्ति को उसकी इच्छा के विरुद्ध अनुचित यौनकर्म के लिए प्रवृत्त करना है। इसकी व्याख्या किसी व्यक्ति के किसी दूसरे व्यक्ति के साथ कामेच्छा से बलपूर्वक किये गए किसी भी व्यवहार, कामजन्य अनुचित छींटाकशी या कामेच्छा की पूर्ति हेतु अनुचित प्रस्ताव, अथवा तस्करी, या घर और कार्यालय अथवा किसी अन्य परिवेश में उत्पीड़न के रूप में की जा सकती है। उत्पीड़न में शारीरिक कष्ट के अतिरिक्त अभित्रास, भयादोहन या अन्य प्रकार की धमकियां आदि हो सकती हैं। कार्यरत व्यक्ति को नौकरी से निकाल देना या निकाल देने की धमकी देना भी उत्पीड़न है।

यौन हिंसा अलग–अलग परिस्थितियों और परिवेशों में अलग–अलग रूपों में हो सकती है। इन रूपों में पति का पत्नी पर अथवा पत्नी का पति पर बलात्कार, किसी अजनबी या घर आए किसी मेहमान द्वारा बलात्कार, सशस्त्र संघर्ष के दौरान सुव्यवस्थित ढंग से बलात्कार, अनुचित व अवांछित काम प्रस्ताव या सहायता के बदले यौन उत्पीड़न, मानसिक अथवा शारीरिक रूप से अशक्त और अक्षम लोगों का यौन उत्पीड़न, बच्चों का यौन उत्पीड़न, बच्चों के विवाह समेत जबरन विवाह या सहवास, बलपूर्वक गर्भपात, देहव्यापार के लिए महिलाओं बौर बच्चों की तस्करी, यौन शोषण, आदि शामिल हैं।

गिरोह हिंसा : गिरोह का तात्पर्य कुछ लोगों के संगठित समूह से है जो धन के लिए हिंसा का प्रयोग करते हैं। इसीलिए इसे गिरोह हिंसा कहा गया है। गैंगों के नाम, प्रतीक, रंग, संकेत चिह्न, खास ब्रांड के वस्त्र और टैटू आदि होते हैं। यह हिंसा नगर संस्कृति की उपज है, जिसमें परस्पर विरोधी गिरोह अपने–अपने वर्चस्व के लिए लड़ते हैं। इन गिरोहों में गुमराह युवा होते हैं, जो अपने गिरोह के प्रति निष्ठावान होते हैं।

बाल दुर्व्यवहार या बाल हिंसा : बाल दुर्व्यवहार केवल किसी बच्चे की शारीरिक हिंसा नहीं है। यह किसी वयस्क का किसी बच्चे के साथ किया जाने वाला कोई भी हिंसक व्यवहार है। इसमें उपेक्षा भी शामिल है। यदि किसी बच्चे के साथ परिवार में दुर्व्यवहार हो और दुर्व्यवहार करने वाला उसका पिता या मां या फिर उसकी देखभाल करने वाला हो, तो यह घरेलू हिंसा का एक रूप है। किंतु कभी–कभी नर्सरी के कर्मचारी, शिक्षक, खेल प्रशिक्षक, आदि भी बच्चों के साथ दुर्व्यवहार करते हुए पाए जाते हैं। वे लोग भी उन बच्चों के साथ दुर्व्यवहार करते पाए जाते हैं, जो उन पर निर्भर होते हैं। बाल मजदूरी, संवेगात्मक अथवा मानसिक दुर्व्यवहार, देखभाल और पालन–पोषण में उपेक्षा, संवेगात्मक अथवा मानसिक उपेक्षा और यौन दुर्व्यवहार इस हिंसा के मुख्य रूप हैं।

महिला हिंसा : इसकी जड़ें महिला–पुरुष असमानता में निहित हैं। इस प्रकार की हिंसा को अवसरों और दायित्वों तथा संसाधनों के उपभोग में भेदभाव के रूप में देखा जा सकता है। इसमें महिलाओं और बालिकाओं के साथ उनके जीवनपर्यंत किये

टिप्पणी

जाने वाले शारीरिक, मानसिक, यौनजन्य दुर्व्यवहार और इन दुर्व्यवहारों की धमकी, उत्पीड़न और सार्वजनिक व निजी जीवन में स्वतंत्रता की वंचना शामिल हैं। इसकी व्याख्या महिलाओं को दी जाने वाली उन सभी यातनाओं या यातनाओं की धमकी के रूप में की जाती है, जिनसे उन्हें शारीरिक, मानसिक अथवा यौनजन्य आघात पहुंचे।

राजनीतिक हिंसा : यह मूलतः राजनीतिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए की जाने वाली हिंसा है। बाह्य रूप में इसमें किसी राज्य की किसी दूसरे राज्य के प्रति की जाने वाली हिंसा शामिल है। आंतरिक रूप में इसका प्रयोग उन संगठनों या लोगों के साथ किया जाता है, जिनका शासन से कोई संबंध न हो। इसकी व्याख्या राजनीति से प्रेरित हिंसा के रूप में भी की जा सकती है, जिसका प्रयोग वे संगठन अथवा लोग राज्य के विरुद्ध करते हैं, जिनका संबंध शासन से न हो। इसमें राजनीतिक हित साधन के लिए की जाने वाली पत्थरबाजी, क्रांति या विद्रोह अथवा आंदोलन, गृहयुद्ध, आदि आते हैं।

सांस्कृतिक हिंसा : सांस्कृतिक हिंसा समाज के प्रचलित मानदंडों के अस्तित्व का प्रतीक है, जो प्रत्यक्ष और संरचनात्मक हिंसा को 'सही' अथवा कम से कम स्वीकार्य ठहराते हैं। संस्कृति विशेष की प्रमुख मान्यताएं उसमें इतने गहरे तक अंतःस्थापित हो सकती हैं कि वे सर्वोपरि और अपरिहार्य के रूप में कार्य करती हैं और पीढ़ी–दर–पीढ़ी प्रभावी रहती हैं। इस हिंसा की व्याख्या किसी संस्कृति के किसी भी ऐसे पक्ष के रूप में की जा सकती है, जिसका उपयोग प्रत्यक्ष अथवा संरचनात्मक हिंसा को मान्य ठहराने के लिए किया जा सकता है।

सांस्कृतिक हिंसा अंतर्वैयक्तिक संबंधों, पारिवारिक जीवन, शिशुपालन, धार्मिक उत्सवों–समारोहों, युद्ध और खेल समेत अनेकानेक गतिविधियों में पाई जा सकती है।

धार्मिक हिंसा : लोग ईश्वर और धर्म के नाम पर हिंसा कर सकते हैं और करते हैं। किंतु, यह कतई ज़रूरी नहीं कि किसी हिंसा के पीछे आत्यंतिक रूप से धर्म का हाथ हो। हिंसा के अन्य सभी रूपों की तरह धार्मिक हिंसा एक सांस्कृतिक प्रक्रिया है, जो संदर्भ–आश्रित और अति जटिल होती है। धार्मिक हिंसा धार्मिक नियमों–संहिताओं, साहित्यों अथवा किसी लक्षित विषय या किसी आक्रमणकारी के सिद्धांतों से प्रेरित हिंसा है। इसमें धार्मिक संस्थाओं और लोगों की धर्म विरुद्ध गतिविधियों या धर्म के विरुद्ध होने वाली घटनाओं के विरुद्ध हिंसा आती है। इसमें धार्मिक समूहों के विरुद्ध की जाने वाली गतिविधियां भी आती हैं। प्रकारांतर से इस हिंसा के कई और रूप हैं, जैसे धार्मिक प्रयोजन से कठोर उपवास, आत्मदमन, आत्मघात, आत्म अंगच्छेदन, आदि। विपरीत स्थिति में, राजनेतागण अथवा सत्तासीन लोग अपने हित और स्वार्थ के लिए अकसर धर्म का उपयोग सर्वोत्तम साधन के रूप में करते हैं।

- **संकट**

संकट को दैनिक जीवन की स्थितियों के एक अभिन्न अंग के रूप में देखा जा सकता है। संकट हमारे जीवन पर अलग–अलग ढंग से प्रभाव डाल सकता है। संकट के किसी अनुभव के परिणामस्वरूप, किसी व्यक्ति के स्वास्थ्य की स्थिति उस संकट के पहले की स्थिति से खराब हो सकती है, या फिर उस संकट और उससे जुड़े संवेगों को दबाते हुए वह अपनी पहले की स्थिति को बरकरार रख सकता है। दूसरी तरफ, वह पहले की अपेक्षा बेहतर ढंग से कार्य कर सकता है, क्योंकि संकट की चुनौती उसमें नई शक्ति, कौशल और निवारण तंत्र का संचार कर सकती है।

परिभाषा

टेलर (1982) के अनुसार संकट किसी घटना और किसी व्यक्ति अथवा परिवार के उस घटना के अर्थ के प्रति उस व्यक्ति अथवा उस परिवार के बोध के साथ, उस व्यक्ति अथवा उस परिवार के निवारण की की क्रियाविधियों, जो स्थिति की आवश्यकताओं को पूरा करने में अपर्याप्त होती हैं, के एक दूसरे पर प्रभाव के फलस्वरूप उत्पन्न असंतुलन की एक अवस्था है। (टेलर, *टीजेपीआरसी : इंटरनेशनल जर्नल ऑफ नर्सिंग एंड पेशेंट सेटी एंड केयर* (टीजेपीआरसी : आईजेएनपीएससी), खंड 1, अंक 1, दिसंबर 2016)

संकट प्रवणता

हेंड्रिक्स का मानना है कि कुछ लोग अन्य लोगों की तुलना में अधिक संकट प्रवण होते हैं। संकट के प्रति अति संवेदनशील लोगों में पाए जाने वाले अभिलक्षण इस प्रकार हैं–

1. अनसुलझे संकट का लक्षण
2. स्वत्व दुरुपयोग का लक्षण
3. स्वाभिमान की कमी, अनुपयुक्तता या अयोग्यता
4. दैनिक स्थितियों से निपटने में कठिनाई
5. संसाधनों और समर्थन प्रणालियों का आवश्यकता से कम उपयोग
6. एकाकीपन और स्वयं पर ध्यान की कमी

यहां यह ध्यान रखना आवश्यक है कि ऊपर वर्णित अभिलक्षणों पर विचार करते समय व्यक्ति के व्यक्तित्व शीलगुणों पर भी विचार किया जाए। संकट की व्याख्या किसी व्यक्ति के अनुरूप की जाती है। किसी का संकट किसी दूसरे व्यक्ति के लिए महज एक घटना हो सकता है। यह घटक एक महत्वपूर्ण घटक है, जिसका मूल्यांकन संकट प्रवण अभिलक्षणों और व्यक्तित्व के शीलगुणों के साथ किया जाना चाहिए।

परिपक्वतामूलक या परिवर्तनपरक संकट (Maturational Crisis)

इसे विकासात्मक संकट भी कहते हैं। इसकी व्याख्या संवृद्धि और विकास की उन दशा प्रक्रियाओं से की जा सकती है जिनका विकास समय की किसी अवधि में हुआ हो, इन प्रक्रियाओं का अंतिम लक्ष्य परिपक्वता होती है।

आनुक्रमिक अवस्था में प्रवेश करते समय लोग जिन संक्रमण बिंदुओं पर पहुंचते हैं, वे अकसर असंतुलन पैदा करते हैं। लोगों को संज्ञानात्मक एवं व्यवहारात्मक परिवर्तन करने के साथ–साथ उन शारीरिक परिवर्तनों का समेकन करना चाहिए जिनके चलते विकास होता है।

इन कार्यों को पूरा करने में लोगों को जिस सीमा तक सफलता की अनुभूति होती है, वह पूर्ववर्ती सफलताओं, समर्थन तंत्रों की उपलब्धता, आदर्श या अनुकरणीय व्यक्ति के प्रभाव और अन्य लोगों की नई भूमिका की स्वीकार्यता और ग्राह्यता पर निर्भर करती है। संक्रमण के किशोरावस्था, विवाह, मातृत्व–पितृत्व, मध्य–वय और सेवानिवृत्ति के कालखंडों में संकट की संभावना अधिक होती है।

स्थितिपरक संकट

स्थितिपरक वह संकट है, जो किसी ऐसी अनपेक्षित तनावपूर्ण घटना से प्रेरित होता है, जो किसी व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक और सामजिक समेकता के संतुलन के समक्ष संकट खड़ा करते हुए असंतुलन को जन्म देता है।

टिप्पणी

समयपूर्व जन्म, स्थिति और भूमिका में परिवर्तन, किसी प्रियजन की मृत्यु, शाारीरिक अथवा मानसिक व्याधि, तलाक, आवास परिवर्तन, स्कूल में पढ़ाई में कमज़ोर प्रदर्शन, आदि ऐसी घटनाएं हैं जो स्थितिपरक संकट को प्रेरित करती हैं।

सामाजिक संकट

यह सांयोगिक, असामान्य और अनपेक्षित होता है और इसके फलस्वरूप नानाविध क्षतियां तथा पर्यावरण में उल्लेखनीय परिवर्तन होते हैं। सामाजिक संकट में बाढ़, भूकंप, हिंसा, जनसंहार, विषाक्त कूड़ों के कारण बड़े क्षेत्रों का संदूषण, आदि आते हैं। यह संकट परिपक्वता (परिवर्तनपरक) और स्थितिपरक संकट से भिन्न होता है, क्योंकि यह सभी लोगों के जीवन में नहीं होता।

सामाजिक संकट की गंभीरता के कारण संभव है कि उसके निवारण की कार्यनीतियां सफल न हों। सामाजिक संकट से ग्रस्त लोगों का आम तौर पर कोई पूर्ववर्ती अनुभव नहीं होता, जिससे कुछ सीख ग्रहण किया जा सके। सहायता तंत्र या प्रणालियां हो सकता है कि उपलब्ध न हों क्योंकि वे भी उन्हीं स्थितियों में उलझे हो सकती हैं। मनोरोग चिकित्साकर्मी बुलाये जाते हैं और उनसे भारी संख्या में लोगों की और कभी–कभी पूरे समुदाय की चिकित्सा करने को कहा जाता है।

संकट के चरण

कापलान (1964) के अनुसार संकट के चार चरण हैं, जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है (कापलान, *क्वाडर्न्स द साइकोलॉजिया*, 1990, 10, यूनिवर्सिटी ऑफ नॉर्थ कैरोलिना, डिपार्टमेंट ऑफ साइकॉलॉजी, शापे 1 हिल, ईयूए):

पहला चरण : संभावित संकट एक प्रेरक के रूप में कार्य करता है, जो गुरुतर दुश्चिंता को जन्म देता है। इसके उपचार हेतु सामान्य कार्यनीतियों का सहारा लिया जाता है, और उनके असफल होने की स्थिति में संकट का दूसरा चरण शुरू होता है।

दूसरा चरण : इस चरण में प्रभावित व्यक्ति को अरक्षितता की अनुभूति होती है। वह स्थिति से असंगत ढंग से निपटने का प्रयास कर सकता है। यदि इस स्थिति में भी दुश्चिंता बनी रहे तो तीसरा चरण शुरू होता है।

तीसरा चरण : पहले दो चरणों की तुलना में यह चरण अधिक गंभीर होता है, जिसमें रोगी को अत्यधिक सहज सहायता की ज़रूरत पड़ती है। समस्या के समाधान के नए उपायों से भी कोई समाधान निकल सकता है। यह समाधान यदि कारगर हो तो व्यक्ति संकट के पूर्व की स्थिति में जा सकता है। यदि समाधान असफल रह जाए, तो स्थिति गंभीरतर हो जाती है।

चौथा चरण : चौथा और अंतिम चरण अत्यंत गंभीर होता है, बल्कि यह त्राहिमाम की स्थिति होती है। इसमें अति गंभीर संज्ञानात्मक, संवेगात्मक और मानसिक परिवर्तन होते हैं। इसका उपचार निहायत ज़रूरी होता है।

संकट के संकेत और लक्षण

संकट की किसी स्थिति में व्यक्ति को असार दुश्चिंता की अनुभूति होती है। यह दुश्चिंता अवसाद, क्रोध अथवा अपराध बोध के रूप में प्रकट हो सकती है। रोगी उपचार के विभिन्न स्वस्थ अथवा अस्वस्थ तरीकों का उपयोग करते हुए इस दुश्चिंता से मुक्ति का प्रयास कर सकता है।

टिप्पणी

संभव है कि रोगी में अपनी दैनिक आवश्यकताओं को पूरा करने की क्षमता भी न रह जाए। वहीं, वह अपने दायित्वों की उपेक्षा कर सकता है।

रोगी चिड़चिड़ा हो सकता है और किसी भी प्रतिकूल घटना के लिए दूसरों को दोष दे सकता है।

संकट का समाधान

संकट का स्वस्थ समाधान नीचे प्रस्तुत तीन कारकों पर निर्भर करता है :

- प्रेरक घटना या कार्य का यथार्थ मूल्यांकन अर्थात् कारगर समाधान के लिए उस घटना और दुश्चिंता की अनुभूति के बीच संबंध की परख आवश्यक है।
- सहायता तंत्रों या प्रणालियों की उपलब्धता।

उपचार के साधनों की उपलब्धता : कोई व्यक्ति उपचार के नानारूप सफल नीतियों का विकास करता है, जो तनावपूर्ण स्थितियों की पहचान करने के साथ–साथ उन्हें दूर करने में उनकी सहायता करता है।

नीचे समाधान के ऐसे तीन रूप प्रस्तुत हैं, जिनकी सहायता से कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के संकट का उपचार कर सकता है :

छद्म या आभासी समाधान : इसमें, प्रभावित व्यक्ति घटना और उससे जुड़े तीव्र संवेगों को चेतना द्वारा दबाने या उससे बाहर निकालने का प्रयास करता है, पर इससे व्यक्ति के कार्यकलाप के स्तर में कोई परिवर्तन नहीं आता। किंतु, भविष्य में कोई संकट आने की स्थिति में ये दमित भावनाएं पुनः उभर सकती हैं और इस नए संकट से उत्पन्न भावनाओं पर प्रभाव डाल सकती हैं। इस स्थिति में, उस संकट विशेष का उपचार करना कठिन हो सकता है, क्योंकि पूर्ववर्ती संकट से जुड़ी भावनाएं या अनुभूतियां उस समय न तो प्रकट होती हैं और न ही उनका कोई समाधान होता है।

असफल समाधान : समाधान की इस प्रक्रिया में प्रभावित व्यक्ति निम्न स्तर के कार्यकलाप से उत्पन्न संकट के किसी भी चरण में रोगविज्ञानी अनुकूलन (Pathological Adaptation) का सहारा लेता है। क्षति को स्वीकार और जीवन को पुनः ठीक करने की बजाय वह क्षति पर चिंतन करता रहता है। क्लेश की एक लंबी प्रतिक्रिया इसका एक उदाहरण है, जो अवसाद के कारण उत्पन्न होता है।

सफल समाधान : इसमें प्रभावित व्यक्ति को संकट के तीसरे चरण में संकट की स्थिति से मुक्ति मिल जाती है, जहां उपचार के विभिन्न उपायों का उपयोग किया जाता है। रोगी में बेहतर कौशल और समस्या समाधान की क्षमता का विकास होता है, जिनका उपयोग वह भविष्य में विभिन्न स्थितियों में कर सकता है।

संकट–हस्तक्षेप (संकटमोचन का प्रयास)

संकट–हस्तक्षेप किसी खास संकट की कटु अनुभूतियों को समझने और उनका निवारण करने में किसी व्यक्ति अथवा परिवार की सहायता करने की एक तकनीक है। संकट–हस्तक्षेप की तकनीक के उपयोग में परिचारिकाओं (नर्स) की भूमिका अहम होती है। परिचारिकाएं दीर्घकालिक रोगियों, नए माता–पिताओं और शोकसंतप्त लोगों जैसे अति संकटग्रस्त समूहों के उपचार में संकट निवारण तकनीकों का उपयोग कर सकती हैं।

टिप्पणी

संकट–हस्तक्षेप के उद्देश्य

स्थिति के सही संज्ञानात्मक बोध में सुधार

संकट से संबद्ध तीव्र और अति गंभीर अनुभूतियों के निवारण में लोगों की सहायता

हस्तक्षेप 1

एक सही समझ प्रदान करने के उपाय

- **स्थिति का मूल्यांकन**

  यह समस्या और उससे प्रभावित लोगों की पहचान के उद्देश्य से प्रत्यक्ष रूप से प्रश्न पूछने पर संभव हो सकता है।

  लोगों की प्रभावित अनुभूतियों की गंभीरता को समझने के लिए उपलब्ध सहायता तंत्रों की पहचान करना ज़रूरी होता है।

  मूल्यांकन प्रभावित व्यक्ति की क्षमताओं और सीमा की परख करने के लिए भी किया जाना चाहिए।

  घटना की व्याख्या

  प्रेरक घटना के संभावित खंडन के कारण अथवा उसके बारे में बात करने के प्रति अनिच्छा के चलते रोगी कभी–कभी उसकी पहचान नहीं कर पाता।

  संकट की प्रेरक घटना की पहचान करने हेतु चिकित्सक को हाल के दिनों में हुई घटनाओं के विस्तृत विवरण की समीक्षा करनी चाहिए। इस समीक्षा से रोगी को प्रेरक घटना से अवगत कराने में भी सहायता मिलेगी।

  एक कार्य योजना तैयार करें

  प्रभावित व्यक्ति और उससे घनिष्ठता से जुड़े लोगों को कार्य योजना तैयार करनी चाहिए। चिकित्सक को इस बात की जानकारी अनिवार्य रूप से होनी चाहिए कि संभवतः प्रभावित व्यक्ति गहरी दुश्चिंता के कारण जटिल जानकारी को समझ न सके। चिकित्सक को सरल और स्पष्ट निर्देश देना चाहिए और एक ही समय में बहुत अधिक जानकारी नहीं दी जानी चाहिए। संभव हो तो निर्देश लिखित रूप में दें, क्योंकि हो सकता है कि प्रभावित व्यक्ति मौखिक जानकारी को स्मरण न रख सके।

हस्तक्षेप 2

तीव्र अनुभूतियों का निवारण करने में रोगी की सहायता करने के उपाय

- अनुभूतियों को समझने में रोगी की सहायता करना
  - रोगी को अपनी अनुभूतियों को समझने, पहचानने के लिए सहायता की आवश्यकता होती है, जो उन अनुभूतियों के उपचार का पहला कदम है।
  - चिकित्सक को संप्रेषण की सही तकनीक का उपयोग करना चाहिए ताकि रोगी अपनी अनुभूतियों को व्यक्त करने में सहज महसूस करे।
  - चिकित्सक को रोगी के मौखिक और भाव–भंगिमाजन्य व्यवहार को सूक्ष्मता से समझना चाहिए ताकि वह उसकी अनुभूतियों का सूक्ष्म मूल्यांकन कर सकें।
  - अनुभूतियों को गहराई से समझने में रोगी की सहायता करना
  - संकट से संबद्ध अनुभूतियों के निवारण के लिए चिकित्सकीय प्रक्रिया के माध्यम से रोगी को पर्याप्त सहायता और दिशा निर्देश देना चाहिए, किंतु कोई गलत आश्वासन कतई नहीं दिया जाना चाहिए।

टिप्पणी

– उसे दूसरों को दोष देने के लिए किसी भी तरह से प्रेरित नहीं किया जाना चाहिए, क्योंकि इससे उसे किसी भी दायित्व से बचने का अवसर मिल जाएगा।
– इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि रोगी चिकित्सक पर बहुत अधिक आश्रित न हो।

चिकित्सक के मार्गदर्शन में जब रोगी और सहायता समूह कार्य योजना तैयार कर लें, तब रोगी और संबद्ध अन्य लोगों के बीच इस पर चर्चा होनी चाहिए, ताकि वे योजना के क्रियान्वयन की कार्यविधियों को अच्छी तरह से समझ सकें।

व्यावसायिक संकट

व्यावसायिक संकट या तनाव की व्याख्या आमतौर पर अहितकर शारीरिक और संवेगात्मक अनुक्रियाओं के रूप में की जाती है, जो तब उत्पन्न होती हैं, जब कार्य का बोझ किसी कर्मचारी की क्षमताओं, अपेक्षाओं अथवा संसाधनों की सीमा से अधिक हो जाता है। इन दिनों वैश्वीकरण और वैश्विक वित्तीय संकट के चलते व्यावसायिक तनाव में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है, जिसका प्रभाव लगभग सभी देशों, सभी व्यवसायों और सभी कोटियों के कर्मचारियों तथा परिवारों व समाजों पर पड़ रहा है। फलतः यह सभी कार्यालयों, कंपनियों और उद्योगों में एक अनिवार्य समस्या का रूप ले चुका है। वर्ष 1989 में उत्तरोत्तर बढ़ते व्यावसायिक तनाव की अवधारणा मुखर होकर सामने आई, जब शोध की विभिन्न परियोजनाओं का संचालन शुरू किया गया। इन शोधों से पता चला कि कार्य से संबद्ध शारीरिक आघात किसी भी अन्य आघात से अधिक रहा है। इस प्रकार व्यावसायिक तनाव की व्याख्या हानिकारक शारीरिक और संवेगात्मक अनुक्रियाओं के रूप में की जा सकती है, जो तब पनपती हैं, जब कार्य की अपेक्षाएं कर्मचारियों–कामगारों की क्षमताओं, संसाधनों और आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं होतीं। इसका प्रभाव कर्मचारियों–कामगारों के स्वास्थ्य पर पड़ता है। वे तनावग्रस्त, चिड़चिड़े, थके, अवसादग्रस्त और व्यग्र रहने लगते हैं। उनमें एकाग्रता और किसी विषय पर तर्कसम्मत ढंग से सोचने की क्षमता में कमी आ जाती है। वे ठीक से सो नहीं पाते और कभी–कभी हृदय रोग, उच्च रक्तचाप, सिरदर्द, आदि से ग्रस्त हो जाते हैं।

विश्व बैंक के अनुसार व्यावसायिक तनाव लोगों की वह अनुक्रिया है, जो कार्य की उन अपेक्षाओं के कारण उत्पन्न होती है, जो उनके ज्ञान और क्षमताओं के अनुरूप नहीं होतीं और जो स्थिति का सामना करने की उनकी क्षमता के समक्ष चुनौती खड़ी करती हैं। ऐसा कार्य के त्रुटिपूर्ण संयोजन, त्रुटिपूर्ण प्रबंधन, कार्य की असंतोषजनक स्थितियों और सहकर्मियों तथा प्रबंधकों से सहायता की कमी के कारण हो सकता है। व्यावसायकि तनाव को सामान्यतया एक वैश्विक परिघटना के रूप में देखा जाता है। इसके कारण विकसित और विकासशील दोनों देशों में गंभीर स्वास्थ्यपरक और आर्थिक परिणाम होते हैं। आम तौर पर एक क्रमिक प्रक्रिया के रूप में परिभाषित व्यावसायिक तनाव कार्य के एक विषाक्त परिवेश के कारण उत्पन्न होता है, जिसमें कार्य पर कर्मचारियों के वांछित नियंत्रण की कमी, कार्य की उच्च अपेक्षाएं, जानकारी का अभाव, अत्यधिक दबाव, निर्णय निर्धारण की कमी, आदि होते हैं।

कभी–कभी प्रबंधकों, पदाधिकारियों और कर्मचारियों को अत्यधिक तनावपूर्ण स्थितियों में कार्य करना पड़ता है, जिसके फलस्वरूप विनिर्माण जैसे क्षेत्रों में उन्हें अत्यधिक तनाव से ग्रस्त देखा गया है। कार्य के परिवेशों में अनेकानेक चुनौतियां होती हैं, जैसे प्रतिस्पर्धा, तकनीकी में नित नए विकास, स्थान का अभाव, समय की कमी, अपेक्षाकृत अधिक अनियंत्रित कारक, कंपनियों के हितधारकों की परस्पर विरोधी

टिप्पणी

अथवा अलग–अलग अपेक्षाएं, प्रबंधन में अधिक हस्तक्षेप और भागीदारी, अनिश्चितता में वृद्धि, आदि।

व्यावसायिक संकट के मनोवैज्ञानिक सिद्धांत

व्यावसायिक संकट की व्याख्या करने के कुछ मनोवैज्ञानिक सिद्धांत हैं। इन सिद्धांतों में, कार्य–विशिष्ट प्रतिमान (Job Characteristics Model), व्यक्ति–परिवेश उपयुक्त प्रतिमान (Person-Environment Fit Model), प्रयास–प्रतिफल असंतुलन प्रतिमान (Effort-Reward Imbalance Model), अपेक्षा–नियंत्रण–समर्थन प्रतिमान (Demand-Control-Support Model) और कार्य–अपेक्षा संसाधन प्रतिमान (Job-Demands Resources Model) शामिल हैं।

कार्य–विशिष्ट प्रतिमान

यह प्रतिमान कौशलों, कार्य की विशिष्टता, कार्य के महत्व, स्वायत्तता और प्रतिपुष्टि, जैसे कारकों पर केंद्रित होता है। कार्य के इन कारकों को मानसिक अवस्था माना जाता है, जैसे सार्थकता की भावना और ज्ञान अर्जन। इस सिद्धांत का मानना है कि कार्य की सकारात्मक अथवा नकारात्मक विशेषताएं विभिन्न संज्ञानात्मक और व्यवहारात्मक परिणामों को जन्म देती हैं, जैसे कर्मचारी की अभिप्रेरणा की सीमा, संतोष और अनुपस्थित रहने की प्रवृत्ति।

व्यक्ति–परिवेश उपयुक्त प्रतिमान

व्यावसायिक तनाव के शोधकर्ताओं के लिए यह प्रतिमान अत्यंत उपयोगी है और बीते वर्षों में इस क्षेत्र में कुछ शोध किये भी गए हैं। यह किसी व्यक्ति और उसके कार्य के परिवेश के बीच संबंध का निरूपण करता है। इस संबंध की घनिष्ठता का प्रभाव प्रभावित व्यक्ति के स्वास्थ्य पर पड़ता है। कार्य की स्थितियां अनुकूल हों, इसके लिए ज़रूरी है कि कर्मचारियों की अभिवृत्तियां, कौशल, क्षमताएं और संसाधन कार्य की अपेक्षाओं के अनुरूप हों। व्यक्ति और उसके कार्य के परिवेश में अंतर जितना अधिक होगा तनाव भी उतना ही गहरा होगा।

प्रयास–प्रतिफल असंतुलन प्रतिमान

यह प्रतिमान कर्मचारी के प्रयासों और उसे प्राप्त कार्य के प्रतिफलों के बीच संबंध पर केंद्रित होता है। इसके अनुसार प्रयास अधिक किंतु प्रतिफल कम वाले कार्यों के चलते संकट पैदा होता है, जो मानसिक लक्षणों और शारीरिक समस्याओं के रूप में सामने आता है। कार्य के प्रतिफल वेतन जैसे मूर्त और सराहना व समुचित व्यवहार जैसे अमूर्त हो सकते हैं। इसका एक पक्ष यह है कि कार्य के प्रति अत्यधिक प्रतिबद्धता के कारण असंतुलन पैदा हो सकता है।

कार्य–अपेक्षा संसाधन प्रतिमान

यह प्रतिमान अपेक्षा–नियंत्रण–समर्थन प्रतिमान और संसाधन संरक्षण सिद्धांत का मिलाजुला रूप है। अपेक्षा का तात्पर्य कार्य के बोझ की गइहराई से है। संसाधन का अर्थ कार्य के वांछित निष्पादन के लिए उपलब्ध भौतिक, मानसिक, सामाजिक और सांस्थानिक संसाधन हैं।

अपेक्षा–नियंत्रण–समर्थन प्रतिमान

इस प्रतिमान की अवधारणा सन् 1970 में रॉबर्ट कारासेक ने दी थी। अन्य प्रतिमानों की तुलना में इसकी सीमा सीमित है। कारासेक के अनुसार, कार्य की स्थिति तब अत्यधिक

टिप्पणी

तनावपूर्ण हो जाती है, जब कर्मचारियों को कार्य की भारी अपक्षाओं का सामना करना पड़ता है, और कार्य पर उनका नियंत्रण उनके अनुरूप नहीं होता। कार्य की स्थिति पर नियंत्रण को निरूपित करने के लिए कारासेक ने आगे चलकर 'कार्य निर्णय स्वातंत्र्य' पद का उपयोग किया।

व्यावसायिक तनाव के शोध के लिए यह एक सर्वाधिक प्रभावशाली और महत्वपूर्ण सिद्धांत है। यह इस विचार की पुष्टि करता है कि कार्य के प्रति स्वायत्तता और नियंत्रण की कमी तथा मानसिक कार्यों के भारी बोझ की स्थिति कर्मचारियों के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होती है।

मुख्य लक्षण

जैसा कि ऊपर कहा गया है, व्यावसायिक तनाव अनुक्रियाओं का एक संरूप है, जो तब उत्पन्न होती हैं, जब कर्मचारियों–कामगारों को प्रदत्त कार्यों की अपेक्षाएं उनके ज्ञान, क्षमताओं अथवा कौशलों के अनुरूप नहीं होतीं। वहीं, ये अनुक्रियाएं तनाव का सामना करने की कर्मचारियों की क्षमता के समक्ष चुनौती खड़ी करती हैं। ऐसे में प्रभावित व्यक्ति अनेकानेक शारीरिक समस्याओं से ग्रस्त हो सकता है, जिनमें चिड़चिड़ापन, सिरदर्द, केशापात, कामेच्छा की कमी, कोई गंभीर शारीरिक बीमारी, हृदय गति में अनियमितता और रक्तचाप में वृद्धि या कमी, सीने में पीड़ा, श्वासोच्छ्वास में अनियमितता, मांसपेशियों में पीड़ा, नींद में अनियमितता, गले और मुंह में सूखापन, हथेलियों में पसीना, बदहजमी, पेट में घाव, आदि मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त उसके व्यवहार में भी अंतर आ जाता है। वह लोगों से कटा–कटा और कार्यालय से अनुपस्थित रहने और काम में गलतियां करने लगता है। वहीं, उसमें कई मानसिक लक्षण भी उत्पन्न हो जाते हैं, जैसे भय, चिंता, अवसाद, असंतोष, नकारात्मकता, एकाकीपन की भावना, आदि।

व्यावसायिक संकट के स्रोत

कार्यालय का प्रतिकूल परिवेश : व्यावसायिक संकट का यह एक मुख्य स्रोत है, जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव कर्मचारियों के शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य और कार्य निष्पादन पर पड़ता है। कार्यालय की अपनी एक विशेष संस्कृति होती है जिसका सभी कर्मचारियों के लिए अनुकूल होना आवश्यक होता है, अन्यथा वैचारिक स्तर पर वे एक दूसरे से जुड़े नहीं रह पाते, जिससे परिवेश विषाक्त हो सकता है।

कार्य का बोझ : यह संकट का एक मुख्य स्रोत है। कार्य यदि क्षमता से अधिक हो और लंबे समय तक करना पड़े तो इसका प्रभाव कर्मचारियों के शारीरिक स्वास्थ्य पर पड़ता है। वहीं, उन्हें इस बात का डर रहता है कि निर्धारित लक्ष्य को पूरा नहीं करने की स्थिति में उनकी नौकरी छूट सकती है, और इस डर का प्रभाव उनके मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ता है और वे तनावग्रस्त हो जाते हैं।

सहकर्मियों की उपेक्षा : यदि किसी कर्मचारी के साथ अच्छा बर्ताव नहीं हो अथवा अन्य कर्मचारी उससे दूरी बरतते हों, तो कंपनी या संस्था के प्रति उसका लगाव कम हो जाता है। इस प्रतिकूल परिवेश में उसमें असुरक्षा की भावना पनपती है, जिससे वह तनाव का शिकार हो जाता है। ऐसे में वह अपने दायित्व का निर्वहन पूरी तरह से नहीं कर पाता, जिसका प्रभाव संस्था या कंपनी पर पड़ता है।

कार्य की पाली : आम तौर पर रात की पाली में काम करने वाले कर्मचारियों को संकट का खतरा अपेक्षाकृत अधिक रहता है, क्योंकि वे सामाजिक जीवन से कट

जाते हैं। इसके अतिरिक्त, जिन कर्मचारियों को बिना मध्यावकाश के सामान्य से अधिक समय तक कार्य करना पड़ता है, वे भी संकट का शिकार होते हैं।

टिप्पणी

कारण

व्यावसायिक तनाव के उत्पन्न होने में कार्य की स्थितियों की भूमिका अहम् होती है। कर्मचारियों के स्वास्थ्य और सुरक्षा पर कार्य की इन तनावपूर्ण स्थितियों का, जिन्हें संकट–कारक कहा जा सकता है, प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। व्यावसायिक तनाव के कुछ मुख्य कारक इस प्रकार हैं–

- संगठनों या कंपनियों की सख्त नीतियां
- व्यावसायिक और निजी संवृद्धि की सीमित संभावनाएं
- किसी विभाग में या फिर व्यवसाय समूहों के बीच संघर्ष
- कार्यबल का त्रुटिपूर्ण प्रबंधन
- मानव संसाधन विभाग से सहायता की कमी
- व्यक्तिगत, स्थितिपरक अथवा व्यावसायिक समस्याएं
- झगड़ा, अनादर और अपमान और भेदभाव
- समय का त्रुटिपूर्ण प्रबंधन
- मार्गदर्शन अथवा दिशानिर्देशन का अभाव
- कार्य की अधिकता
- कर्मचारियों के प्रशिक्षण और क्षमताओं से अधिक कार्य–निष्पादन की अपेक्षा
- नौकरी जाने का निरंतर डर
- मजूदरी, वेतन और हितलाभों में कटौती

कारण जो भी हों, व्यावसायिक तनाव का कर्मचारियों के कल्याण और उत्पादकता पर गहरा प्रभाव पड़ता है। यही नहीं, इस तनाव का कर्मचारियों के काम के प्रति समर्पण पर भी प्रभाव पड़ता है।

उपचार/हस्तक्षेप

कर्मचारियों के विभागों में परिवर्तन और संकट का उपचार कार्यालय में संकट के निवारण का एक सर्वाधिक उपयोगी उपागम है। संगठन या कंपनी तथा कर्मचारीगण कार्यालय और निजी स्तरों पर कार्यनीतियों का उपयोग कर सकते हैं। आम तौर पर, कार्यालय स्तर की कार्यनीतियों में कार्य प्रक्रिया सुधार और कर्मचारीय सहायता कार्यक्रम आते हैं। प्रयोगाश्रित शोधों के एक विश्लेषण से पता चला है कि विश्रांति और कार्यालयी हस्तक्षेपों की तुलना में संज्ञानात्मक–व्यवहारात्मक हस्तक्षेप कर्मचारियों के मानसिक तनाव के लक्षणों को दूर करने में अधिक कारगर होते हैं।

विशेषज्ञों ने व्यावसायिक संकट को कम करने के कई व्यावहारिक तरीकों की अनुशंसा की है, जो इस प्रकार हैं :

- सुनिश्चित करना कि कार्य का बोझ कर्मचारियों की क्षमताओं और संसाधनों के अनुरूप हो।

टिप्पणी

- कार्य की रूपरेखा इस प्रकार की हो जो कर्मचारियों को महत्व, प्रेरणा और अवसर प्रदान करे ताकि वे अपने कौशलों का समुचित उपयोग कर सकें।
- कर्मचारियों के कार्यों और दायित्वों की व्याख्या स्पष्ट हो।
- कार्यालय में तनाव को कम करने हेतु प्रबंधकों द्वारा कर्मचारियों को आवंटित कार्यों की निगरानी करनी चाहिए। वहीं, कर्मचारियों को प्रशिक्षण देते समय प्रबंधकों को उन्हें तनाव को समझने का अवसर भी देना चाहिए।
- कर्मचारियों को उनके कार्यों को प्रभावित करने वाले निर्णयों और गतिविधियों में भाग लेने के अवसर दिये जाने चाहिए।
- विचारों के आदान–प्रदान की प्रक्रिया में सुधार होना चाहिए, वहीं वृत्ति के विकास की सुनिश्चितता हो।
- कर्मचरियों को परस्पार व्यवहार और बातचीत के अवसर दिये जाने चाहिए।
- कार्यों की एक ऐसी तालिका तैयार की जानी चाहिए जो कार्यालय के कार्य से भिन्न अपेक्षाओं और दायित्वों के अनुरूप हो।
- कार्यालय में जाति, महिला–पुरुष, जन्म के देश, धर्म, भाषा, आदि के आधार पर किसी प्रकार का भेदभाव नहीं होना चाहिए।
- संकट पैदा करने वाली समस्याओं को दूर करने के लिए एक सहभागी नेतृत्व शैली लागू की जानी चाहिए, जिसमें अधिक से अधिक लोग शामिल हों।
- परिवार अनुकूल लाभों और नीतियों की सहायता से कार्य और जीवन के संतुलन को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

1.2.2 शांति मूल्य बनाम संवैधानिक मूल्य

मानव जाति की प्रगति व विकास के लिए शांति आवश्यक है जिसे बनाए रखने हेतु मानव मूल्य आवश्यक होते हैं। वे मानव आचरण के लिए एक मार्गदर्शक का कार्य करते हैं। कुछ मूल्य अंतर्भूत या स्वाभाविक होते हैं, जैसे प्रेम, सत्य। मानव जीवन निर्बाध गति से चलता रहे इसके लिए शांति आवश्यक है और शांति को बनाए रखने में इन मूल्यों का महती योगदान होता है। यहां शांति के इन्हीं मूल्यों का एक संक्षिप्त विवेचन समीचीन है–

- **प्रेम :** प्रेम जीवन की ऊर्जा है। यह एक ऐसा शब्द है जिसे सुनते ही हमारा मन रोमांचित हो उठता है। प्रेम की व्याख्या अकसर एक गहरे स्नेह और लगाव के रूप में की जाती है। यह एक संवेग है, जो हम किसी प्रियजन के प्रति महसूस करते हैं। हममें से अधिकांश लोगों में इस प्रेम शब्द को रूमानी प्रेम के रूप में देखने की प्रवृत्ति होती है। किंतु, यथार्थतः इसका अर्थ माता–पिता, भाई–बहन, बच्चों, मित्रों, आदि के प्रति प्रेम होता है। भारतीय दर्शन में तो चर–अचर सभी से प्रेम की बात कही गई है।
- **करुणा :** करुणा मनुष्य का एक अत्युत्तम शीलगुण है, जो सभी जीव–जंतुओं के प्रति हो सकती है। करुणाशील लोगों को उदार, दयालु, सदाशय, आदि माना जाता है। करुणा वस्तुतः प्रेम का ही एक रूप है, यह सच्चे प्रेम से उत्पन्न होती है। इसे उदारता, दया और दान के रूप में देखा जा सकता है। करुणा परोपकार

टिप्पणी

का मुख्य घटक है। हम में जब किसी के प्रति करुणा जागती है, तो हम उसके कष्टों को दूर करने के लिए बेचैन हो उठते हैं। उदाहरणस्वरूप, जब आप किसी बेघर बूढ़े व्यक्ति को सड़क के किनारे देखते हैं, तो आपको महसूस होता है कि उसे सहायता की ज़रूरत है और फिर आप सहायता का हाथ बढ़ा देते हैं।

- **शांति** : शांति हमारे युग का, और यथार्थतः ज्ञात इतिहास के सभी युगों का एक अत्यधिक महत्वपूर्ण विषय रहा है और है। इसकी सीमा में व्यक्तिगत और वैश्विक दोनों स्तरों की शांति आती है। इसमें समानता, विनम्रता, आशावादिता, धैर्य, आत्मविश्वास, आत्मसंयम, आत्मसम्मान, आदि का समावेश होता है। विश्व शांति के लिए व्यक्ति की, समाज की और अंततः सभी राष्ट्रों की शांति आवश्यक है।

  शांति सद्भावना और सामाजिक प्रेम की एक अवधारणा है। सामाजिक अर्थ में इसका तात्पर्य एक ऐसे परिवेश से है, जहां संघर्ष न हो और समस्त परिवेश हिंसा के भय से मुक्त हो। अल्बर्ट आइंस्टीन के अनुसार शांति का अर्थ युद्ध से मुक्ति तो है ही, न्याय की, कानून की और व्यवस्था की, और कुल मिलाकर सरकार की स्थापना भी है।

- **सत्य** : ज्ञान की तरह सत्य की परिभाषा करना कठिन है। हम इस पर हर पल निर्भर करते दिखाई देते हैं और यह हमारे अत्यंत करीब है। फिर भी इसकी व्याख्या करना इसलिए कठिन है क्योंकि जैसे ही आप मान बैठते हैं कि आपने इसकी स्पष्ट व्याख्या कर ली है, वैसे ही तत्काल कोई स्थिति ऐसी सामने आ जाती है, जो आपकी व्याख्या को गलत ठहरा देती है। विडंबना है कि दार्शनिकों ने सत्य की जो भी व्याख्या की हो, उसके समक्ष तत्काल एक प्रश्न आ खड़ा होता है, ''क्या यह सही है?'' ऐसे में इतना तय है कि सत्य शाश्वत है, अपरिवर्तनशील और अटल है, क्योंकि इसका सरोकार परम और अटल यथार्थ से होता है। भारतीय वाङ्मय के तैत्तिरीय उपनिषद में गुरु शिष्यों को सत्य बोलने का परामर्श देते हैं – सत्यम् वद। इसे शुद्धता, सत्यनिष्ठा और निष्कपटता, शुचिता और निष्पक्षता, निर्भयता, आदि से चित्रित किया जाता है। इसके कई रूप हो सकते हैं, जैसे आत्मपरक अथवा संबंध सापेक्ष सत्य। व्यावसायिक जीवन में सत्य का सरलतम रूप निष्कपटता में दिखाई देता है।

- **अहिंसा** : अहिंसा का अर्थ किसी को किसी प्रकार का कष्ट पहुंचाने से परहेज करना है। लोगों, समुदायों–समाजों और राष्ट्रों के बीच संघर्ष की किसी संभावना को रोकना इसका लक्ष्य है। अहिंसा केवल हिंसा से परहेज ही नहीं है अपितु यह दमन को रोकने अथवा परिवर्तन लाने की दिशा में सकारात्मक सोच के साथ कार्य करने का एक मार्ग भी है। यह घृणा को रोकने और प्रेम तथा करुणा को अपनाने की मांग करती है।

- **धर्म** : धर्म नैतिकता के स्तर पर सही और दृष्टि से न्यायोचित होने की विशेषता अथवा अवस्था है। इसे भारतीय धर्मों के अतिरिक्त यहूदीवाद या यहूदी, ईसाई, इस्लाम, बहाई, समारी, रस्ताफारी, द्रूज धर्मों में तथा अन्य धर्मों में एक धार्मिक अवधारणा के रूप में देखा जा सकता है। डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम के अनुसार, ''जहां मन में धर्म हो, वहां चरित्र में सौंदर्य का वास होता है। यदि चरित्र में सौंदर्य हो, तो घर में सद्भाव रहता है। यदि घर में सद्भाव हो, तो देश

टिप्पणी

में व्यवस्था रहती है। यदि देश में व्यवस्था हो, तो विश्व में शांति रहती है।'' धर्म वस्तुतः मानव मूल्यों के साथ–साथ उसके अस्तित्व का भी मेरुदंड होता है।

- **त्याग** : इसे अपरिग्रह कहा गया है। इसका तात्पर्य सभी सजीव प्राणियों से प्रेम और सांसारिक विषयों का त्याग है। त्याग का अर्थ जीवन की सस्याओं से पलायन नहीं है। अपने सरलतम स्वरूप में त्याग किसी व्यक्ति का आत्मसंयम, भावनाओं पर नियंत्रण और निःस्वार्थता है।
- **क्षमा** : क्षमा की व्याख्या अकसर हमारे अपने समेत किसी व्यक्ति के प्रति क्रोध, कटुता, अपमान और प्रतिशोध तथा दंड की आवश्यकता के विचारों और भावनाओं के त्याग की एक व्यक्तिगत और स्वैच्छिक प्रक्रिया के रूप में की जाती है। क्षमा की क्षमता मानव स्वभाव का एक अंग होती है जिसका विकास स्वाभाविक चयन की एक प्रक्रिया में होता है। विकासशील विज्ञान के अनुसार इसका विकास उसी प्रकार होता है, जिस प्रकार हमारी प्रतिशोध की प्रवृत्ति का। क्षमा किसी व्यक्ति की किसी दूसरे व्यक्ति के प्रति एक विशेष रूप में प्रतिक्रिया है, जिसने उस पहले व्यक्ति के साथ दुर्व्यवहार किया हो। सामान्यतः, क्षमाशीलता को दुर्व्यवहार करने वाले के प्रति कुछ खास नकारात्मक संवेगों का त्याग माना जाता है।
- **सेवा** : सेवा प्रेम से उत्पन्न एक गुण है। जब दूसरों के प्रति प्रेम और करुणा और प्रेमवश दूसरों के लिए त्याग व बलिदान की इच्छा पनपती है, तब वह सेवा का रूप ले लेती है। सेवा तभी संभव है जब कोई व्यक्ति अन्य लोगों को अपना ही माने, अन्य नहीं। सेवा जाति, पंथ, क्षेत्र अथवा धर्म के भेदभाव के बिना समानता की अपेक्षा करती है। त्याग की तरह सेवा भी करुणा, प्रेम और सत्य का आधार है, क्योंकि इसमें किसी व्यक्ति के अपने और अन्य लोगों के प्रति उसकी जिम्मेदारी निहित होती है।
- **शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व** : शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व का अर्थ संशक्तिशील और सामंजस्यपूर्ण संबंध है। इसमें आदर, करुणा, परोपकारिता, क्षमा, नैतिकता, समानता, भाईचारा, दूसरों का सम्मान, पर्यावरण के प्रति जागरूकता, आदि आते हैं। हम अपने किसी पड़ोसी को नापसंद कर सकते हैं, हम उसे अपना मित्र नहीं मान सकते, पर हम उसके अस्तित्व को नकार नहीं सकते। वह हमारे साथ बराबरी के साथ रहता है। हम उसे कहीं और जाने के लिए मजबूर नहीं कर सकते। यही सह–अस्तित्व है।

संवैधानिक मूल्य

भारत के संविधान की प्रस्तावना में उसके उद्देश्य समाहित हैं, जिनमें समस्त देश में सद्भाव का प्रसार करना मुख्य है। जैसा कि हम जानते हैं, संविधान सर्वोच्च कानून है, जिसका पालन करना देश के प्रत्येक नागरिक के लिए अनिवार्य है। एक महान राष्ट्र के निर्माण में सहायता हेतु यह नागरिकों के बीच अखंडता और एकता बनाए रखने में सहायता करता है। इस संविधान के कुछ महत्वपूर्ण मूल्य हैं, जो इसकी आत्मा को आकार देते हैं। ये मूल्य इसके विभिन्न अनुच्छेदों और प्रावधानों में निहित हैं। यहां संविधान के इन मूल्यों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है।

• **न्याय** : न्याय का सिद्धांत आचारनीति और कानूनी व राजनीतिक दर्शन दोनों का मुख्य विषय है। हम इसका उपयोग निजी कार्यकलापों, कानूनों और लोक नीतियों के लिए करते हैं और इनमें से प्रत्येक मामले में मानते हैं कि यदि वे न्यायोचित नहीं हैं तो उन्हें अमान्य कर दिया जाना चाहिए। प्राचीन काल में न्याय को चार मुख्य गुणों में स्थान दिया गया था, जो इस प्रकार हैं – विवेक, न्याय, धैर्य और संयम।

न्याय देश के नागरिकों को भोजन, वस्त्र, आवास और सम्मान के साथ जीने के उनके मूलभूत अधिकार दिलाने का वचन देता है। यह सुनिश्चित करता है कि किसी की स्वतंत्रता किसी दूसरे के लिए आतंक न बन जाए। संविधान की प्रस्तावना में न्याय के राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक सभी आयामों का समावेश है। इसमें सामाजिक न्याय की विस्तृत और विभिन्न तरीकों से व्याख्या की गई है। न्याय का सच्चे अर्थों में सार्थक होने के लिए आवश्यक है सत्ता में हिस्सेदारी, वंचितों के प्रति करुणा और उपेक्षितों के प्रति परानुभूति। शिक्षा के अधिकार और कर्तव्य न्याय के लिए लड़ाई हेतु आवश्यक हो जाते हैं।

सामाजिक न्याय का तात्पर्य नागरिकता, धर्म, आयु, महिला–पुरुष भेद, जाति, वर्ग, नृजातीयता, अथवा कामपरक रुझान से परे अधिकारों से है। इनमें कार्यालयों, घरों और सार्वजनिक जीवन में काम करती महिलाओं व बालिकाओं के अधिकार निहित हैं। इसका तात्पर्य आर्थिक न्याय से है, जिसका अर्थ है कि सरकार को ग़रीबी उन्मूलन और लोगों के साथ अतीत में हुए अन्यायों का प्रतिकार करना चाहिए। वस्तुतः, आर्थिक न्याय सामाजिक न्याय का ही एक अंग है। इसका उद्‌देश्य प्राकृतिक और बौद्धिक संपदा का समान वितरण सुनिश्चित करना है।

• **समानता** : समानता संविधान का दूसरा मूल्य है। इसे प्रजातंत्र की आधुनिक विचारधारा का सार माना जाता है। संविधान निर्माताओं ने प्रस्तावना में इसे एक विशेष स्थान दिया है। शासकों और शासितों की अवधारणा पर आधारित सभी प्रकार की असमानताओं का उन्मूलन इसका ध्येय है। भारत के सभी नागरिकों के साथ समानता का व्यवहार होना चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि समाज में ऐसा कोई वर्ग न हो, जिसे किसी प्रकार का विशेषाधिकार प्राप्त हो और सभी लोगों को सभी क्षेत्रों में बिना किसी भेदभाव के समान अवसर मिलें। इसका अर्थ समाज से सभी प्रकार के भेदभावों का उन्मूलन है, ताकि एक स्वस्थ परिवेश का निर्माण हो जिसमें सभी लोग बराबरी के साथ रहें। कानून के समक्ष सभी लोग बराबर हों। यदि समानता सुनिश्चित नहीं हो, तो स्वतंत्रता और न्याय शब्द भर रह जाएंगे। समानता का अर्थ लोगों के विकास के लिए शोषण से मुक्ति और समान अवसरों की सुनिश्चितता है।

• **स्वतंत्रता** : संविधान की प्रस्तावना में अभिव्यक्ति, विचार, विश्वास, आस्था और पूजापाठ की स्वतंत्रता का प्रावधान है। यह स्वतंत्रता संविधान का मूलभूत मूल्य है। यह हर समुदाय के लोगों के लिए सुनिश्चित होनी चाहिए। दूसरों के विचार और कार्यकलाप की स्वतंत्रता का सम्मान करना किसी सभ्य समाज का परिचायक होता है।

1.2.3 भिन्नताओं एवं पारिस्थितिक संसाधनों का सम्मान

यह मानवता की सुंदरता है कि हम सभी एक दूसरे से भिन्न होते हैं। हर व्यक्ति अपने आप में विशिष्ट होता है। ऐसे में, हमारे लिए ज़रूरी है कि इन भिन्नताओं को पहचानें और इनका सम्मान करें। भिन्नता इस अर्थ में एक अच्छी चीज है कि यह विश्व को

टिप्पणी

अधिक से अधिक आकर्षक बनाती है। भिन्न संस्कृतियों, परंपराओं और जीवनशैलियों के लोगों से घुलना–मिलना हमारे मन में जुड़ाव का एक भाव पैदा करता है। प्रत्येक समुदाय के लोगों के बीच भिन्नताएं होती हैं, जैसे जातियों, वर्गों, भाषाओं, धर्मों, संस्कृतियों, आदि की भिन्नताएं। इनमें से कुछ भिन्नताएं स्पष्ट होती हैं; कुछ नहीं। भिन्नताओं को अकसर 'विविधता' कहा जाता है। कक्षा में भिन्नताओं और विविधता पर चर्चा की जानी चाहिए, क्योंकि कक्षा में छात्र विभिन्न समुदायों के छात्रों के संपर्क में आते हैं, जिनमें से कुछ एक दूसरे से अत्यंत भिन्न होते हैं। किसी व्यक्ति की आरंभिक जानकारी के आधार पर भिन्नताओं के प्रति हम सभी कल्पनाएं कर लेते हैं। लोगों के साथ मिलकर काम करने के लिए छात्रों को कल्पनाओं से आगे बढ़ना, सुनना और आपसी भिन्नताओं का सम्मान करना सीखना चाहिए।

पारिस्थितिक संसाधनों का सम्मान

पर्यावरण और समुदायों का सम्मान साथ–साथ चलता है क्योंकि लोगों पर पर्यावरण की समस्याओं का भारी प्रभाव पड़ता है। जीवाश्म ईंधनों के उपयोग के कारण होने वाले जलवायु परिवर्तन का प्रतिकूल प्रभाव विभिन्न रूपों में पर्यावरण पर और अंततः जीव–जंतुओं पर पड़ता है। जलवायु में होने वाले परिवर्तनों के परिणाम अकसर बाढ़ या सूखे के रूप में सामने आते रहते हैं। इनके चलते परितंत्र भी दूषित होता है। ऐसे में पर्यावरण में होने वाले प्रतिकूल परिवर्तनों की समय रहते रोकथाम अथवा जलवायु परिवर्तन की गति को कम करने पर ध्यान देना आवश्यक है।

मानव कल्याण के लिए प्राकृतिक और परितंत्रीय संसाधनों का सम्मान आवश्यक है, किंतु इनका सम्मान करने का यही एकमात्र कारण नहीं है। जीवन के सभी स्वरूपों का सम्मान हमें मनुष्य के हितों के एक साधन के रूप में ही नहीं, बल्कि इसलिए भी करना चाहिए क्योंकि यह उनका अधिकार है। प्राकृतिक जगत का एक सच्चा स्वरूप हमारे सामने तभी आ सकता है, जब हम जीवन के सभी स्वरूपों को केवल मानव जाति के संसाधन के रूप में नहीं देखें। दृष्टिकोण में यह अपेक्षाकृत अधिक उदार परिवर्तन पर्यावरण और परितंत्र के कल्याण की दिशा में एक अपेक्षाकृत अधिक सर्वांगीण उद्देश्य का पोषण कर सकता है। पर्यावरण एवं प्राकृतिक संसाधनों के सम्मान और रखरखाव से यह भी सुनिश्चित होता है कि समुदायों के पास उनकी आवश्यकताओं को पूरा करने के पर्याप्त संसाधन हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

1. शांति की चुनौती में निम्न में से क्या शामिल है?
   (क) अपराध (ख) आतंकवाद
   (ग) हिंसा (घ) उपर्युक्त सभी
2. "आतंकवाद प्रतिशोध लेने के ध्येय से युद्ध के प्रति अनिच्छुक लोगों के विरुद्ध हिंसा का एक कार्य या धमकी है।" यह परिभाषा किसने दी?
   (क) वॉल्टर लेकियर (ख) स्टर्न
   (ग) ब्रायन जेनकिन्स (घ) जेम्स एम. पोलैंड

1.3 शांति की स्थापना

आज समस्त विश्व को नानाविध गंभीर चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। इन समस्याओं में कई वैश्विक स्वरूप की हैं, जैसे जलवायु परिवर्तन, निरंतर क्षीण होती जैवविविधता, पृथ्वी का घटता मीठा जल और आबादी का भारी बोझ। इन वैश्विक चुनौतियों का वैश्विक स्तर पर ही समाधान आवश्यक है और इसके लिए बड़े पैमाने पर सहयोग की ज़रूरत है। आज सभी देश एक दूसरे से घनिष्ठता से जुड़े हैं, अर्थात् उनके बीच दूरियां बहुत कम हो चली हैं। इन चुनौतियों के स्रोत बहुआयामी रूप ले चुके हैं और उत्तरोत्तर जटिल होते जा रहे हैं तथा एक देश से दूसरे देश पहुंचने लगे हैं। ऐसे में, इन अभूतपूर्व चुनौतियों के समाधान पर नए सिरे से विचार करने की ज़रूरत आन पड़ी है।

इन चुनौतियों का समाधान करने के लिए आवश्यक विश्वास, सहयोग अथवा समावेशन के लक्ष्य की प्राप्ति शांति के बिना संभव नहीं है। इस प्रकार, जीव–जंतुओं के अस्तित्व को बचाए रखने के लिए शांति पहली ज़रूरत है।

शांतिपूर्ण समाजों का सृजन करने और उन्हें बनाए रखने वाले कारकों को समझे बिना, कार्यक्रमों का गठन, नीतियों का निर्धारण अथवा शांतिपूर्ण एवं प्रत्यास्थी समाजों के निर्माण के लिए आवश्यक संसाधनों की समझ संभव नहीं है। शांति विश्व के समक्ष खड़ी अनेकानेक जटिल चुनौतियों को समझने और दूर करने का एक ढांचा प्रदान करती है। शांति इस अर्थ में रूपांतरणपरक है कि यह प्रगति का एक कारक है, जो उद्यमियों और वैज्ञानिकों के लिए अभिनव खोज, कंपनियों के लिए बिक्री, लोगों के लिए उत्पादन और सरकार के लिए प्रभावकारी नियमन को सरल बनाता है। शांति का संबंध कई अन्य सामाजिक अभिलक्षणों से भी है, जिन्हें सुदृढ़ आर्थिक परिणामों, उच्चतर लोच, कल्याण के बेहतर उपायों, उच्च स्तर के समावेशन और अपेक्षाकृत अधिक स्थायी पर्यावरणीय कार्य समेत वांछनीय माना जाता है।

इस प्रकार, शांति एक ऐसे सर्वोत्कृष्ट परिवेश के निर्माण में सहायता करती है, जिसमें लोग एवं अन्य जीव–जंतु फल–फूल सकें।

इस शांति की स्थापना की कुछ पूर्वापेक्षाएं होती हैं, जिनका संक्षिप्त विवरण यहां प्रस्तुत है।

1.3.1 समाज में शांति के लिए पूर्व आवश्यकताएं : अंतर–सांस्कृतिक सद्भाव

सरल शब्दों में संस्कृति एक जटिल समष्टि है, जिसमें भाषा, विश्वदर्शन, कलाएं, अभिवृत्तियां और जीवन के रीतिरिवाज सभी आते हैं। धर्म भी इसकी परिधि में आता है, किंतु उस रूप में नहीं, जिसमें उसे सामान्यतः देखा जाता है। पिछली दो शताब्दियों में, संस्कृति की अलग–अलग दृष्टिकोणों से स्थापनाएं दी गई हैं।

श्रेष्ठ अर्थ में संस्कृति की व्याख्या और तालमेल पर व्यापक सैद्धांतिक चर्चाओं से अलग कुछ चीजें स्पष्ट हैं, जैसे विश्व के प्रायः सभी देशों में संस्कृतियों में विविधता है, अर्थात् ऐसा लगभग कोई देश नहीं है, जहां केवल एक संस्कृति हो। स्वचलित और पृथक संस्कृतियों का युग अब नहीं रहा। किसी देश के इतिहास और उदय के अनुरूप

टिप्पणी

अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक अंतरंग सत्ताएं होती हैं। किंतु, यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि आपस में घुलने–मिलने, संस्कृति–संक्रमण की अपार संभावनाओं के बावजूद जातीय और एक दूसरे के धर्म के प्रति घृणा व हिंसा की घटनाएं जब–तब देखने में आती ही रहती हैं।

एक सांस्कृतिक विषय के रूप में सद्भाव को समझना कठिन हो सकता है, किंतु इसकी व्याख्या एक मानवीय मूल्य के रूप में की जा सकती है, जिसका अर्थ भावनाओं, क्रियाकलापों, परस्पर व्यवहारों और अभिमतों की समनुरूपता व सामंजस्य है। जहां तक इतिहास और सामाजिक–सांस्कृतिक आयामों का संबंध है, धर्म की भूमिका अहम रही है।

वर्ष 1990 के दशक के दौरान शांति शिक्षा एक छत्र के रूप में अंतर–सांस्कृतिक शिक्षा (Intercultural Education) और मानवाधिकार शिक्षा व सहिष्णुता शिक्षा से या फिर शिक्षा की परस्पर आदान–प्रदान पद्धति (Interchanged educational Practice) से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ गई। छत्र पद्धति में किसी समाज की अंतर–सांस्कृतिक विषयों के विभिन्न उपागमों को शामिल किया गया। कक्षा में संस्कृति के प्रति गलतफहमी, पूर्वाग्रहों और अनादर के कारण उत्पन्न भेदभाव को प्रभावकरी ढंग से दूर करने के ध्येय से शिक्षकों को तैयार करने हेतु सेवापूर्व और सेवारत शिक्षकों को अलग–अलग संस्कृतियों की शिक्षा को लेकर दिये जाने वाले प्रशिक्षण में अहिंसावादी संघर्ष के समाधान की विधियों और तकनीक पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा। दूसरों के प्रति किसी की प्रतिक्रिया को समझ कर और दूसरों की मनःस्थिति को सुनकर दूसरों को समझने के कौशलों का विकास किया गया। आत्माभिव्यक्ति के बाह्य और आंतरिक अवरोधों को दूर करने के कौशलों के विकास पर केंद्रित विभिन्न कार्यक्रम इस नई पद्धति का एक अंग थे।

कई स्कूलों–कॉलेजों में अंतर–सांस्कृतिक तनाव छात्रों की शिक्षा, सामाजिक आचार–व्यवहार और अभिवृत्तियों में सुधार के मार्ग में बाधाएं खड़ी करते हैं। ये तनाव अकसर छात्रों के बीच और छात्रों तथा कर्मचारियों के बीच दिखाई देते हैं।

कानून निर्माताओं, शिक्षकों और नागरिकों ने अपने–अपने कार्यों में अंतर–सांस्कृतिक संबंधों को सहज बनाने और शिक्षा संस्थानों व समाजों के नानारूप समूहों में सकारात्मक व्यवहार को प्रोत्साहित करने पर विशेष ध्यान दिया है। अंतर–सांस्कृतिक असमानताओं और तनावों को दूर करने हेतु स्कूलों में न्यायालयों के निर्णयानुसार वर्णभेद उन्मूलन और बहु–सांस्कृतिक शिक्षा कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के साथ–साथ सांस्कृतिक शिक्षा की शैलियों पर अधिक से अधिक ध्यान देने तक बड़े पैमाने पर प्रयास किये गए हैं और किये जा रहे हैं। इन और इन जैसे अन्य प्रयासों में कुछ सफलता मिली है, किंतु अंतर–समूह संकट शिक्षकों, छात्रों, माता–पिता और समाज के लिए एक गंभीर चिंता बना हुआ है।

समाजों में निरंतर हो रहे परिवर्तनों के चलते अंतर–सांस्कृतिक संबंध की चिंता भी उत्तरोत्तर बढ़ रही है। इन परिवर्तनों के कारण देशों में रोज विविधता जन्म ले रही है। किंतु, एक तरफ जहां स्कूलों में अलग–अलग संस्कृतियों के बच्चों की संख्या में वृद्धि हो रही है, वहां दूसरी तरफ संस्कृति विशेष के शिक्षकों की संख्या बढ़ रही है।

टिप्पणी

एक शोध के अनुसार सन् 1985 में अमेरिका में श्वेत शिक्षकों का अंश 88 प्रतिशत था, जो वर्ष 2000 तक आते–आते बढ़कर 95 प्रतिशत हो गया। यह असंतुलन भी अंतर–सांस्कृतिक तनाव का एक स्रोत हो सकता है, क्योंकि श्वेत कर्मचारी श्वेत छात्रों के लाभ के प्रति आग्रही हो सकते हैं।

अंतर–सांस्कृतिक सद्भाव में सुधार से संबद्ध कार्यक्रमों और गतिविधियों के प्रभावों का विश्लेषण करने हेतु एक परिभाषा के रूप में यह देखना आवश्यक है कि 'संस्कृति' का अर्थ क्या है और साहित्य के संदर्भ में 'संस्कृतियों' के रूप में किस प्रकार के समूहों की गणना की जाती है।

प्लूमिस–डेविक के अनुसार, संस्कृति मूलतः आचरण का एक ढांचा है। इसमें मानव निर्धारित लिखित अथवा अलिखित दिशा–निर्देश आते हैं, जो तय करते हैं कि लोगों के समूह एक दूसरे से और अपने विश्व से किस प्रकार जुड़ें।

सांस्कृतिक विविधता का अर्थ महज वे अंतर हैं जो सांस्कृतिक समूहों में मौजूद होते हैं।

संस्कृति की उसकी विस्तृत अवधारणा के कारण यह परिभाषा उपयोगी है। वस्तुतः, अंतर–सांस्कृतिक सद्भाव पर हाल में हुए ज्यादातर शोधों में जाति और उपजातीयता (नृजातीयता) के अतिरिक्त पूर्वाग्रह और भेदभाव से प्रभावित अन्य समूहों को स्थान दिया गया है।

अंतर–सांस्कृतिक सद्भाव समाजों में और राष्ट्रों के बीच शांति व अक्षोभ का प्रसार करने का एक माध्यम है। व्यक्तिगत और सांस्थानिक स्तर पर अलग–अलग संस्कृतियों के लोगों के बीच एक अंतर्संबंध होता है, जो राष्ट्रों की राज्यव्यवस्था में एक सकारात्मक छवि प्रस्तुत करता है। अंतर–सांस्कृतिक सद्भाव शांतिपूर्वक जीने और जीने देने के सिद्धांत को बढ़ावा देती है।

सद्भाव एक सद्गुण है, जिसमें एक संतुलित समष्टि के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सभी शांति का सहारा लेते हैं। विविधता लोगों के किसी समूह के बीच विभिन्न संस्कृतियों और नृजातीयताओं का एक अंतर्वेशन है। विविधता में सद्भाव आवश्यक होती है। किंतु, यह सरलता से कायम नहीं की जा सकती। फिर अंतर–सांस्कृतिक सद्भाव के पोषण और उन्नयन के लिए, यह जानना चाहिए कि विविधता के भीतर सद्भाव क्यों आवश्यक है। अंतर–सांस्कृतिक सद्भाव कायम हो सके इसके लिए हमें इसके इस मूलभूत ज्ञान के आधार पर आवश्यक कदम उठाने और हरसंभव प्रयास करने चाहिए। विविधता के भीतर सद्भाव का अपना महत्व है, जिसका पोषण परम आवश्यक है। इस बहु–जातीय विश्व में सद्भाव सकारात्मक मूल्यों का सृजन कर सकती है। सकारात्मक मूल्य मौलिक शीलगुणों का एक पुंज होते हैं। ये मूल्य किसी व्यक्ति के उदात्त चरित्र को दर्शाते हैं। अंतर–सांस्कृतिक सद्भाव के माध्यम से जिन सकारात्मक मूल्यों का सृजन होता है, उनमें समानता और प्रेम शामिल हैं।

विविधता के भीतर सद्भाव का पोषण दयालुता से किया जा सकता है। किसी ने ठीक ही कहा है कि दयालुता का कोई काम, वह चाहे छोटा हो या बड़ा, कभी व्यर्थ नहीं होता। इसलिए अंतर–सांस्कृतिक सद्भाव का पोषण दयालुता से ही हो सकता है। विविधता के भीतर सद्भाव का उन्नयन शांति से ही हो सकता है।

अंतर–सांस्कृतिक शांति स्थापना

टिप्पणी

बहुलतावादी समाजों में बहु–सांस्कृतिक शिक्षा विषयों के लिए अंतर–सांस्कृतिक शांति निर्माण के प्रयास आवश्यक हैं। 'अंतर–सांस्कृतिक समझ' को विशिष्ट प्राथमिक संस्कृतियों (प्राथमिक संस्कृति वह अंतः समूह है जिससे किसी का अत्यधिक जुड़ाव होता है, सामान्यतः जन्मकालिक संस्कृति) के लोगों अथवा लोगों के समूहों के बीच साझा प्रतीकात्मक और संवादात्मक अर्थों के रूप में समझा जा सकता है; यह सीमाओं पर और सीमावर्ती प्रदेशों में बीच का साझा क्षेत्र होता है, जहां 'अंतर–सांस्कृतिक' परिवेश जन्म लेता है। सीमाक्षेत्र अटल नहीं होते, जिन्हें आलंकारिक दीवारों, कांटेदार तार और रेत से भरे बोरों से सुदृढ़ करने की ज़रूरत होती है, किंतु इसमें अंतर–सांस्कृतिक अवसर के शांतिदायक क्षेत्र होने चाहिए। किसी बहुलतावादी संसार में सांस्कृतिक सीमा क्षेत्रों के आसपास परस्पर व्यवहार के नए केंद्रों का अनुसरण कैसे हो? अंतर–सांस्कृतिक शांति निर्माण के प्रयास इसका एक सशक्त उत्तर हो सकते हैं, जो अलग–अलग संस्कृतियों के संदर्भ में साझा समझ स्थापित करने पर केंद्रित होते हैं। महत्वपूर्ण यह है कि जो साझा है, उसके प्रति 'अंतर–सांस्कृतिक' शब्द एक पूर्वाग्रह है, किंतु यह भिन्नता की उपेक्षा नहीं करता। अंतर–सांस्कृतिक समझ की एक पूर्वापेक्षा के रूप में बेनेट (1998) विविधता की अभिपुष्टि पर जोर देते हैं : जब तक हम यह स्वीकार नहीं कर सकते कि लोगों के अन्य समूह वास्तव में भिन्न हैं – अर्थात् वे यथार्थ के भिन्न मूल्यों और सिद्धांतों के अनुरूप सफलतापूर्वक कार्य कर रहे हैं – तब तक हम संवेदनशीलता नहीं जता सकते न ही उन भिन्नताओं को सम्मान दे सकते हैं, जो अंतर–सांस्कृतिक संप्रेषणीयता या संवाद तथा समझ को संभव बना सकते हैं।

बेनेट के अनुसार, अंतर–सांस्कृतिक समझ के लिए भिन्नता को स्वीकार करना आवश्यक है। विविधता की अभिपुष्टि पारस्परिक समझ के विकास का एक आधार प्रदान करती है। परानुभूति, विश्वास, पारस्परिक समझ और विविधता की अभिपुष्टि के साथ संबंध कायम करना एक बहु–सांस्कृतिक विश्व में आवश्यक प्रतीत होता है। अंतर–सांस्कृतिक शांति की आदर्श अवधारणा में, इसे परस्पर व्यवहार की एक विधि और पारस्परिक समझ की एक स्थिति के रूप में समझा जा सकता है, जहां कोई प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष हिंसा न हो।

अंतर–सांस्कृतिक की समझ : वैश्विक सद्भाव की कुंजी

विश्व की संस्कृतियों की समृद्ध विविधता, हमारी नानारूप अभिव्यक्तियों और मनुष्य होने के तरीकों के प्रति सम्मान, स्वीकरण और सराहना ही सद्भाव है। इसे सहिष्णुता के रूप में भी देखा जा सकता है। इसका पोषण ज्ञान, ग्रहणशीलता, संप्रेषण–संवाद और विचार, विवेक व आस्था की स्वतंत्रता सब मिलकर करते हैं। सद्भाव न केवल एक नैतिक कर्तव्य है बल्कि एक राजनीतिक व विधिक आवश्यकता भी है। सद्भाव वह सदगुण है, जो शांति को संभव बनाता है, जो युद्ध की संस्कृति को दूर कर शांति की संस्कृति कायम करने में सहयोग करता है। सद्भाव एक क्रियाशील अभिवृत्ति है जो वैश्विक मानवाधिकारों और लोगों की मौलिक स्वतंत्रताओं से प्रेरित हैं। इसका उपयोग इन मूलभूत मूल्यों के अतिक्रमण को उचित ठहराने में कतई नहीं किया जा सकता।

टिप्पणी

तेजी से बदलते एक विश्व में, जिसमें शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व के लिए एक दूसरे को समझना परम आवश्यक है, हमें एक दूसरे को शिक्षा देना और समझाना चाहिए ताकि अज्ञानतावश हो रहे संस्कृतियों के टकराव तथा गलत जानकारी को फैलने से रोका जा सके और अंतर–सांस्कृतिक सद्भाव की दिशा में कार्य हो।

हम मानवता के एक कठोर दौर में जी रहे हैं। हम एक ऐसे युग में जी रहे हैं, जो मानवाधिकारों की रक्षा का दंभ भरता है, किंतु हम पूरे विश्व में रोज मानवता के विरुद्ध अत्याचार होता देख रहे हैं। प्रत्येक देश अपनी सीमाओं पर लोगों की व्यापक गतिविधि महसूस कर रहा है, जो इस बात का संकेत है कि अभी और परिवर्तन होंगे। राजनीतिक निर्णय रोज लिये जा रहे हैं। सामाजिक समस्याएं द्रुत गति से बढ़ रही हैं, युद्ध का भय सभी देशों में व्याप्त है। आतंकवाद आधुनिक युग का युद्ध है। यह जब भी और जहां कहीं भी घटता है, हम सब भय से त्रस्त हो जाते हैं।

ऐसे में हमें मानवजाति को वैश्विक स्तर पर बचाना है। इसके लिए शिक्षा पहली ज़रूरत है। शांति शिक्षा न केवल सामाजिक और वैश्विक सद्भाव के निर्माण में सहायक होगी, बल्कि इसके साथ ही मानवाधिकार अभिसमयों को भी बढ़ावा देगी। यह अहिंसा की एक संस्कृति को भी सहयोग करेगी, क्योंकि यह सांस्कृतिक संघर्षों को हिंसा का रूप लेने से रोकती है। वहीं, आपसी वार्तालाप भी ज़रूरी है। हमें इन दोनों को अपने अभ्यास में शामिल करना चाहिए। हमारे बीच एक बेहतर तालमेल, एक दूसरे के प्रति उच्चतर सम्मान, एक अटूट बंधन के लिए यह आवश्यक है कि हम एक–दूसरे से अपने विचारों का आदान–प्रदान करें और इस प्रकार एक–दूसरे को समझें। साथ मिलकर हम अंतर–सांस्कृतिक सद्भाव का लक्ष्य पूरा कर सकेंगे।

जातीय और सांस्कृतिक तनावों से समस्त विश्व आक्रांत है। वस्तुतः इस समस्या के दूर होने का अभी दूर–दूर तक कोई लक्षण दिखाई नहीं देता। रोज उत्पन्न हो रही तकनीकियां वैश्वीकरण की उत्तरोत्तर प्रगति में सहायता कर रही हैं। विश्व सिमट रहा है, अवसरों की तलाश में एक देश के लोगों का दूसरे देशों में आना–जाना बढ़ रहा है। संस्कृतियों का आपस में टकराव बढ़ रहा है। किंतु, यह भी सही है कि ऐसी कोई भी संस्कृति जीवित नहीं रह सकती, जो दूसरी संस्कृतियों से ऊपर होने का प्रयास करे। ज़रूरी यह है कि संस्कृतियों का आपस में मेल हो, वे पूरी स्वतंत्रता के साथ एक दूसरे से घुल–मिल जाएं और एक दूसरी के साथ परस्पर व्यवहार, परस्पर आदान–प्रदान की प्रक्रिया से लाभ लें। किसी की अपनी संस्कृति को बचाए रखने का अर्थ किसी दूसरे की संस्कृति को क्षति पहुंचाना नहीं है, अर्थात् किसी व्यक्ति को किसी दूसरे व्यक्ति की संस्कृति को क्षति नहीं पहुंचानी चाहिए। धर्म की तरह ही संस्कृति का भी सम्मान होना चाहिए। संस्कृतियां मानवता रूपी वृक्ष के पत्ते हैं। संस्कृतियों की विविधता और विकास से मानव अस्तित्व समृद्ध होता है। इस प्रकार, संस्कृतियों में सद्भाव हो और वे फलती–फूलती रहें।

अंतर–सांस्कृतिक सद्भाव का महत्व

सद्भाव या सहिष्णुता विभिन्नसमूहों को एक दूसरे से सम्मानपूर्ण ढंग से जुड़ने, एक दूसरे को समझने में सहायता करती है। जिन समाजों में आपस में हिंसक संघर्ष होते रहते हों, उनमें सहिष्णुता और सद्भाव अतीत की पीड़ा से मुक्ति दिलाने के साथ–साथ मतभेदों को दूर करने में सहायक होते हैं। उन परिस्थितियों में, जहां स्थितियां आर्थिक

टिप्पणी

दृष्टि से विपन्न और राजनीतिक दृष्टि से सक्रिय हों, समूहों और लोगों को उन लोगों को झेलना कठिन हो जाता है, जो उनके विरोधी हों या जिन्होंने उन्हें नुकसान पहुंचाया हो। इन स्थितियों में भेदभाव, मानवेतर व्यवहार, दमन और हिंसा की घटनाएं हो सकती हैं। ऐसे में, सहिष्णुता और सद्भाव काम आ सकते हैं।

सद्भावपूर्ण समाज के निर्माण में शिक्षा की भूमिका

शिक्षा असहिष्णुता के निवारण का सर्वाधिक प्रभावशील माध्यम है। सद्भाव की शिक्षा का पहला चरण लोगों को समझाना है कि उनके साझा अधिकार और स्वतंत्रताएं क्या हैं, ताकि उन्हें सम्मान मिले। सहिष्णुता और सद्भाव की शिक्षा को एक अनिवार्य आवश्यकता माना जाना चाहिए, इसलिए सहिष्णुता व सद्भाव की सुव्यवस्थित और तर्कमूलक शिक्षा की उन शिक्षण विधियों को बढ़ावा दिया जाए जो असहिष्णुता, हिंसा और बहिष्कार के सभी स्रोतों का समूल नाश करें। शिक्षा की नीतियां और कार्यक्रम ऐसे हों जो लोगों के बीच और नृजातीय, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और भाषायी समूहों तथा राष्ट्रों के बीच आपसी समझ, एकजुटता और सहिष्णुता के सृजन में सहयोग करें। सहिष्णुता और सद्भाव की शिक्षा का लक्ष्य भय और बहिष्कार के कारक प्रभावों का प्रतिकार होना चाहिए। वहीं, इसे स्वतंत्र निर्णय, क्रांतिक चिंतन (Critical Thinking) और नैतिक तर्क की क्षमताओं का विकास करने में युवाओं की सहायता करनी चाहिए।

1.3.2 धर्मनिरपेक्ष और लोकतांत्रिक विचारों के लिए उत्तरदायी नागरिकता का सम्मान : ऐतिहासिक अवधारणाएं

प्राचीन काल में युवाओं का नागरिक जीवन से संबंध उनके माता–पिता और दादा–दादियों की तुलना में बहुत कम होता था। किंतु, ज्यों–ज्यों विकास होता गया, स्थितियां भी बदलती गईं और समाजों और राष्ट्रों के मानस में बदलाव आता गया। फिर यह ज़रूरी हो गया कि सभी लोगों को नागरिकता की शिक्षा दी जाए। आज ज्यादातर समाज मानते हैं कि उनके युवाओं को शिक्षा इस प्रकार दी जाए कि वह उनमें 'नागरिक मानसिकता' का विकास करने में सहायक हो। वे केवल अपने हित को नहीं बल्कि समुदाय और राष्ट्र के हित को भी ध्यान में रखें, उसे समझें। नागरिक शिक्षा का उद्देश्य ज्ञान, आत्मविश्वास और कौशलों का सृजन कर सभी नागरिकों को, या कम से कम संभावित नेताओं को नागरिकों के रूप में प्रभावशाली व क्षमतावान बनाना या राजनीतिक सत्ता में असमानताओं–विषमताओं को कम करना होता है। यहां नागरिक शिक्षा की कई उन अवधारणाओं को संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है, जो इतिहास में प्रभावशाली रहे हैं।

नागरिकता की अवधारणा की उत्पत्ति और इतिहास

नागरिकता की अवधारणा की उत्पत्ति प्राचीन यूनान और प्राचीन रोम गणराज्यों में हुई। लैटिन क ब्यअपे और यूनानी के च्वसपजपमे इस शब्द के मूल हैं। च्वसपजपमे का अर्थ नगर है। किंतु, समान अधिकारों की एक प्रणाली के रूप में जिस अर्थ में नागरिकता को आज समझा जाता है, उसका स्रोत सन् 1789 की फ्रांसीसी क्रांति है। पूंजीवाद और उदारतावाद के साथ ही लोगों को उनकी जाति, वर्ग, मूल, महिला या पुरुष, उपजातीयता, आदि से परे अधिकार मिले। किंतु, 1980 के दशक में वैश्वीकरण और बहुसंस्कृतिवाद के उदय के बाद से नागरिकता के इस मानदंड को चुनौती दी जाने

लगी है। आज विश्व नागरिकता और मानवाधिकारों पर गंभीरतापूर्वक चर्चा की जाने लगी है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि नागरिकता की अवधारणा का विकास इतिहास के कई कालखंडों में हुआ है। इसका स्वरूप और स्वत्व विशिष्ट ऐतिहासिक संदर्भों के अनुरूप बदलते रहे हैं, किंतु उसमें किसी न किसी रूप में आरंभिक अवधारणा की झलक बनी रही है।

एथेंस और स्पार्टा के तानेबाने की तरह यूनानी गणराज्य का तानाबाना भी मजबूत था, जिसकी आबादी कम, समाज में अलगाव न्यून और राजनीतिक संगठन सरल थे और जो मेलजोल व विश्वास के मानकों पर आधारित था। यूनानी गणराज्य या नगर राज्य में नागरिकता की अवधारणा सक्रिय व सजीव सहभागिता के सिद्धांत पर आधारित थी। किसी व्यक्ति के जीवन के राजनीतिक और सार्वजनिक पहलुओं को निजी और कौटुंबिक जीवन से अधिक महत्व दिया जाता था। इसलिए, नागरिकता हेतु राजनीतिक और सार्वजनिक मामलों में सक्रिय व सजीव भागीदारी की आवश्यकता होती थी। किंतु, उल्लेख समीचीन है कि उन दिनों हर कोई शासन में भागीदारी नहीं कर सकता था, इसलिए हर कोई नागरिक नहीं होता था। अरस्तु ने यूनानी नागरिकों की व्याख्या इस रूप में की थी, 'वे सभी जो शासन के नागरिक जीवन में भाग लें और शासन के अधीन रहें'। यह भागीदारी केवल उन्हीं लोगों तक सीमित थी जिन्हें शासन की प्रक्रिया में भाग लेने का अधिकार था, यानी जिन पुरुषों का जन्म उसी देश में हुआ हो और वे स्वतंत्र हों। इस प्रकार, महिलाओं, बच्चों, दासों और आप्रवासियों को नागरिकता प्राप्त नहीं थी। इस प्रकार, यह नागरिकता आबादी के एक छोटे वर्ग तक ही सीमित थी।

यूनान के प्राचीन नगर राज्य को शैक्षिक समुदाय माना जाता था, जिसे यूनानी में paideia कहा जाता था, जिसका अर्थ शिक्षा होता है। राजनीतिक, अर्थात् नागरिक या नगर, जीवन का उद्देश्य नागरिकों का आत्म–विकास होता था। इसका अर्थ केवल शिक्षा नहीं बल्कि और भी बहुत कुछ होता था और paidiea का अनुवाद सामान्यतः इसी रूप में होता है। यूनानियों के लिए शिक्षा में एक अति गंभीर और जीवनपर्यंत चलने वाली प्रक्रिया आती थी, जिसका लक्ष्य हर व्यक्ति, अर्थात् हर मनुष्य, के लिए उसके अपने मित्रों, अपने परिवार और सबसे ऊपर राज्य का बल बनाना था।

यह बल बनने के लिए समुदाय के उच्चतम नैतिक आदर्शों को आत्मसात करना और उनका पालन करना आवश्यक था। इसलिए शिक्षा में कलाओं, दर्शन और साहित्य शास्त्र, इतिहास, विज्ञान तथा गणित की शिक्षा, खेलों और युद्ध के प्रशिक्षण; नगर के धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक और संव्यावसायिक रीतिरिवाजों की शिक्षा और उनमें भाग लेने के लिए प्रशिक्षण और सद्गुणों के जरिए किसी व्यक्ति के नैतिक चरित्र के विकास को शामिल किया गया। ध्येय यह था कि लोगों में नगर के प्रति कर्तव्य की गहरी भावना का विकास हो। प्राचीन युग में यूनानी संस्कृति का प्रत्येक पहलू – कलाओं से राजनीति और खेल तक – सार्वजनिक सेवा में व्यक्तिगत शक्तियों के विकास के प्रति समर्पित था।

प्राचीन काल में यूनान में शिक्षा की एक अवधारणा उत्कृष्टता थी – जीवन के सभी पहलुओं में उत्तमता और उत्कृष्टता। इस प्रकार समग्र रूप में शिक्षा आत्म–विकास की एक प्रक्रिया का गठन करती है, और यह आत्म–विकास अंततः नागरिक का विकास

ही है। तात्पर्य यह है कि एक अच्छा नागरिक न केवल राजनीति में अपना विकास करता है, बल्कि नगर की गतिविधियों में भागीदारी कर वह उसके विकास में भी सहयोग करता है।

टिप्पणी

उस युग में सभी लोग शिक्षक होते थे और शिक्षा का उद्देश्य एक बेहतर, प्रभावशाली, शक्तिशाली और यथासंभव सद्गुणी समुदाय का विकास करना था। इस प्रकार राजनीति केवल समुदाय के मामलों पर नियंत्रण–नियमन तक सीमित नहीं थी, बल्कि नागरिकों के आंतरिक और बाहरी जीवन को व्यवस्थित बनाए रखने के लिए यह एक स्कूल का कार्य भी करती थी। तात्पर्य यह है कि एथेंस की प्रजातांत्रिक राजनीति की प्रथा केवल समुदाय या समाज की उत्तम नीतियों के विकास का माध्यम नहीं बल्कि अपने नागरिकों की बौद्धिक, नैतिक और नागरिक शिक्षा का एक 'पाठ्यक्रम' भी थी। प्लेटो के अनुसार शिक्षा ऐसी हो जो 'सच्चा नागरिक' बनने की भावना का सृजन कर सके, और नागरिक शासन करना सीखें और शासन के अधीन रहें।

धर्मनिरपेक्ष और लोकतांत्रिक विचार

प्राचीन और मध्यकालीन चिंतकों की आम धारणा थी कि उत्तम शासन और उत्तम (उत्तरदायी) नागरिकता अंतरंगता से जुड़े होते हैं, क्योंकि यदि किसी शासन के लोग उसकी सक्रियता से और सदाचारिता से सहायता न करें, तो वह भ्रष्ट हो जाएगा। अरस्तु के अनुसार, यदि किसी राज्य के लोग सदाचारी न हों और अपने राजनीतिक सदाचारों का उपयोग न करें और यदि वे एक न्यायसंगत राज्यव्यवस्था में नहीं रहें, तो वह राज्य न्याय संगत और शक्तिशाली नहीं हो सकता। नागरिक–सदाचार विशेष रूप से किसी प्रजातांत्रिक अथवा मिश्रित शासन के लिए ज़रूरी होता है, बल्कि किसी राजतंत्र अथवा कुलीनतंत्र (Oligarchy) में भी लोगों से राजनीतिक समुदाय को बनाए रखने की अपेक्षा होती है।

प्राचीन धर्मनिरपेक्ष चिंतकों को व्यापक नागरिक सदाचार पर निर्भर अच्छे शासन के गठन के मार्ग में गंभीर त्रुटियों का भान हुआ। पहली, नैतिक शिक्षा की कोई भी चुनौतीपूर्ण और सार्वजनीन प्रणाली व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अनुरूप नहीं होगी। उदाहरण के लिए, अच्छे नागरिकों के निर्माण हेतु यदि राज्य लोगों को उनके बच्चों का नामांकन सार्वजनिक स्कूलों में कराने पर जोर दे, तो इससे माता–पिता और युवाओं की व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।

दूसरी समस्या अपेक्षाकृत अधिक व्यावहारिक थी। राज्यों के शासकों या प्रजाओं में नैतिक सदाचार का कोई बहुत अच्छा साक्ष्य नहीं था। चर्च की अनिवार्य सदस्यता, राज्य से सहायता प्राप्त शिक्षा और यहां तक कि जनता की प्रताड़ना या दंड भी विश्वसनीयता से भ्रष्टाचार, देशद्रोह और समाज के लिए हानिकारक अन्य व्यक्तिगत आचरण को रोक नहीं सके।

मैडिसन के अनुसार गणराज्य का गठन यथार्थ समाज के सदाचारी लोगों के लिए होना चाहिए। उसका मानना था कि यदि लोग देवदूत होते तो शासन की कोई आवश्यकता नहीं होती। यदि देवदूत लोगों पर शासन करते तो सरकार पर न तो बाह्य और न ही आंतरिक नियंत्रण की आवश्यकता होती। किंतु न तो नागरिक और न ही शासक देवदूत होते हैं, फिर भी अच्छा शासन संभव है, यदि उस पर संविधान का नियंत्रण हो।

टिप्पणी

मैडिसन का मानना था कि किसी गणराज्य में लोगों के मत उस गणराज्य पर बाह्य नियंत्रण का कार्य करते हैं, जो सत्ता के लोगों को शासितों के प्रति उत्तरदायी बनाते हैं। किंतु, मतदान सब कुछ नहीं होता, विशेष रूप से इसलिए कि स्वयं मतदाताओं में सदाचार और विवेक की कमी हो सकती है। लोगों पर निर्भरता निस्संदेह सरकार पर नियंत्रण का कार्य करती है, किंतु अपने अनुभवों के आधार पर लोगों ने अन्य सहायक उपायों की महत्ता को महसूस किया है। कुल मिलाकर, मैडिसन के सहायक उपाय के सिद्धांत में अलग–अलग संस्थाओं में विभाजक शक्ति और एक दूसरे को जांचने का अधिकार शामिल है।

एथेंस ने प्रजातंत्र कायम किया, किंतु सुकरात, प्लेटो और अरस्तु जैसे उसके विश्वप्रसिद्ध दार्शनिक प्रजातंत्र के प्रति संदिग्ध थे। प्रजातंत्र का प्रबल आरंभिक समर्थक यदि कोई था तो वह रूसो था, जिसे प्रजातंत्र का स्वप्नद्रष्टा कहा गया। किंतु, उसे भी इस बात को लेकर संदेह था कि अच्छे लोग अच्छे नागरिक भी हो सकते हैं। रूसो की दृष्टि में एक अच्छा व्यक्ति एक स्वाभाविक मनुष्य हो सकता है, जिसमें स्वतंत्रता, अनाधीनता, समानता, सुख, सहानुभूति और स्व–प्रेम प्रकृत्या निहित होते हैं। इस प्रकार, किसी व्यक्ति के लिए समाज कुछ कर नहीं सकता, बल्कि उसे भ्रष्ट बना सकता है।

किंतु, रूसो ने माना कि समाज में जीवन अनिवार्य है, और इसीलिए समाज में और उसके साथ समुचित व्यवहार करने हेतु नागरिक शिक्षा भी अनिवार्य है। रूसो का मानना था कि लोगों को नैतिकता के साथ कार्य करते हुए यथासंभव स्वाभाविकता और सहजता बनाए रखनी चाहिए। तभी कोई व्यक्ति अपनी स्वतंत्रता बचाए रख सकता है। यदि कोई व्यक्ति अपने लिए निर्धारित उन नियमों का पालन करे – अर्थात् यदि कोई व्यक्ति स्व–शासित हो – तभी वह स्वतंत्र रह सकता है।

उत्तम (उत्तरदायी) नागरिक

उत्तम नागरिक के गुण महज राजनीतिक प्रणाली में भागीदारी के लिए आवश्यक कौशल नहीं होते। वे सदाचार के वे गुण भी होते हैं, जो किसी को भागीदारी के लिए प्रेरित करते हैं तथा उसमें भाग लेने की भावना और प्रवृत्ति का संचार करते हैं। रूसो ने स्पष्ट किया कि नागरिक उसकी आदर्श राज्यव्यवस्था में किस प्रकार 'सभाओं में भाग लेंगे'। अर्थात् नागरिकों को एक विशिष्ट प्रवृत्ति या चरित्र का प्रदर्शन करना चाहिए। किसी प्रजातांत्रिक व्यवस्था में उत्तम नागरिकता का सृजन करने वाले सदाचारी गुणों या शीलगुणों का किसी उत्तम या नैतिक व्यक्ति से संबंध भी उसी प्रकार गहरा होता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि इस गहरे संबंध का तात्पर्य 'उत्तम चरित्र' से है।

सदाचार अथवा शील के इन गुणों के अभाव – अर्थात् उत्तम चरित्र के अभाव के कारण ही प्रजातंत्र संकट में है। रिचर्ड बतिस्तोनी प्रजातांत्रिक प्रणाली के क्षीण पड़ते जाने का कारण नागरिक शिक्षा के संकट में होने और प्रजातांत्रिक प्रणाली में भागीदारी के लिए नागरिकों को तैयार करने में शिक्षकों की असफलता को बताते हैं। उनका मानना है कि लोगों में भागीदारी के मुख्य चारित्रिक गुण, एक प्रवृत्ति दिखाई नहीं देती। प्रजातंत्र जीवित रहे इसके लिए युवाओं में उत्तम चरित्र, कौशलों, मूल्यों, सामाजिक परिपाटियों–प्रणालियों और आदर्शों का संचार करना ज़रूरी है, जो प्रजातांत्रिक राजनीति का पोषण करते हैं।

टिप्पणी

उत्तम (उत्तरदायी) लोग और उत्तम नागरिक

प्रजातंत्र की स्थिति में सुधार लाने की सिफारिश करने वालों में दो वर्ग मुख्य हैं। एक में राजनीतिक सिद्धांतकार आते हैं, जो नागरिक गणतंत्रवाद के आधुनिक रूप पर अकसर प्रकाश डालते हैं। ये लोग लोकहित के लिए भावी नागरिकों को उनके अपने हितों का त्याग करने की प्रेरणा देते हैं। इस दृष्टि में हमारे सामूहिक कल्याण और हित के जरिए समाज को स्थिरता प्रदान करने और प्रत्येक व्यक्ति की समृद्धि के संवर्धन के लिए भागीदारी ज़रूरी है।

दूसरा वर्ग प्रजातांत्रिक भागीदारी को मुख्य नहीं मानता, बल्कि उसे समग्र चरित्र शिक्षा के एक पहलू के रूप में देखता है। इस दृष्टि में सार्वजनिक स्कूलों में छात्रों को उत्तम व्यक्ति और उत्तम नागरिक बनाने के लिए उनमें चारित्रिक शीलगुणों का विकास करना आवश्यक है, ताकि उनका व्यक्तिगत आचरण अनुकरणीय हो और वे प्रजातंत्र को सुदृढ़ और सुंदर बनाने में सहयोग करें।

उक्त दोनों में से कोई भी वर्ग किसी ऐसे शब्द का प्रतिपादन नहीं करता जिसे प्रजातांत्रिक चरित्र कहा जा सके। किंतु, मनुष्य के विकास और कल्याण के लिए वे चरित्र के शीलगुणों पर बल देते हैं, जिनका संबंध प्रजातांत्रिक व्यवस्था में भागीदारी से है।

वस्तुतः चरित्र केवल कोई एक गुण नहीं होता, बल्कि विभिन्न मानसिक और नैतिक गुणों का पुंज होता है। चरित्र में 'उत्तम' गुणों का समावेश होता है, इसलिए इसकी व्याख्या में नैतिक गुणों को जोड़ना अनिवार्य नहीं है। इस प्रकार चरित्र के गुण यदि सदाचार के गुणों के पर्याय नहीं, तो उनसे जुड़े अवश्य हैं। इसलिए, किसी अच्छे व्यक्ति में, और प्रजातांत्रिक व्यवस्था के संदर्भ में किसी अच्छे नागरिक में ये गुण होने ही चाहिए।

1.3.3 संधारणीय या सतत् विकास

संधारणीय विकास की अवधारणा एक शक्तिशाली अवधारणा है, जो राष्ट्र और राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रों के कार्य करने के ढंग में क्रांति ला सकती है। किंतु, इसके बहुआयामी स्वरूप, आदर्श–केंद्रित लक्ष्यों और अस्थिर व्याख्याओं के चलते इसकी अवधारणा की कोई स्पष्ट परिभाषा करना कठिन है। वहीं, इसकी अस्पष्ट व्याख्या और संदिग्धता इसकी अवधारणा में और उलझन पैदा कर देती है।

वर्ष 1987 की ब्रंड्टलैंड रिपोर्ट में सतत् विकास या संधारणीय विकास की परिभाषा भावी पीढ़ियों की उनकी अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने की उनकी क्षमता से किसी प्रकार का समझौता किये बिना वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरा करने के रूप में की गई है। सतत् विकास के मुख्य सिद्धांत के अनुसार मानव जाति इसके सरोकार के केंद्र में होती है। इसकी व्याख्या इस रूप में की गई है – 'विकास, जो वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरा करे, किंतु इस प्रक्रिया में भावी पीढ़ियों की उनकी आवश्यकताओं को पूरा करने की उनकी क्षमता से किसी प्रकार का समझौता नहीं किया जाए। किंतु, प्रश्न उठता है कि मनुष्य की आवश्यकताओं और सतत् विकास के बीच संबंध क्या है? ब्रंड्टलैंड रिपोर्ट के अनुसार सतत् विकास

टिप्पणी

के चार आयाम हैं – समाज – मनुष्य की आवश्यकताओं को पूरा करना, पर्यावरण – पारिस्थितिकी या परितंत्र की चिरकालिक स्थिरता, संस्कृति और अर्थव्यवस्था। इसके अतिरिक्त, संधारणीय या सतत् विकास का समाज के जीवन की गुणवत्ता से सीधा और गहरा संबंध होता है। समुदाय का निर्माण करने वाली सामाजिक, पर्यावरणीय और आर्थिक गतिविधियां वर्तमान और भावी समाजों के लिए एक स्वस्थ जीवन प्रदान करती हैं।

स्थायित्व (सतता), विकास और सतत् विकास का अर्थ

सतत् या संधारणीय विकास के विवेचन के लिए स्थायित्व (सतता), विकास और सतत् विकास या संधारणीय विकास के अलग–अलग अर्थों का विवेचन आवश्यक है।

प्रकृति हमें जीवन के लिए ज़रूरी हवा, पानी, भोजन और उपयुक्त जलवायु प्रदान करती है। वहीं, यह भौतिक संसाधन भी प्रदान करती है, जो अर्थव्यवस्थाओं के निर्वाह के लिए आवश्यक होते हैं। प्रकृति आदि काल से ही पृथ्वी पर जीवन की सहायता और रक्षा करती रही है। इसे ही प्रकृति अथवा परितंत्रों या फिर पर्यावरण की संधारणीयता कहा जाता है। किंतु, हम अपनी गतिविधियों से प्राकृतिक प्रणालियों की इस संधारणीयता को क्षति पहुंचाते हैं और यदि हम ऐसा करते रहे तो समस्त पृथ्वी का अस्तित्व संकट में आ जाएगा। हमारी गतिविधियों के प्रतिकूल प्रभावों को झेलने की प्रकृति की क्षमता कम है। परिवर्तनों के फलस्वरूप प्रकृति को जो क्षति पहुंचती है उसे दूर करना और अपनी मूल अवस्था पुनः प्राप्त करना उसके लिए कठिन होता है। इस प्रकार, आज हमारे समक्ष एक चुनौती आ खड़ी हुई है, वह यह कि एक ऐसे परिवेश का निर्माण कैसे हो जिसमें हम जीना और प्रकृति की वहन क्षमता के भीतर एक सामंजस्य स्थापित किया जा सके।

संधारणीयता या सतता

संधारणीयता या सतता का अर्थ हमारी अपनी आवश्यकताओं को पूरा करना है, किंतु इस क्रम में इस बात का खास तौर पर ध्यान रखना है कि भावी पीढ़ी की उनकी अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने की उनकी क्षमता से कोई समझौता न हो। प्राकृतिक संसाधनों के अतिरिक्त, हमारे लिए आर्थिक और सामाजिक संसाधन भी आवश्यक हैं। सतता का संबंध केवल पर्यावरण से नहीं है, बल्कि इसकी ज्यादातर परिभाषाओं में सामाजिक समता और आर्थिक विकास के सरोकार को भी विशेष स्थान दिया गया है।

शब्द 'संधारणीयता' अथवा 'सतता' का उपयोग विकास की नीतियों के सांसारिक और आजीविका के संदर्भ के निरूपण के लिए भी किया जाता है। सांसारिक संदर्भ का तात्पर्य कालक्रमबद्ध परिदृश्य से है, जिसमें समाज और समुदाय अपनी सांस्कृतिक तथा आर्थिक अखंडता को बनाए रखते हैं। आजीविका संदर्भ का तात्पर्य प्रचलित मूल्यों को अक्षुण्ण बनाए रखना है, जिन्हें बाहरी आर्थिक शक्तियों से खतरा रहता है।

विकास

विकास एक जटिल और अस्पष्ट शब्द है। किंतु, सरल शब्दों में, इसकी व्याख्या किसी क्षेत्र में परिवर्तन के रूप में की जा सकती है। स्थूल रूप में विकास का अर्थ सामाजिक और आर्थिक स्थितियों में सुधार है। किंतु, विकास यथार्थतः संवृद्धि, प्रगति, सकारात्मक परिवर्तन अथवा शारीरिक, आर्थिक, पर्यावरणीय, सामाजिक और जनसांख्यिकीय घटकों

के परिवर्धन की एक प्रक्रिया है। विकास का उद्देश्य पर्यावरण के संसाधनों को अनावश्यक क्षति पहुंचाए बिना लोगों के जीवन की गुणवत्ता के स्तर में सुधार लाना और स्थानीय–क्षेत्रीय स्तर पर आय व रोज़गार के अवसरों का सृजन या विस्तार करना है।

टिप्पणी

सामान्य शब्दों में सतत् या संधारणीय विकास की परिभाषा भावी पीढ़ियों की उनकी अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने की उनकी क्षमता से किसी प्रकार का समझौता किये बिना वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरा करने के रूप में की जाती है।

संधारणीय विकास से जुड़ी मानव कल्याण की कुछ अनिवार्य विशेषताएं इस प्रकार हैं : शैक्षिक उपलब्धि, स्वास्थ्य और आयु, समाज में एकजुटता, मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य, विविधता, उत्पादकता, पर्यावरण एवं जैवविविधता, परिवार के मामलों में सहभागिता और जीवन की गुणवत्ता।

शैक्षिक उपलब्धि : सतत् विकास नीति या योजना निरक्षरता को दूर और शिक्षा के स्तर का उन्नयन करना चाहती है। शिक्षा लोगों को गुणवत्तापूर्ण जीवन जीने में सहायता करती है। शिक्षा यदि गुणवत्तापूर्ण हो, तो पढ़ाई छोड़ने वाले बच्चों की संख्या में कमी और कक्षा में छात्रों की संख्या में वृद्धि होगी। बेहतर शिक्षा आय में वृद्धि, बेहतर जीवन, मानव कल्याण के उन्नयन और परिवार में सुख–समृद्धि का अवसर प्रदान करती है।

स्वास्थ्य और आयु : संधारणीय विकास का एक लक्ष्य शिशु एवं मातृ मृत्यु दर को कम करना है। सरकारें उत्तम और गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य केंद्रों की स्थापना करती हैं, जहां प्रशिक्षणप्राप्त स्वास्थ्यकर्मी कार्य करते हैं। ये केंद्र मानव कल्याण का उन्नयन करने और शिशु एवं मातृ मृत्यु दर में कमी लाने में सहायक होते हैं।

समाज में एकजुटता : सतत् विकास का एक लक्ष्य विकास की गतिविधियों में समाज की सहभागिता को बढ़ावा देना है। समाज की सहभागिता तभी संभव हो सकती है, जब समाज में सद्भाव, समरसता और एकजुटता हो। विकास और कल्याण के लिए समाजों–समुदायों में सामाजिक एकजुटता अत्यंत ज़रूरी होती है।

मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य : समाज में मानसिक स्वास्थ्य केंद्रों की सुविधा और बीमारियों को दूर करने के प्रति सजगता सतत् विकास कार्यक्रम का एक मुख्य लक्ष्य होता है। इस प्रकार का कार्यक्रम समाज को सुखी–संपन्न रखने में सहायता करता है।

विविधता : किसी समाज में विभिन्न संस्कृतियों का होना उसकी विशिष्टता का परिचायक होता है। सतत् विकास कार्यक्रम का एक लक्ष्य संस्कृतियों के विकास और विकास तथा मानव कल्याण में संस्कृतियों के सहयोग को बढ़ावा देना है। कार्यक्रम में इस बात पर ध्यान रखा जाता है कि प्रत्येक समाज के लोग एक दूसरे की सस्कृतियों का आदर व सम्मान करें।

उत्पादकता : ग़रीबी और असमानता को कम करने के लिए सतत् विकास कार्यक्रम में उत्पादक के संवर्धन और आय की निरंतरता पर बल दिया जाता है। उत्पादकता के संवर्धन हेतु आधारभूत संरचना का उत्तम गुणवत्तापूर्ण व संधारणीय होना आवश्यक होता है। इसके अतिरिक्त, खेती और उद्योग की उत्पादकता में वृद्धि के लिए

अक्षय ऊर्जा भी अति आवश्यक होती है। इस दिशा में सतत् विकास कार्यक्रम के प्रयास से समाज के सभी वर्गों में खुशहाली आ सकती है। खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करना और लोगों के कल्याण में वृद्धि करना उत्पादकता में वृद्धि का लक्ष्य होता है।

पर्यावरण और जैवविविधता : स्वस्थ पर्यावरण और जैवविविधता का संरक्षण मानवजाति के कल्याण और सुख–समृद्धि के लिए अति आवश्यक है। स्वस्थ पर्यावरण स्वास्थ्य और कल्याण की एक अनिवार्य आवश्यकता है। जैवविविधता एक संतुलित पर्यावरण और सतत् जीवन के लिए आवश्यक है और सतत् विकास कार्यक्रम में इसका विशेष ध्यान रखा जाता है।

गुणवत्तापूर्ण जीवन : लोगों के गुणवत्तापूर्ण जीवन को बढ़ावा देना भी संधारणीय विकास का एक मुख्य लक्ष्य है। स्वास्थ्य केंद्रों, सुरक्षित पेयजल और साफ–सफाई, रसोई और बिजली के लिए सुरक्षित ऊर्जा, सड़क, प्राथमिक शिक्षा और प्राथमिक स्वास्थ्य सेवा समाज के उपेक्षित–उपांतीय लोगों के जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि के लिए आवश्यक होते हैं।

शोधों से पता चलता है कि सतत् या संधारणीय विकास की आरंभिक अवधारणा के बाद से इसकी अवधारणा जटिल से जटिलतर होती गई है। समस्त विश्व में तेजी से हो रहे विकास के फलस्वरूप एक गंभीर चिंता पनप आई है कि प्राकृतिक पर्यावरण अनवरत हो रहे परिवर्तनों का सामना किस प्रकार कर पाएगा। इस विकास के चलते पर्यावरण का अत्यधिक क्षरण हुआ है और हो रहा है। किंतु, समाज की संवृद्धि और सफलता विकास की विभिन्न गतिविधियों पर निर्भर करती है।

एक बेहतर राष्ट्र के निर्माण के लिए समाज की आवश्यकताओं को पूरा करना आवश्यक होता है, किंतु इसके मार्ग में एक गंभीर चुनौती आती है और वह है प्रकृति के सभी तंत्रों का क्षरण होने से रक्षा करना। किंतु, विकास के विभिन्न पहलुओं में, इसकी प्रक्रियाएं और गतिविधियां प्राकृतिक पर्यावरण को वहन करने की क्षमता की प्राकृतिक सीमाओं को पार कर जाती हैं।

इतिहास में झांकें तो पाएंगे कि औद्योगिक क्रांति के कारण ज़मीन का उपयोग द्रुत गति से होने लगा। औद्योगिक गतिविधियों के लिए नई तकनीकी के विकास में सहायता हेतु, सड़क, रेल, कारखानों, मकानों जैसी आधारभूत सुविधाओं के लिए क्षेत्रों का निर्माण होने लगा। इस प्रकार, नए नगरों का उदय हुआ और औद्योगिक क्रांति के चलते शहरी विकास की मांग जोर पकड़ने लगी। कार्य के अवसरों की तलाश में भारी संख्या में लोग बड़े नगरों में जाने लगे और इस आप्रवासन के चलते ज़मीन की मांग बढ़ने लगी। इन सभी गतिविधियों ने पर्यावरण में बड़े पैमाने पर प्रदूषण को जन्म दिया। विकास की प्रक्रियाओं के कारण न केवल प्राकृतिक पर्यावरण के साथ बल्कि समस्त समाज के साथ संघर्ष होता है। औद्योगिक विकास के कारण मनुष्य की आवश्यकताएं निरंतर बढ़ रही हैं। ऐसे में संधारणीय या स्थायी विकास के लक्ष्य की पूर्ति हेतु विकास और मनुष्य की आवश्यकताओं के बीच संतुलन ज़रूरी है।

विकास और पर्यावरण

आज पर्यावरण को अनेकानेक समस्याओं और चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। पर्यावरण का दुरुपयोग और उसके साथ दुर्व्यवहार के कारण उसका क्षरण

निरंतर जारी है। संस्कृतियों, आर्थिक गतिविधियों और आजीविका की प्रणालियों में परिवर्तन हो रहे हैं।

टिप्पणी

वर्तमान और भावी पीढ़ियों के जीवन की गुणवत्ता के लिए सतत् विकास की प्रक्रिया में सुधार आवश्यक है।

आज संपूर्ण विश्व, विशेष रूप से विकासशील देश आर्थिक और पर्यावरणीय संकट के दौर से गुजर रहे हैं। नीति निर्धारकों के लिए एक तरफ बढ़ती आबादी और दूसरी तरफ घटते संसाधनों की मौजूदा स्थिति में प्रभावशाली ढंग से कार्य करने के कार्यक्रमों का गठन कठिन हो चला है।

पर्यावरण का क्षरण अर्थव्यवस्था को कमज़ोर करता है, फलतः समाज के तानेबाने में दरार आती है। मानव इतिहास के पन्ने ऐसे दृष्टांतों से भरे पड़े हैं और अतीत की सभ्यताएं इसके प्रमाण हैं।

पर्यावरण और सामाजिक–आर्थिक क्षरण के बीच संबंध की अनदेखी नहीं की जा सकती। विशेषतः इसलिए कि अतीत में जो कुछ सदियों में घटा उससे कहीं अधिक पिछले कुछ दशकों में घटा है। आज इस दुश्चक्र को समझने और इसे सफलतापूर्वक तोड़ने की क्षमता बहुत कम लोगों में है। हमारे अपने ही देश में आजादी के बाद से हमारी अभिवृत्ति पर विकासात्मक संवृद्धि छाई रही और हम प्रदूषण नियंत्रण से कोसों दूर हैं।

संधारणीय जीवन का अर्थ यह समझना है कि हमारे रहन–सहन के विकल्पों का हमारे आसपास के परिवेश पर क्या प्रभाव पड़ता है। वहीं इसका तात्पर्य प्रत्येक व्यक्ति के लिए बेहतर और सुखमय जीवन के मार्ग का पता लगाना भी है। संधारणीयता के प्रति एक 'लोक दृष्टि' नई और समयानुकूल है और अवसर अपार हैं। सतत् जीवन और जीवनशैलियों का पहली बार उल्लेख संधारणीय विकास लक्ष्य (Sustainable Development Goals) में हुआ। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम इसका पता लगाने का प्रयास कर रहा है कि संधारणीय या सतत् जीवनशैलियां क्या हैं और स्थायित्व या सतता के लिए निर्णय–निर्धारण का बेहतर उपयोग किस प्रकार किया जा सकता है। सरकारें और कंपनियां किस प्रकार परिवर्तन की सहायता और मूल्यांकन कर सकती हैं।

मानवीय गतिविधियों के चलते पर्यावरण में हो रहे परिवर्तन और सभ्यता के नकारात्मक प्रभाव आज प्रत्यक्ष दिखाई दे रहे हैं और लोग उनकी आलोचना भी कर रहे हैं। इन परिवर्तनों के प्रभाव अत्यंत गंभीर हैं। यदि लोग अपनी आदतों में सुधार नहीं लाते, तो इसका प्रतिकूल प्रभाव हमारे परितंत्रों पर पड़ेगा और ऐसे पर्यावरण में जीना दूभर हो जाएगा।

आज समाज के मुख्य सरोकारों में से एक मानव सभ्यता के फलस्वरूप समस्त पृथ्वी के तंत्र पर पड़ने वाला प्रतिकूल प्रभाव है, जिसे अस्थिर साम्यावस्था में एक जटिल और संवेदनशील विषय के रूप में देखा जाता है। एक तरफ जहां बहुत से लोग वैश्विक तापन (Global Warming) को लेकर चिंतित हैं, तो वहीं दूसरी तरफ बहुत से लोगों को इस बात का पता ही नहीं है कि मानवीय गतिविधि पहले से कहीं ज्यादा प्रबल हो चली है और इसका प्रभाव इतना खतरनाक हो सकता है जितना हम सोच भी नहीं सकते। इक्कीसवीं शताब्दी के आरंभ से अलग–अलग विधाओं के वैज्ञानिक हमारे नकारत्मक प्रभावों को रेखांकित करते हुए पिछली शताब्दियों के विशिष्ट नामकरण का सुझाव देने

लगे हैं, जिसे लेकर विद्वानों में विवाद छिड़ा हुआ है। मानवजाति के समक्ष एक गंभीर चुनौती 'स्थिर पृथ्वी' के एक मार्ग का निर्माण करना है जो पृथ्वी के तंत्र को उसकी मौजूदा जलवायवीय आपदा की स्थिति से मुक्ति दिलाए। पृथ्वी के तंत्र में ऐसे मार्ग का निर्माण और रखरखाव मनुष्य के प्रबंधन के बिना संभव नहीं है। इस गतिशील तंत्र में सक्रिय भागीदारी के लिए उद्देश्यपूर्ण और स्थायी कार्यवाही ज़रूरी है। फिर विद्वानों ने एक पृथ्वी सीमा का सिद्धांत दिया है। पृथ्वी की स्थिरता के समक्ष संकट पैदा करने वाली उन समस्याओं के समाधान के लिए रॉबर्ट जैसे कुछ विद्वान इस कल्पना के आधार पर पृथ्वी सीमा के दृष्टिकोण को अपनाने का सुझाव देते हैं, जिन्हें, उनके अनुसार, विकास की पहली परिभाषा, जिसमें भावी पीढ़ी की क्षमता से किसी प्रकार का समझौता नहीं करने की बात कही गई है, के अनुरूप समझी जाने वाली परंपरागत सतत् विकास की प्रक्रिया के उपयोग से दूर नहीं किया जा सकता।

1.3.4 जीवनशैली और सतत् विकास

जीवनशैली, जिसे आम तौर पर किसी व्यक्ति या समूह के निजी और सामाजिक आचरण की विशेषता के विशिष्ट प्रतिमान के रूप में देखा जाता है, को लेकर विद्वानों, राजनीतिज्ञों, समाचार माध्यमों और व्यवसाय जगत के लोगों में चर्चा–परिचर्चाएं व तर्क–वितर्क निरंतर होते रहते हैं। स्वाभाविक है कि इन तर्क–वितर्कों का केंद्रीय विषय नानाविध आयाम और संदर्भ होते हैं, क्योंकि जिन आचरणों पर चर्चा होती है, उनमें किसी व्यक्ति और समुदाय के बीच संबंध, उपभोक्ता के आचरण, कार्य–जीवन संतुलन समेत कार्य और अवकाश, मूल्य–मान्यताएं, नागरिक–धार्मिक क्रियाकलाप, आदि जैसे तत्व शामिल होते हैं। उपभोक्ताओं की दृष्टि से जीवनशैली को उनके निजी और व्यावसायिक जीवन, रुचियों, मूल्यों और मान्यताओं से जोड़कर देखा जाना चाहिए।

जीवनशैली की अवधारणा का उपयोग अधिकांश शोधकर्ता अपने–अपने शोधों में करते हैं। बढ़ते सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय असंतुलन के संदर्भ में, शोधकर्ता सतत् जीवन पर बल देते हैं, जो एक ऐसी जीवनशैली का संकेत देता है, जो सतत् विकास के सभी सिद्धांतों का सख्ती से पालन करती हो।

सतत् जीवनशैली इसी अवधारणा के अनुरूप है। इसे एक 'उत्तम या उत्तरदायी जीवनशैली' भी कहा जाता है, जिसकी सुस्पष्ट परिभाषा करना कठिन है, और व्याख्या करने का रंचमात्र प्रयास भी शोध के अभिकल्पन और प्रकल्पन की प्रक्रिया को सीमित कर सकता है। ऐसे में इसके लिए एक अपेक्षाकृत अधिक अनुकूल उपागम की ज़रूरत होती है। सतत् जीवनशैली का संबंध किसी व्यक्ति के क्रमागत, परोपकारी और सतर्क आचरणों से होता है, जो समाज, अर्थव्यवस्था और पर्यावरण से सद्भाव रखता है, जो विभिन्न पर्यावरणीय और स्वास्थ्य से संबद्ध कार्यकलापों में दिखाई देता है – 'पृथ्वी की सीमाओं के भीतर रहने' के लिए।

शोधकर्ताओं का मानना है कि इन कार्यप्रणालियों में ऊर्जा एवं जल संरक्षण, कूड़ा परिष्करण, 'हरित' उपभोग और यात्रा व पर्यटन से जुड़े कार्यकलापों समेत अनेकानेक गतिविधियां आती हैं। देव्यूस्त और वान वॉल्सेम सतत् जीवनशैली की व्याख्या इस प्रकार करते हैं – ''उन सभी अभ्यासों–आदतों का योग, जिनकी समग्र पहचान किसी मनुष्य की विशिष्ट 'जीवनशैली' के रूप में की जा सकती है, जो जीवन की मूलभूत गुणवत्ता सुनिश्चित करती है, जिसे कोई समुदाय विशेष अनंत काल तक बनाए रखता

है और इसीलिए विचाराधीन परितंत्र क्षेत्र की वहन क्षमता के भीतर रहता है।'' उन्होंने यह टिप्पणी की कि पर्यावरण पर मानव जीवन के प्रभावों को कम करना कुछ लोगों के लिए समस्याप्रद हो सकता है परन्तु, फिर भी वे जीवन की इस मूलभूत गुणवत्ता को बनाए रखते हैं।

सतत् जीवनशैलियों को प्रभावित करने वाले कारक

सतत् जीवनशैली को प्रभावित करने वाले मुख्य कारकों का दो वर्गों में वर्गीकरण किया गया है – प्रेरक और अभिप्रेरक। उपभोक्ताओं की दृष्टि से, निजी आवश्यकताओं और आकांक्षाओं, सामाजिक स्थिति और मानसिक/व्यक्तिगत शीलगुणों समेत उनकी अभिवृत्तियों से जुड़े कारक (प्रेरक कारक) और माध्यम मूल्यों, ज्ञान, चेतना, सामाजिक मानदंड तथा समकक्ष (अभिप्रेरक कारक) सर्वाधिक महत्वपूर्ण होते हैं। उपयुक्त अभिवृत्ति का तात्पर्य सकारात्मक मूल्यों के एक विन्यास से है, जो सतत् रूप से कार्य करते रहने की एक प्रवृत्ति को मार्ग दिखाते हैं। आज उपभोक्ताओं के लिए उनकी जीवनशैली और उपभोग से जुड़ी कोई चेतना मिलना प्रायः असंभव नहीं है, क्योंकि आजकल संधारणीयता (स्थिरता/सतता) को भी एक मूल्य माना जाता है।

वस्तुतः, विभिन्न कारकों के चलते जीवन का निर्बाध प्रवाह कठिन है। इनमें से कुछ कारकों की तो अभी पहचान भी नहीं हो पाई है। यह उन लोगों के लिए कुछ अधिक आसान हो सकता है, जैसे उन लोगों के लिए जो, किसी पर्यावरण–समृद्ध गांव में रहते हों, जहां उनके अनुभवों और अभिप्रेरण के कारण उनकी सतत् जीवनशैली सरल होती है। किसी भी अन्य जीवनशैली की तुलना में किसी सतत् जीवनशैली के लिए उपभोक्ताओं की अतिरिक्त प्रतिबद्धता की आवश्यकता निश्चय ही अधिक होती है – विशेष रूप से वरिष्ठ नागरिकों, शारीरिक रूप से निशक्तों और एकाकी जीवन जी रहे लोगों की प्रतिबद्धता।

जीवनशैली के घटकों के संदर्भ में सतत् विकास

समाज में नानारूप असमानताओं के चलते यह आशा नहीं की जा सकती कि किसी एक जीवनशैली को अन्य लोग भी पूरी तरह से आत्मसात कर लेंगे, इसलिए सामाजिक परिवेश में भिन्नता रहेगी। हमारा दृढ़ विश्वास है कि जीवनशैलियों के प्रस्तुत घटक विकसित और विकासशील देशों के नागरिकों के लिए प्रेरणादायक सिद्ध होंगे और इन देशों में सामाजिक नीति पर केंद्रित होंगे। कुछ जीवनशैलियां सार्वजनीन होती हैं, और संभव है कि अन्य देशों के नागरिक उन्हें पहले से ही अपना चुके हों।

सतत् जीवनशैली अनेकानेक शोध–अध्ययनों का विषय रही है। ऐसी कई जीवनशैलियां हैं, जो कमोवेश सतत् विकास के रुझान के अनुरूप हैं। इन जीवनशैलियों की धारणा सामानों और उत्पादों के विवेकपूर्ण उपभोग, प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण, ऊर्जा के अक्षय स्रोतों के उपयोग, और प्रदूषणमुक्त परिवहन एवं यातायात पर केंद्रित होती है। सबसे बड़ी बात है व्यक्तिगत व सामाजिक मानवीय अपेक्षाओं को ध्यान में रखते हुए सकारात्मक अंतर्वैयक्तिक संबंधों का सृजन करना। इस प्रकार, एक सतत् जीवनशैली का सीमांकन करने वाले चिह्नित कारकों की पृष्ठभूमि में किसी उपभोक्ता और उसके आचरणों की भूमिका अहम होती है। वहीं, इस धारणा से पता चलता है कि उत्तम या उत्तरदायी उपभोक्ता कौन है। उपभोक्ता अधिक या कम उत्तरदायी हो सकते

हैं। इससे प्रतीत होता है कि यह पहलू व्यक्तिगत, राजनीतिक और बाजारी कारकों पर अत्यधिक निर्भर करता है। इन कारकों के प्रभाव और सतत् विकास के सिद्धांत सतत् जीवनशैली को समृद्ध कर सकते हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

3. सन् 1985 तक अमेरिका में श्वेत शिक्षकों का अंश कितने प्रतिशत था?

   (क) 88 प्रतिशत (ख) 90 प्रतिशत

   (ग) 92 प्रतिशत (घ) 95 प्रतिशत

4. अंतर–सांस्कृतिक सद्भाव के माध्यम से किस सकारात्मक मूल्य का सृजन होता है?

   (क) न्याय (ख) समानता व प्रेम

   (ग) घृणा (घ) संघर्ष

1.4 शांति शिक्षा के दृष्टिकोण

आधुनिक भारत का निर्माण करने में और शांति–सद्भाव बनाए रखने में जिन विचारकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उनमें स्वामी विवेकानंद, महामना मदन मोहन मालवीय, गुरुदेव रविंद्र नाथ टैगोर, महात्मा गांधी, महर्षि अरविंद, स्वामी दयानंद के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन विचारकों ने भारतीय शिक्षा को अपने विचारों से प्रभावित किया है। टैगोर ने विश्व भारती की स्थापना करके शिक्षा के क्षेत्र में एक नई विचारधारा का सूत्रपात किया। महात्मा गांधी की नवीन शिक्षा योजना राष्ट्र के लिए उनकी सर्वोत्तम देन है। इन सभी विचारकों ने राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शांति स्थापना में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

शांति हेतु दार्शनिक चिंतन– शांति शिक्षा की अवधारणा हमेशा से व्यक्ति की मानसिक और शारीरिक शांति से संबंधित रही है क्योंकि जब हमारा मन शांत होता है तभी हमें कार्य करने के लिए ऊर्जा मिलती है। प्राचीन समय में भी शांति के लिए योग एवं ध्यान की शिक्षा प्रदान की जाती थी जिससे मन के समस्त विकार नष्ट हो जाते हैं। प्राचीन समय की तुलना में वर्तमान समय में मानव मन अपेक्षाकृत अधिक अशांत है। शिक्षित व्यक्ति भी अनेक परेशानियों से घिरा हुआ है। आदर्शवादी और नैतिक मूल्यों का ह्रास हुआ है और भौतिक सुख साधनों को कमाने की मानसिकता अत्यधिक बढ़ चुकी है। प्रत्येक व्यक्ति भौतिक संपन्नता की ओर ही दौड़ लगा रहा है और ऐसी परिस्थितियों में मानव का मन पूर्णतया अशांत रहता है। आज की परिस्थितियों में शांति शिक्षा की आवश्यकता अधिक है। मानव मन की व्याकुलता और असंतोष की समाप्ति के लिए शांति शिक्षा की अवधारणा का उदय हुआ है। समाज में व्याप्त कलह और विवादों की समाप्ति के लिए शांति शिक्षा संबंधी गतिविधियों को विद्यालय में विशेष स्थान दिए जाने की आवश्यकता है जिससे आरंभ से ही छात्रों में नैतिक मूल्यों का विकास किया जा सके और शांति युक्त समाज की स्थापना के लिए उनके योगदान को स्थापित किया जा सके।

1.4.1 शांति के विभिन्न सिद्धांतों की मुख्य विशेषताएं : गांधी, अरविंदो, विवेकानंद, टैगोर और दलाई लामा

टिप्पणी

हमारे प्राचीन ग्रंथ, साहित्य और विद्वान हमेशा से ही शांति और अहिंसा के समर्थक रहे हैं। किसी भी व्यक्ति या प्राणी को कष्ट नहीं पहुंचना चाहिए। वैदिक एवं गांधीवादी साहित्य शांति प्राप्ति के लिए प्रमुख रूप से जाने जाते हैं।

वैदिक काल से ही धर्म का वास्तविक मूल्य नैतिकता और मानवता का समावेश रहा है। ऐसा व्यक्ति ही मर्यादित आचरण कर सकता है और अपने आप में व्यापक सोच रखता है। वैदिक काल को आदर्शवादिता का युग माना जाता है। वैदिक काल में धर्म अर्थ, काम एवं मोक्ष का स्पष्ट वर्णन मिलता है। अतः प्रत्येक व्यक्ति के लिए कर्म करना आवश्यक है। वैदिक साहित्य में मानव के कार्य व्यवहार के प्रत्येक पक्ष पर स्पष्ट विचार हैं। इससे संघर्ष की स्थिति उत्पन्न नहीं होती थी। वैदिक साहित्य में शांति की अवधारणा को स्पष्ट किया गया है।

- **गांधी जी और उनके शांति शिक्षा पर विचार**

गांधीजी एक अहिंसा प्रेमी थे। उनका जीवन दर्शन, शांति के लिए समर्पित था। गांधी जी का मत था कि सत्य, अहिंसा, सेवा, निर्भीकता और मानवता, आदि जीवन के ऐसे उद्देश्य हैं जिनसे मानव मात्र का कल्याण किया जा सकता है। इस प्रकार हम गांधीजी को अतीत और भविष्य की कड़ी के रूप में देखते हैं। उन्होंने अतीत के साथ समय का समन्वय व भावी समय के उचित निर्माण की नवशक्ति हम भारतीयों को ही नहीं अपितु संपूर्ण विश्व को प्रदान की। इसलिए उन्हें नए युग के जनक के रूप में देखा और जाना जाता है। शांति के लिए शिक्षा की अवधारणा कोई नई अवधारणा नहीं है। संसार के सभी धर्म और दर्शन मानव को शांति की शिक्षा देते आ रहे हैं। इसी संदर्भ में गांधीजी ने भी शांति स्थापना के लिए अपने विचार व्यक्त किए और उन्हें अपनाने पर बल दिया।

ईश्वर– गांधीजी के अनुसार ईश्वर एक सर्वोच्च, निराकार एवं आध्यात्मिक शक्ति है जो इस समस्त सृष्टि को नियंत्रित करती है। उन्हें ईश्वर पर अटल विश्वास था।उनका कहना था कि हम सब अलग–अलग शरीर धारण करते हैं परंतु सब में आत्मा एक ही है और वह आत्मा परमात्मा का ही अंश है। उसे कोई राम, कोई रहीम, कोई अल्लाह और कोई ईसा कहता है। उनका मानना था कि जिस प्रकार सूर्य की किरणें अनगिनत हैं परंतु उन सब का स्रोत एक ही सूर्य है। इसी प्रकार संसार में विभिन्नता होते हुए भी उनका रचयिता एक ही है।

सत्य– गांधीजी सत्य और अहिंसा के पुजारी थे। वह सत्य को सार्वभौमिक और परम सत्ता के रूप में स्वीकार करते थे। उनके अनुसार सत्य ही ब्रह्म है। उनका संपूर्ण जीवन सत्य के लिए एक प्रयोग था। वे मानते थे कि सत्य केवल वाणी का ही विषय नहीं है अपितु इसे हमें विस्तृत अर्थ में ग्रहण करना चाहिए और विचार, भाषण तथा कार्य में भी सत्यता का निर्वाह करना चाहिए। उनके अनुसार सत्य हमारे जीवन का प्राण है और सत्य ही मानवीय गुणों एवं विशिष्टताओं का प्रमुख आधार है। जब कोई सत्य शब्द बोला जाता है, सत्य कार्य किया जाता है और जब सत्य का अनुभव किया जाता है तब हम ईश्वर के अस्तित्व का भी अनुभव करते हैं। इस प्रकार गांधी जी सत्य और ईश्वर को एक ही मानते हैं। उनका मानना था कि यदि ईश्वर है, तो सत्य भी है। गांधी

टिप्पणी

जी ने सत्य को मोक्ष माना। ऐसा ही कथन बाइबिल में भी मिलता है– "तुम सत्य को जान लो और सत्य तुम्हें मुक्ति प्रदान करेगा।" गांधीजी का मानना था कि व्यक्ति के विचार में,भाषण में एवं कार्य में सत्य का होना आवश्यक है क्योंकि व्यक्ति जब सत्य का अनुसरण करता है तो वह आत्मिक शांति को प्राप्त करता है और यही शांति उसे हिंसा से दूर रहने में सहायता प्रदान करती है। अतः सत्य का प्रयोग जीवन के प्रत्येक पहलू में होना चाहिये।

अहिंसा– 'अहिंसा परमो धर्म' यह कथन सब धर्मों का मूल आधार है। सत्य एवं अहिंसा एक–दूसरे से अंतर–संबंधित माने जाते हैं क्योंकि सत्य को अहिंसा से ही समझा और जाना जा सकता है। हिंसा क्रोध एवं भय को जन्म देती है जो कि सत्य को समझने में बाधक तत्व का काम करता है। गांधीजी के अनुसार अहिंसा साधन और सत्य साध्य है। उनके अनुसार अहिंसा एक जीवंत शक्ति है और पूरा संसार ही इस शक्ति से संचालित और नियंत्रित है। गांधी जी का विचार था कि मनसा, वाचा, कर्मणा तीनों प्रकार से अहिंसा का पालन करना चाहिए। असत्य, अज्ञान, क्रोध, आदि स्थितियां अस्थायी होती हैं। विवेक एवं चेतना के जागृत होने पर वह अहिंसा को अपना लेता है। हिंसा में अमानुषिक वृत्तियां, जैसे– अहंकार, अहम्, इन्द्रिय लिप्सा, क्रोध, द्वेष, अविवेक, आदि शामिल होते हैं और हिंसा से हम किसी भी समस्या को समाप्त नहीं कर सकते हैं। अहिंसा का अर्थ बताते हुए गांधी जी ने स्वयं लिखा है– "अहिंसा प्रत्येक प्राणी के विरुद्ध द्वेष का अभाव है। यह प्रगतिशील दशा है। इसका अर्थ चेतन रूप से कष्ट भोगना है। अहिंसा अपनी सक्रिय रूप में जीवन के प्रति सद्भावना है। यह शुद्ध प्रेम है।"

निर्भयता– गांधीजी की अहिंसा नकारात्मक ना होकर सकारात्मक थी। इसके अंतर्गत निर्भयता और सत्याग्रह दो तत्व सम्मिलित थे। निर्भयता गांधी जी के जीवन दर्शन का महत्वपूर्ण तत्व है। गांधीजी का विश्वास था कि बिना निर्भयता के सत्य और अहिंसा का पालन करना असंभव है। इस दृष्टि से कायर व्यक्ति सत्य और अहिंसा के सिद्धांतों का पालन नहीं कर सकता। निर्भीक व्यक्ति ही सत्य और अहिंसा का पालन कर सकता है। गांधीजी के अनुसार निर्भयता का अर्थ है – समस्त बाहरी भयों से मुक्ति जैसे – बीमारी, शारीरिक चोट, मृत्यु, संपत्तिहीनता, अपने प्रिय जनों की मृत्यु का भय और प्रतिष्ठा खोने का भय, आदि।

सत्याग्रह– गांधीजी के अनुसार सत्याग्रह का मूल अर्थ है सत्य का दृढ़ अवलंबन अर्थात् सत्य पर अडिग रहना या सत्य पर सदैव डटे रहना। गांधीजी के अनुसार इसका अर्थ है– असत्य एवं अन्याय का अहिंसा पूर्वक सामना करना, सबसे प्रेम पूर्वक व्यवहार करना और सबके हित के लिए स्वयं कठिनाइयों का वहन करना अर्थात् सहन करना। गांधीजी ने इसे आत्मबल का नाम दिया। गांधी जी ने कहा था कि अन्याय का विरोध करते हुए भी, अन्यायी से कोई बैर ना रखना ही, सत्याग्रह है। इस प्रकार गांधीजी का सत्याग्रह आत्म शक्ति का रूप है। सत्याग्रह का प्रमुख आधार प्रेम, नम्रता, अनुशासन, असहिष्णुता, निर्भयता, आदि हैं। उनके अनुसार सत्याग्रह के रूप निम्न हैं– असहयोग, सविनय अवज्ञा, हिजरत (प्रवचन), हड़ताल एवं अनशन। गांधी जी के शब्दों में इस सिद्धांत का अर्थ है– "विरोधी को कष्ट देकर नहीं, अपितु स्वयं अपने आप को कष्ट देकर सत्य का समर्थन कराना।"

गांधीजी मानववाद के प्रबल समर्थक थे। वह मानव सेवा को ही ईश्वर की पूजा मानते थे। वे "जियो और जीने दो"के समर्थक थे। उनका मानना था कि मानव सभ्यता के अस्तित्व का आधार स्वार्थ एवं भय नहीं है वरन् त्याग, प्रेम, संतोष और क्षमा है। उनका मानना था कि संतोष से ही सुख व शांति को प्राप्त किया जा सकता है। गांधीजी ने क्षमा को वीरों का आभूषण माना था। गांधीजी समानता, सादगी, सामाजिक न्याय, निष्पक्षता एवं सकारात्मकता के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने अस्पृश्यता जैसी सामाजिक कुरीति का घोर विरोध किया। वह राम–राज्य के समर्थक थे, जहां प्रत्येक व्यक्ति अपने दायित्वों का ईमानदारी से पालन करेगा और सदैव समर्पण भाव से मानवता व नैतिकता का पालन करेगा। इस प्रकार गांधी जी के विचारों में छुपी शांति की अवधारणा को हम समझ सकते हैं। उनके यही दार्शनिक विचार शांति की स्थापना में महत्वपूर्ण योगदान कर सकते है और कर रहे हैं। उनके इन्हीं विचारों का अनुसरण करके विश्व में हो रहे लड़ाई झगड़ों को समाप्त किया जा सकता है एवं शांति की स्थापना की जा सकती है एवं मानव मात्र में प्रेम, सहयोग, दया, करुणा, क्षमा,परोपकार, संतोष, संयम एवं उदारता जैसे मानवीय मूल्यों का विकास किया जा सकता है जिससे विश्व में शांति व्यवस्था कायम की जा सकती है।

गांधी जी का शिक्षा दर्शन

विश्व के अधिकांश व्यक्ति गांधी जी को एक महान राजनीतिज्ञ ही जानते हैं परंतु उन्होंने देश की राजनीतिक उन्नति की अपेक्षा सामाजिक उन्नति को अधिक आवश्यक समझा। गांधी जी का विश्वास था कि दूषित समाज में किसी आदर्श राज्य की कल्पना नहीं की जा सकती। अतः उन्होंने राजनीतिक क्रांति के साथ–साथ सामाजिक क्रांति को भी जन्म दिया, जिसमें शिक्षा का प्रमुख स्थान था। उनकी प्रारंभिक शिक्षा (बेसिक एजुकेशन) योजना उनके शिक्षा दर्शन का मूर्त रूप थी। शिक्षा का उद्देश्य भारतीय जनता के हृदय और मन को पवित्र करके एक शोषण रहित समाज की स्थापना करना था। इस दृष्टि से गांधी जी एक महान शिक्षा शास्त्री भी थे। डॉ. एम. एस. पटेल ने ठीक ही लिखा है –"ग्रीन का कथन था – पेस्टोलॉजी वर्तमान शिक्षा सिद्धांत तथा व्यवहार का प्रारंभिक बिंदु था। यह बात पाश्चात्य शिक्षा के संबंध में सही हो सकती है। गांधीजी के शिक्षा संबंधी विचारों का निष्पक्ष अध्ययन इस बात को सिद्ध करता है कि वह पूरब में शिक्षा सिद्धांत और व्यवहार के प्रारंभिक बिंदु हैं।"

शिक्षा दर्शन के आधारभूत सिद्धांत–

1. 7 से 14 वर्ष के बालकों की शिक्षा निशुल्क और अनिवार्य होनी चाहिए।
2. शिक्षा का माध्यम बालक की मातृभाषा होनी चाहिए।
3. साक्षरता को शिक्षा नहीं कहा जा सकता है।
4. शिक्षा को बालक में मानवीय गुणों का विकास करना चाहिए।
5. शिक्षा को बालक की समस्त शक्तियों का विकास उसके समुदाय के अनुसार करना चाहिए।
6. शिक्षा को बालक के शरीर, हृदय, मन और आत्मा का सामंजस्यपूर्ण विकास करना चाहिए।

टिप्पणी

7. शिक्षा लाभप्रद दस्तकारी से प्रारंभ होनी चाहिए जिससे बालक अपने आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं कर सके।
8. सभी प्रकार की शिक्षा किसी न किसी उत्पादन उद्योग के माध्यम से दी जानी चाहिए तथा इसका इस उद्योग से सह संबंध स्थापित किया जाना चाहिए।
9. सभी विषयों की शिक्षा किसी स्थानीय माध्यम के द्वारा दी जानी चाहिए।
10. शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिसे प्राप्त करके बालकों को कोई न कोई रोज़गार मिल सके।
11. विद्यालय ऐसा होना चाहिए जहां बालक अनेक प्रकार के प्रयोग द्वारा नई नई खोज करता रहे।
12. शिक्षा को उपयोगी नागरिकों का निर्माण करना चाहिए।

शिक्षा का अर्थ

गांधीजी के महत्वपूर्ण आकांक्षा में से एक आकांक्षा यह थी कि भारत का प्रत्येक व्यक्ति शिक्षित हो। शिक्षित होने से उनका अभिप्राय यह नहीं था कि वह साक्षर हो। वह साक्षरता को शिक्षा नहीं मानते थे। वे इसे ज्ञान या ज्ञान का माध्यम भी नहीं मानते थे। गांधी जी का कहना था – साक्षरता न तो शिक्षा का अंत है और न ही प्रारंभ। यह केवल एक साधन है जिसके द्वारा पुरुष और स्त्री को शिक्षित किया जा सकता है। इस प्रकार शिक्षा से गांधीजी का अभिप्राय न तो साक्षरता था और न ही ज्ञान। तो फिर शिक्षा से उनका क्या अभिप्राय था? हमें इसका उत्तर उन्हीं के शब्दों में मिलता है – "शिक्षा से मेरा अभिप्राय है बालक और मनुष्य के शरीर, मस्तिष्क और आत्मा में पाए जाने वाले सर्वोत्तम गुणों का चतुर्मुखी विकास।"

शिक्षा के उद्देश्य

गांधी जी ने शिक्षा के उद्देश्यों को दो भागों में विभाजित किया है– (अ) तात्कालिक और (ब) अंतिम उद्देश्य।

(अ) तात्कालिक उद्देश्य (Immediate Aim)

1. बालक को बड़े होने पर जीविका उपार्जन करने के योग्य बनाना।
2. बालकों को अपने व्यवहार में अपनी संस्कृति को व्यक्त करने का प्रशिक्षण देना।
3. बालक की शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियों का विकास करके उसके व्यक्तित्व का सामंजस्यपूर्ण विकास करना।
4. बालक को पवित्रता प्रदान करके उसके चरित्र का निर्माण करना।
5. व्यक्ति को सब प्रकार की दासता से मुक्त करके उसकी आत्मा को उच्चतर जीवन की ओर ले जाना।

(ब) अंतिम उद्देश्य– गांधी जी ने शिक्षा के अंतिम उद्देश्य को इन शब्दों में व्यक्त किया है – "अंतिम वास्तविकता का अनुभव, ईश्वर और आत्मानुभूति का ज्ञान है।"

गांधी जी ने शिक्षा के वैयक्तिक और सामाजिक उद्देश्यों में समन्वय स्थापित किया है। यद्यपि गांधी जी ने व्यक्ति के व्यक्तित्व को ही सब प्रकार की उन्नति का आधार माना है और उसे सर्वोच्च स्थान दिया है, लेकिन उनकी मान्यता है कि व्यक्ति के वैयक्तिकता

का विकास समाज में ही संभव है। व्यक्ति का विकास और सामाजिक प्रगति दोनों अन्योन्याश्रित हैं।

टिप्पणी

एम. एस. पटेल ने वैयक्तिक और सामाजिक उद्देश्यों के संबंध में लिखा है – "गांधी जी के दर्शन का सार यह है कि वैयक्तिकता का विकास सामाजिक वातावरण में ही हो सकता है, जहां यह समान रूचियों और समान क्रियाओं पर पोषित हो सकता है। इसलिए वह चाहते हैं कि हम अपने विद्यालयों को समुदायों में बदल दें, क्योंकि समुदाय में वैयक्तिकता को कुचला नहीं जाता, वरन् सामाजिक संपर्कों और सेवा के अवसरों से विकसित किया जाता है।"

बेसिक शिक्षा

गांधीजी की भारतीय शिक्षा को सबसे बड़ी, सबसे महत्वपूर्ण और सबसे मूल्यवान देन बेसिक शिक्षा है। इसे हम बुनियादी शिक्षा और वर्धा शिक्षा योजना के नाम से भी जानते हैं। गांधी जी ने अपने जीवन दर्शन के क्षेत्र में शिक्षा प्रणाली के रूप में इसे लगभग 40 वर्षों के अनुभव, परीक्षण और प्रयोगों के बाद उतारा। यह शिक्षा योजना गांधी जी के विचारों का मूर्त रूप है।

वर्धा शिक्षा योजना– 22 – 23 अक्टूबर 1937 को वर्धा में मारवाड़ी हाई स्कूल के रजत जयंती समारोह के अवसर पर अखिल भारतीय शिक्षा सम्मेलन जिसे वर्धा शिक्षा सम्मेलन भी कहते हैं, आयोजित किया गया। इस सम्मेलन में अनेक शिक्षाशास्त्रियों और समाज सुधारकों ने भाग लिया। इसमें गांधी जी ने अपने शिक्षा संबंधी विचार प्रस्तुत किए और गंभीर विचार–विमर्श के बाद सम्मेलन में निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकार किए गए–

1. देश के संपूर्ण बालकों के लिए 7 वर्ष तक निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था की जाए।
2. शिक्षा का माध्यम मातृभाषा रखा जाए।
3. शिक्षा में एक उत्पादक उद्योग सम्मिलित किया जाए, जो स्थानीय परिस्थितियों और वातावरण के अनुकूल हो।
4. विद्यार्थियों द्वारा किए गए उत्पादन से शिक्षकों के वेतन की व्यवस्था की जाए।

ये प्रस्ताव ही वर्धा शिक्षा योजना के नाम से प्रसिद्ध हुए और इस योजना के निर्माण के साथ ही भारत में बेसिक शिक्षा का जन्म हुआ। गांधी जी की योजना को व्यवहारिक रूप देने और शिक्षा की एक विस्तृत योजना तैयार करने हेतु डॉ ज़ाकिर हुसैन की अध्यक्षता में एक समिति बनाई गई और इस समिति ने दिसंबर 1937 और 1938 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस योजना की जांच करने के लिए केंद्रीय सलाहकार बोर्ड ने सन् 1938 में श्री विजय खरे की अध्यक्षता में एक समिति बनाई।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हमारी सरकार ने बेसिक शिक्षा को राष्ट्रीय शिक्षा योजना घोषित किया।

बेसिक शिक्षा का अर्थ एवं उद्देश्य

गांधीजी के अनुसार बेसिक शिक्षा से तात्पर्य ऐसी शिक्षा से है जो बालकों को विभिन्न प्रकार की हस्तकलाओं का प्रशिक्षण देते हुए उनका शारीरिक, मानसिक, सामाजिक,

नैतिक और आध्यात्मिक विकास करने में समर्थ हो और जिससे देश में समाजवादी समाज की स्थापना हो। इसके माध्यम से नगर और ग्रामीण दोनों की जनता को सुखी और समृद्ध बनाया जा सकेगा।

टिप्पणी

बेसिक शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किए गए–

1. बालकों में नागरिकता के गुणों का विकास करना।
2. बालकों का नैतिक विकास करना।
3. बालकों का शारीरिक, मानसिक और आत्मिक विकास करना।
4. बालकों को आत्मनिर्भर बनाना।
5. सर्वोदय समाज की स्थापना करना।
6. बालकों को जीविकोपार्जन की शिक्षा देना।

बेसिक शिक्षा के आधारभूत सिद्धांत

1. **अनिवार्य एवं निशुल्क शिक्षा**– 7 से 14 वर्ष तक के बालक–बालिकाओं के लिए अनिवार्य एवं निशुल्क शिक्षा का प्रावधान किया गया।
2. **हस्तकला द्वारा शिक्षा**– बेसिक शिक्षा में किसी हस्तकला के माध्यम से शिक्षा प्रदान की जाती है और सभी विषयों को इसी हस्तकला पर आधारित करके पढ़ाया जाता है।
3. **शिक्षा का माध्यम मातृभाषा**– गांधी जी का कहना था कि शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होना चाहिए। मातृभाषा के द्वारा ही बालक अपने विचारों को ठीक प्रकार से अभिव्यक्त कर सकता है।
4. **स्वतंत्रता प्रधान शिक्षा प्रणाली**– बेसिक शिक्षा में शिक्षकों तथा विद्यार्थी दोनों को कार्य करने की पर्याप्त स्वतंत्रता दी जाती है। यहां विद्यार्थियों को उपयोगी कार्य करने, ज्ञान प्राप्त करने और अपने कार्य में पूर्ण रुचि दिखाने का अवसर प्राप्त होता है। इसमें शिक्षक को भी अधिक स्वतंत्रता प्राप्त होती है और संपूर्ण पाठ्यक्रम पर उसका अधिकार होता है।
5. **जीवन से संबंधित शिक्षा**– बेसिक शिक्षा प्रणाली में शिक्षा को बालक के जीवन से संबंधित करके प्रदान की जाती है। इसमें किसी हस्तकला का चयन किया जाता है और उसका संबंध उसके स्थानीय, प्राकृतिक और सामाजिक वातावरण से स्थापित किया जाता है।
6. **आदर्श नागरिकता का सिद्धांत**– बेसिक शिक्षा प्रणाली बालकों में आत्म संयम, आज्ञापालन, सहनशीलता, प्रेम, सहयोग, आदि नागरिक गुणों का विकास करने में सहायता करती है। उनमें कर्तव्य और अधिकारों के प्रति जागरूकता पैदा करती है।
7. **शारीरिक श्रम का महत्व**– बेसिक शिक्षा में बालक स्वयं अपने हाथों से कार्य करना सीखते हैं जिससे उनमें शारीरिक श्रम के प्रति घृणा की भावना पैदा नहीं होती और वे उसके महत्व को समझने लगते हैं।

टिप्पणी

8. **स्वावलंबी शिक्षा**– बेसिक शिक्षा के स्वावलंबी और आत्मनिर्भर होने के दो अर्थ हैं– प्रथम – यह योजना विद्यार्थियों को आत्मनिर्भरता का पाठ सिखाएगी और द्वितीय – यह योजना स्वयं आत्मनिर्भर होगी।
9. **अहिंसा का सिद्धांत**– बेसिक शिक्षा में अहिंसात्मक सिद्धांतों को शामिल किया गया है। गांधी जी ने कहा था कि यदि भारत ने हिंसा से दूर रहने की प्रतिज्ञा की है तो यह शिक्षा ही उसको प्राप्त करने का प्रमुख साधन बन सकती है।

बेसिक शिक्षा का पाठ्यक्रम

बेसिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में निम्नलिखित विषयों के शिक्षण की अनुशंसा की गई है–

1. आधारभूत शिल्प (कताई, बुनाई, काष्ठ कला, मिट्टी का काम, बागवानी, आदि
2. मातृभाषा
3. गणित
4. सामाजिक विषय (इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र)
5. सामान्य विज्ञान (जीव विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, रसायन विज्ञान, भूगर्भ विज्ञान और मानव शरीर विज्ञान)
6. चित्रकला
7. संगीत
8. स्वास्थ्य विज्ञान (स्वच्छता, व्यायाम एवं खेलकूद)
9. क्षेत्रीय भाषा (उनके लिए, जिनकी मातृभाषा हिंदी नहीं है)

हुमायूं कबीर का कथन है "राष्ट्र के लिए गांधी जी की अनेक देनों में से नयी शिक्षा का प्रयोग सबसे महान देन है। यह तरुण व्यक्तियों को सहयोग, प्रेम और सत्य के आधार पर एक समुदाय के रूप में रहने की शिक्षा देकर नए समाज के लिए नागरिकों को तैयार करने का प्रयत्न करती है।" भारतीय शिक्षा में गांधी जी की देन अत्यंत महत्वपूर्ण है। गांधी जी ने (3H) अर्थात् हाथ (Hand), हृदय (Heart), मस्तिष्क (Head) को प्रशिक्षित करने की व्यवस्था की। जिससे पूर्ण मानव को शिक्षित किया जा सके। गांधी जी की शिक्षा के उद्देश्य राष्ट्र एवं समाज की आवश्यकताओं के अनुकूल हैं। गांधीवादी शिक्षा योजना में व्यक्तिगत और सामाजिक विकास पर बल देकर, उन्होंने दोनों में संतुलन स्थापित करने का प्रयास किया।

• महायोगी श्री अरविंद जी

श्री अरविंद जी आदर्शवादी थे। वे जीवन में आध्यात्मिक साधना, योग एवं ब्रह्मचर्य को विशेष महत्व देते हुए विकास के सिद्धांत में विश्वास रखते थे। उन्होंने बताया कि विकास का लक्ष्य केवल एक ही है और वह है – संसार में व्यापक दिव्य शक्ति अथवा पूर्ण एवं अखंड चेतना को प्राप्त करना। श्री अरविंद का विश्वास था कि विकास कार्यक्रम निरंतर चलता ही रहता है और इस विकास क्रम की एक ऐसी स्थिति भी आती है जब मानव की मानसिक स्तर को प्राप्त करके स्वयं अति मानव बन जाता है। इस स्तर पर पहुंचकर मानव ज्ञान से अधिक ज्ञान तथा प्रकाश से अधिक प्रकाश की ओर

बढ़ता है। इससे उसे आश्चर्यजनक शांति और वास्तविक सुख का आनंद प्राप्त होते हुए सृष्टि के रहस्य और व्याप्त सत्यता का ज्ञान पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

टिप्पणी

श्री अरविंद वर्तमान युग के सर्वोत्कृष्ट साधक एवं भारतीय ऋषि परंपरा की उज्ज्वल कड़ी हैं। उनके विचार उपनिषदों के दर्शन के समकक्ष हैं। वह उपनिषदों के भाषाकार नहीं हैं बल्कि स्वयं उपनिषादिक सत्य के दृष्टा हैं। उनके महान ग्रंथ "लाइफ डिवाइन" में सत्य के साक्षात्कार का वर्णन है।

महर्षि अरविंद ने सार्वभौमिकता की अवधारणा को अपनी रचना "मानव एकता का आदर्श" में व्यक्त किया। उन्होंने कहा कि चाहे हम इस बात को स्वीकार करें या ना करें लेकिन यह सत्य है कि हम एक–दूसरे के घटक हैं और एक यांत्रिक तथा बाहरी आवश्यकता हमें एक दूसरे से जोड़े रखती है। जिसके आधार पर हम स्वयं को क्रमशः परिवार, कबीले, गांव जैसे समूहों में संगठित करने के लिए प्रेरित और बाध्य होते हैं। मनुष्य की प्रवृत्ति सदैव बड़े कार्यों का निर्माण करने की रही है और इसी क्रम में गांव अपने आपको राज्यों में और राज्य अपने आप को राष्ट्र में संगठित करते रहे हैं और यही प्रवृत्ति भविष्य में विश्व संघ को जन्म देगी। उनका विचार था कि यदि मानव को अपने चरम विकास का लक्ष्य प्राप्त करना है तो हमें इस बात को स्वीकार करना होगा कि संपूर्ण मानव जाति एक इकाई है। इस प्रकार महर्षि अरविंद ने संसार के सामने मानव एकता और शांति का महान आदर्श प्रस्तुत किया है।

श्री अरविंद के अनुसार, ब्रह्म संसार में है और संसार से परे भी। जिसे दर्शन में ब्रह्म कहा जाता है उसे ही धर्म में ईश्वर कहना चाहिए। ईश्वर स्रष्टा,पालनकर्ता और संहारक है। ईश्वर सृष्टि का सार, पूर्ण मुक्त,सनातन और सर्व आत्मा है। वह परम पुरुष है और ब्रह्म निरपेक्ष सत्ता है। किंतु अंततः दोनों एक ही हैं – ईश्वर प्रकट है और ब्रह्म अप्रकट है।

श्री अरविंद जी ने दिव्य जीवन के लिए योग को आवश्यक माना। दिव्य जीवन में प्रेम, सहानुभूति एवं प्रत्यक्ष पूर्ण ज्ञान कार्य करता है। सभी का लक्ष्य योग है – पूर्ण योग की क्रिया जीवात्मा के अति मानस, विश्वात्मा एवं परमात्मा में प्रवेश का साधन है। पूर्ण योग का उद्देश्य रूपांतर की सिद्धि है। श्री अरविंद के शब्दों में, "जिस योग की साधना हम करते हैं वह केवल हमारे लिए ही नहीं वरन् प्रत्युत भावना के लिए है। उसका उद्देश्य है – इस जगत में भगवान की इच्छा कार्यान्वित करना, एक आध्यात्मिक रूपांतर साधन करना और मनुष्य जाति के मनोमय, प्राणमय और अन्नमय जीवन में दिव्य प्रगति और दिव्य जीवन को उतार लाना। उनका उद्देश्य मानव सत्ता की मुक्ति और रूपांतर सिद्ध करना है।" इस योग के लिए आत्मसमर्पण, दिव्य शक्ति की क्रिया को अपने अंदर देखना और सभी वस्तुओं में भगवान के रूप को देखना आवश्यक है।

श्री अरविंद जी का योग सत्य, साक्षात्कार एवं रूपांतर की व्यवहारिक प्रणाली है। इस प्रणाली में व्यायाम, भोजन, विश्राम, आदि के अपने नियम हैं एवं मादक द्रव्यों का त्याग आवश्यक है। भोजन एवं विश्राम पर्याप्त होना चाहिए। ध्यान, प्रार्थना,स्वाध्याय और जप का उसमें स्थान है। परंतु उसका मूल मंत्र है – समर्पण अर्थात् अपने आप को भगवान के हाथों में सौंप देना, प्रधान क्रिया है। यह योग व्यक्ति और समाज के लिए नहीं बल्कि भगवान के लिए हैं और यही मार्ग, शांति के मार्ग को प्रशस्त करता है।

श्री अरविंद जी के विचारों का मूल मंत्र है – समन्वय। उनका दर्शन किसी मत या संप्रदाय की स्थापना नहीं करता, और न ही खंडन करता है। उनके दर्शन में हम सब दर्शनों का समावेश देखते हैं। यहां तक कि भौतिकवाद और नास्तिक वाद को भी उन्होंने कभी तिरस्कृत नहीं किया। ज्ञान, भक्ति, कर्म का समन्वय, निर्गुण और सगुण का समन्वय, में द्वैत और अद्वैत का समन्वय, जड़वाद और अध्यात्मवाद का समन्वय, विज्ञान और अध्यात्म का समन्वय, हम उनके संपूर्ण विचारों में यत्र–तत्र देखते हैं।

श्री अरविंद जी ने अनुभव किया था कि भारतीय एवं विश्व का दृष्टिकोण शनैः–शनैः भौतिकवादी होता जा रहा है। उन्होंने प्रचलित भौतिक शिक्षा की कड़ी आलोचना करते हुए कहा कि यह शिक्षा विदेशी है और इससे हमारी संस्कृति और परंपराओं का पोषण संभव नहीं है। हमें ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जो मस्तिष्क और आत्मा की शक्ति का निर्माण अथवा उसे जीवित कर सकें। इस दृष्टि से श्री अरविंद ने पांडिचेरी में अरविंद आश्रम खोला। जिसमें अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय की स्थापना की और नए सिद्धांतों पर आधारित करके शिक्षा को ऐसा नया रूप दिया जो बालक के स्वभावानुकूल हो, जो ब्रह्मचर्य द्वारा तप, तेज एवं विद्युत की वृद्धि से बालकों के मन में, शरीर, हृदय तथा आत्मा को सशक्त बना सके। जिससे वे राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अपना अमूल्य योगदान कर सकें और विश्व स्तर पर शांति बनाए रखने में अपना योगदान दें। डॉ आर. एस. मणि के ने ठीक ही लिखा है "अरविंद का शिक्षा दर्शन मनुष्य की समस्त शक्तियों के उत्कर्ष तथा अधिक से अधिक पूर्ण विकास के सिद्धांत पर आधारित है। शिक्षा के क्षेत्र में उनके विचार यह सिद्ध करते हैं कि श्री अरविंद हमारे देश के प्रमुख तथा प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्रियों में से एक हैं।"

- **स्वामी विवेकानंद**

स्वामी विवेकानंद भारत के महान दार्शनिक और शिक्षाविद् थे। स्वामी विवेकानंद का जीवन दर्शन मानव के लिए अत्यंत गौरवपूर्ण एवं प्रेरणादायक है। उनके अनुसार जीवन एक संघर्ष है और इस संघर्ष में केवल समर्थ की विजय होती है और असमर्थ पराजित हो जाता है। अतः विजय प्राप्त करके जीवित रहने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को जीवन की प्रत्येक चुनौती के साथ डटकर संघर्ष करना चाहिए। स्वामी जी वेदांत दर्शन में विश्वास रखते थे। उनका कहना था कि ज्ञान और प्रेम के बिना शांति और स्थायित्व नहीं हो सकता। ज्ञान के बिना प्रेम और प्रेम के बिना ज्ञान नहीं हो सकता। हमें स्थायी ज्ञान और आनंद की अनंतताओं को समझने की आवश्यकता है और यही प्राप्त करना हमारा अंतिम लक्ष्य है। आजकल के परिवेश में सभी लोग अपने धर्म में नित्य सत्य को भूलते जा रहे हैं जबकि धर्म के द्वारा ही व्यक्ति में आत्मविश्वास, आत्म श्रद्धा, आत्मत्याग, आत्मनिर्भरता, आत्मनियंत्रण, मानवता, सहयोग, प्रेम तथा विश्व बंधुत्व की भावना का विकास होता है और यही भावना शांति स्थापित करने में सहायक होती है। उनके अनुसार शिक्षा पुस्तकों से नहीं वरन् व्यवहार, आचरण और संस्कारों द्वारा दी जानी चाहिए। विवेकानंद चाहते थे कि प्रत्येक व्यक्ति उस सत्य अथवा धर्म को मालूम कर सके जो उसके अंदर छिपा है। वर्तमान समय में संपूर्ण राष्ट्रीयता तथा वसुधैव कुटुंबकम् की भावना का विकास करना चाहिए। स्वामी जी के अनुसार जो शिक्षा देशभक्ति की प्रेरणा नहीं देती वह राष्ट्रीय शिक्षा नहीं कही जा सकती। "वसुधैव कुटुंबकम" में स्वामी जी विश्वास करते थे। वे इस भावना का विकास, विश्व बंधुत्व और विश्व की शांति समर्थित शिक्षा

टिप्पणी

का विकास करना चाहते थे। उनका विश्वास था कि इसी भावना के द्वारा विद्यार्थियों के मानव मन में यह भाव जगाया जा सकता है जिससे राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय शांति को बनाए रखने में सभी लोग सहायक हो सकें। शांति शिक्षा के माध्यम से ही हम व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक और आत्मिक विकास कर सकते हैं जिससे उसके चरित्र का उचित गठन हो, मन का बल बढ़े, बुद्धि का विकास हो और मनुष्य स्वावलंबी और आत्मनिर्भर बन सकें। आज जब प्रत्येक व्यक्ति जीवन में भ्रांति और क्लेश से पीड़ित है और समस्त विश्व भ्रष्टाचार, दुराचार और अत्याचार की व्याधियों से ग्रस्त है; तब मनुष्य के जीवन को उभारने और संवारने के लिए हमें शांति शिक्षा की आवश्यकता है। हमें निश्चय ही इस बात पर चिंतन करना चाहिए कि किस तरह हमें इस स्थिति से मुक्ति मिल सकती है? शांति शिक्षा ही वह माध्यम है जिसकी सहायता से मानव को विशेष दिशा में ले जा सकते हैं। इसलिए वर्तमान परिस्थिति में स्वामी विवेकानंद के विचारों का अध्ययन अत्यन्त प्रासंगिक बन गया है। उनका मानना था कि मानव सेवा से बढ़कर अन्य कोई धर्म नहीं है। उनकी धर्म में गहरी आस्था थी। उनकी मान्यता थी कि यदि हमने आध्यात्मिकता को त्याग दिया तो उसका परिणाम अत्यंत भयंकर हो सकता है। शिकागो में आयोजित विश्व धर्म सम्मेलन के अंतिम सत्र में 27 सितंबर, 1893 को उन्होंने यह अमृत संदेश संपूर्ण मानवता को दिया – "सहायता करो, लड़ो नहीं, एकीकरण करो न कि विनाश। परस्पर सद्भाव और शांति रखो, न कि आपसी मतभेद।" स्वामी जी कहते थे कि हमें ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जिससे चरित्र का निर्माण हो स्वामी जी शिक्षा के माध्यम से लोगों का शारीरिक विकास करना चाहते थे क्योंकि जो व्यक्ति शरीर से स्वस्थ होगा वह सब कार्य करने में सक्षम है वह अपनी उन्नति कर सकता है, और दूसरों की मदद भी। वह शिक्षा द्वारा लोगों के चरित्र निर्माण के पक्ष में थे क्योंकि चरित्रवान व्यक्ति अनुशासित एवं आत्मनिर्भर होता है और विश्व में शांति बनाए रखने में सहायक होता है। स्वामी विवेकानंद ने मानव निर्माण शिक्षा की बात कही है। उनके अनुसार मानव निर्माण शिक्षा वह है जो व्यक्ति के चरित्र का निर्माण करे जिससे व्यक्ति सदैव सत्य का पालन करे, वह संवेदनशील हो और दूसरों के सुख–दुख को समझे, सभी को समान समझे और सभी के विचारों का सम्मान करे, पीड़ित व्यक्ति की पीड़ा को समझे और उनकी सहायता भी करें और उसका हृदय मानव कल्याण एवं शांति की विचार एवं भावना से परिपूर्ण हो।

स्वामी जी का मानना था कि छात्रों में ऐसे भाव भरे जाएं कि वह उसी परमात्मा की सृष्टि है और सभी मनुष्य उसी परमात्मा के पुत्र हैं। इसलिए हमें संपूर्ण मानव जाति से प्रेम करना चाहिए और बंधुत्व की भावना का पोषण करना चाहिए। इस विश्व बंधुत्व की भावना से हमारे अनेक कष्ट दूर हो सकते हैं और हम दूसरों के सुख– दुख का अनुभव कर सकते हैं। इससे दूसरों के प्रति सहानुभूति की भावना पैदा होगी और विश्व में शांति बनाए रखने के लिए सहायक होगी। इसलिए उनका मानना था कि शिक्षा के द्वारा मानव के अंतः करण में मानव प्रेम पैदा करें और विश्व बंधुत्व, चेतना और सामाजिक गुणों का पोषण करें। आज का मनुष्य जो कि आत्म केंद्रित होता जा रहा है उसे इस आत्म–केंद्रितता से निकालकर विश्व केंद्रित बनाना चाहिए। शिक्षा के द्वारा यह भावना भरी जाए कि चींटी से लेकर मानव तक में एक जैसी आत्मा है और उस में पाया जाने वाला अंतर उस परमात्मा की अभिव्यक्तियां हैं। सबकी जीवात्मा उसी परम शक्ति से प्रभावित है। स्वामी जी के अनुसार वही शिक्षा उपयोगी है जो व्यक्ति को एकत्व

का बोध कराए और यह बताए कि सभी जीवात्मा में एक ही परमात्मा की शक्ति विद्यमान है। यह ज्ञान विश्व में व्याप्त कष्टों को दूर करने में सहायक होगा और विश्व शांति में भी सहायक बनेगा।

टिप्पणी

स्वामी जी के विचारों में प्राचीन एवं आधुनिक विचारों का समन्वय है अतः वह जहां एक ओर बालक के आध्यात्मिक विकास पर बल देते हैं वहीं दूसरी ओर अलौकिक स्मृति के लिए भी तैयार करना चाहते हैं। वह किसी महान संत की भांति जहां एक ओर वसुधैव कुटुंबकम के भाव का प्रचार करते हैं तो वहीं दूसरी तरफ वे राष्ट्र को शक्तिशाली बनाने के लिए शक्ति के निर्माण और उसके संचय पर भी बल देते हैं। इस प्रकार मानव जीवन के विभिन्न पक्षों पर अपने विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने बालक की शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, व्यवसायिक तथा आध्यात्मिक विकास पर ही बल नहीं दिया अपितु जन समुदाय की शिक्षा, धार्मिक शिक्षा, स्त्री शिक्षा, आदि विभिन्न पक्षों की विस्तृत व्याख्या करते हुए मानव के चरित्र विकास पर बल दिया। स्वामी जी के शिक्षा दर्शन पर दृष्टिपात करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि वह ह्रदय से आदर्शवादी थे। उन्होंने 1. आध्यात्मिक विकास, 2. भौतिक विकास, 3. जीवन की रक्षा और 4.भोजन की समस्याओं को समझाने पर बल दिया।

डॉ आर. एस. मनी के शब्दों में – "उनके जीवन का लक्ष्य इस बात का प्रचार करना था कि लोगों में श्रद्धा और मानसिक वीर्य (साहस) का विकास हो। वह आत्मा का ज्ञान प्राप्त करे और और अपने जीवन को दूसरों की भलाई के लिए त्याग दे– यही थी उनकी इच्छा तथा आशीर्वाद।"

- **गुरुदेव रवींद्रनाथ**

गुरुदेव के जीवन दर्शन पर उनके धार्मिक, दार्शनिक और सुसंस्कृत परिवार का गहरा प्रभाव पड़ा। उन्होंने आदर्शवादी दर्शन को अपनाया और सत्यम् शिवम सुंदरम जैसे आध्यात्मिक मूल्यों में अटल विश्वास रखते हुए आध्यात्मिकता को प्राप्त करना मानव जीवन का उद्देश्य माना। गुरुदेव अद्वैतवादी दार्शनिक थे। वे संसार के समस्त प्राणियों में ईश्वर की व्याप्ति मानते थे। इसलिए उन्होंने सब प्राणियों के प्रति प्रेम और दया का भाव रखने पर बल दिया। उन्होंने कहा कि प्रकृति में मानव सर्वश्रेष्ठ है और प्रत्येक वस्तु का मापदंड मानव ही है। टैगोर परम् पुरुष में आस्था रखते थे और विश्व के सर्वोच्च शक्ति के रूप में उस महापुरुष को स्वीकार करते थे। उनके लिए परम पुरुष सत्यम्, शिवम एवं सुंदरम् का प्रतीक है। आदर्शवादी और ब्रह्मवादी होते हुए भी वे सर्वोच्च सत्ता को व्यक्तित्व प्रदान करते हैं। एक समय में वे परम सत्य को शुभ मानते हैं और दूसरे समय में वे उसे उपाध्याय एवं स्थूल मानते हैं। वे प्रेम के रहस्य को समझ कर उसकी सर्वोच्चता को स्वीकार करते हैं। सृष्टि में सामंजस्य है, तो व्यक्ति में भी सामंजस्य होना चाहिए। टैगोर मानव में आस्था रखते थे। अतः हम उन्हें उच्च कोटि का मानवतावादी कह सकते हैं। एक महाकवि होने के नाते उन्होंने संवेग एवं स्थायी भाव के दमन का परामर्श नहीं दिया वरन् व्यक्ति की सभी शक्तियों के सामंजस्य पूर्ण विकास का समर्थन किया। गुरुदेव आदर्शवादी होने के नाते ईश्वर की सत्ता को अवश्य स्वीकार करते थे परंतु उन्होंने ईश्वर को केवल सर्वोच्च मानव के रूप में स्वीकार किया तथा सृष्टि को उनकी अभिव्यक्ति के रूप में ग्रहण किया। अतः टैगोर अद्वैतवादी थे। अतः उन्होंने स्वयं

लिखा है कि" हमें ईश्वर को खोजते हुए उस सत्य को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए जो हमें इस संसार से मुक्ति दिला सके तथा अपने प्रकाश से इस संसार को प्रकाशित कर सके।"

टिप्पणी

गुरुदेव का विश्वास था कि ईश्वर एक है तथा उसने मनुष्य और प्रकृति की रचना की है। वह कहते थे कि हम उसमें (In Him) तथा उसके द्वारा (Through Him), मनुष्य–मनुष्य के बीच तथा मनुष्य–प्रकृति के बीच एकत्व की स्पष्ट झलक देखते हैं। अतः उन्होंने मनुष्य और प्रकृति के बीच सामंजस्य पर बल दिया।

टैगोर मानवतावादी थे। उन्होंने मानव को ईश्वर का रूप माना और उसकी विभिन्न शक्तियों के पूर्ण विकास का समर्थन करते हुए मानव और मानव के बीच पाए जाने वाले विभाजन अथवा मतभेद की निंदा करते हुए आपसी एकता पर बल दिया। संक्षेप में गुरुदेव मानव को सम्मान और स्वतंत्रता दिला कर उसकी आत्मा को ऊंचा उठाना चाहते थे। इसके लिए मानसिक और नैतिक प्रगति परम आवश्यक है। अतः उन्होंने मानसिक और नैतिक शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया। टैगोर केवल दार्शनिक और समाज सुधारक ही नहीं थे अपितु वे राष्ट्रवादी भी थे। वे भारत को राजनीतिक दृष्टि से स्वतंत्र कराना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने देश को आर्थिक और सामाजिक रूप से स्वावलंबी बनाने हेतु आपसी भेदभाव मिटाने तथा निर्धनता एवं अस्पृश्यता को समाप्त करने पर बल दिया।

गुरुदेव के जीवन दर्शन में मानव कल्याण को महत्वपूर्ण स्थान मिला है। वे लिखते हैं कि "इसके साथ ही मानव करुणा के प्रति भी मुझे लालसा रही और स्वाभाविक रूप से मैं अपने ढंग से अभिव्यक्ति देता रहा हूं।" टैगोर का मानवतावादी दर्शन शैक्षिक दर्शन में प्रतीत होता है। टैगोर भारतीय प्रकृतिवाद के प्रणेता कहे जाते हैं। परंतु भौतिकवादी प्रकृतिवादी लीक को छोड़कर उन्होंने आध्यात्मिक प्रकृतिवाद का आश्रय लिया। रूसो के समान उनके विचार तात्कालिक कृत्रिम सामाजिक परंपराओं के प्रति एक आक्रोश और प्रतिक्रिया देते दिखाई देते हैं। उन्होंने अपने विचारों को विश्व भारती के रूप में साकार किया। विश्व भारती का मानववाद विश्व एकता, सृजनात्मकता, कलात्मक, अभिव्यक्ति, स्वतंत्रता, सौंदर्य बोध, प्राकृतिक जीवन, आदि आदर्श भारत की शिक्षण संस्थाओं के लिए प्रकाश स्तंभ बन गए। आज भी भारत की अनेक संस्थाएं विश्व भारती के आदर्शों का अनुसरण करती हैं और उन्हें अपनाने का प्रयत्न करती हैं। टैगोर की सबसे बड़ी देन उनका समन्वयवाद है – भौतिक और आध्यात्मिक जीवन के बीच समन्वय, पूर्व–पश्चिम के बीच समन्वय आदि विचार आज विश्व भर में जोर पकड़ते जा रहे हैं। अंतर्राष्ट्रीय सद्भाव और शांति के लिए शिक्षा का विचार द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद आया। गुरुदेव ने इसका आरंभ विश्व भारती में बीसवीं सदी के आरंभ में ही कर दिया था। भारतीय शिक्षा दर्शन पर गुरुदेव की अमिट छाप आज भी दिखाई देती है।

गुरुदेव बीसवीं शताब्दी के एक महान दार्शनिक और शिक्षाविद थे। उनकी महानता इस बात में थी कि उन्होंने विदेशी राज्य द्वारा निर्धारित की गई नीरस और निष्क्रिय शिक्षा के विरोध में एक ऐसी शिक्षा दर्शन का विकास किया जिसकी भारत को आवश्यकता थी तथा जिसके द्वारा संपूर्ण मानव का विकास शांतिपूर्वक हो सकता है। इस दृष्टि से हम एच. वी. मुखर्जी के शब्दों में कह सकते हैं कि "गुरुदेव वर्तमान भारत के पुनरुत्थान के सबसे बड़े पैगंबर थे। उन्होंने देश के सम्मुख शिक्षा के सर्वोच्च आदर्शों

को स्थापित करने के लिए आजीवन संघर्ष किया उन्होंने अपनी शैक्षिक संस्थाओं में ऐसे शैक्षिक प्रयोग किए जिन्होंने उन्हें आदर्श का सजीव प्रतीक बना दिया।"

टिप्पणी

गुरुदेव अंतर्राष्ट्रीय अवबोधन (International Understanding) के समर्थक थे और वह छात्रों में अंतर्राष्ट्रीय भावना को जाग्रत करना चाहते थे। वे अपने राष्ट्र से अत्यधिक प्रेम करते थे किन्तु उनका प्रेम संकीर्ण नहीं था। वे समस्त विश्व को एक समझते थे और वे हमें इस योग्य बनाना चाहते थे कि हम विश्व नागरिकता के प्रति सम्मान का भाव रख सकें।

- **दलाई लामा**

धर्म क्या है, धर्म को किसने स्थापित किया। इसका उत्तर हमें विभिन्न धर्मों में, संप्रदायों में अलग–अलग प्राप्त होते हैं। लेकिन धर्म की राह पर हमारा मार्गदर्शन करने वाला या धर्म की शिक्षा हमें प्रदान करने वाला धर्मगुरु होता है। संसार में प्रत्येक कोने में अलग–अलग धर्म हैं और धार्मिक शिक्षा देने के लिए धर्मगुरु का होना भी आवश्यक है। वे धर्म से संबंधित उपदेशों के माध्यम से लोगों को जोड़ें रखते हैं, उन्हें धर्म का महत्व बताते हैं और इन धर्मगुरुओं के अनेक अनुयायी होते हैं। आज के समय हम ऐसे एक धर्मगुरु या धार्मिक लहर की बात कर रहे हैं जिन्हें 'लामा' गुरु कहा जाता है। लामा तिब्बत के बौद्ध धर्म के आध्यात्मिक नेता या गुरु को कहा जाता है। तिब्बती मान्यताओं के अनुसार लामा शब्द का प्रयोग ऐसे व्यक्ति के लिए किया जाता है जो सर्वश्रेष्ठ हो।

दलाई लामा बौद्ध गुरु कहलाते हैं। बौद्ध धर्म के प्रवर्तक गौतम बुद्ध थे ईसा पूर्व छठी शताब्दी में कपिलवस्तु नामक स्थान पर इनका जन्म हुआ था। युवावस्था में ही परिवार को छोड़कर इन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया था। जरा–मरण के दृश्यों को देखने से इनके मन में यह विश्वास पैदा हुआ कि संसार में केवल दुख ही दुख है। अतः दुख से मुक्ति पाने के लिए संसार का त्याग कर इन्होंने दुखों के मूल कारणों को जानने का अथक प्रयास किया। और अंत में बोधित्व (पूर्ण ज्ञान) प्राप्त करके बुद्ध कहलाए। कालांतर में महात्मा बुद्ध के अनुयायी कई संप्रदायों में विभक्त हो गए। और धार्मिक मतभेद के कारण बौद्ध धर्म की दो प्रधान शाखाएं बनी जो हीनयान और महायान के नाम से प्रसिद्ध हैं।

तिब्बती बौद्ध धर्म बौद्ध धर्म की महायान शाखा की एक उप शाखा है जो तिब्बत, मंगोलिया, भूटान, उत्तर नेपाल, उत्तर भारत के लद्दाख, अरुणाचल प्रदेश, लाहौल – स्फीति जिले और सिक्किम क्षेत्रों, रूस के कालमिकिया, तूवा और पूर्वोत्तर चीन में प्रचलित है। तिब्बती इस समुदाय की धार्मिक भाषा है और इसके अधिकतर धर्म ग्रंथ तिब्बती व संस्कृत में लिखे हुए हैं।

दलाई लामा एक मंगोलियाई पदवी है जिसका अर्थ होता है – ज्ञान का महासागर। दलाई लामा के वंशज करुणा, अवलोकितेश्वर बुद्ध के गुणों का साक्षात रूप माने जाते हैं। बोधिसत्व ऐसे ज्ञानी लोग होते हैं जिन्होंने अपने निर्वाण को टाल दिया हो और मानवता की रक्षा के लिए पुनर्जन्म लेने का निर्णय लिया हो। उन्हें सम्मान से परमपावन भी कहा जाता है।

टिप्पणी

तिब्बती भाषा में लामा को– बला–मा कहा जाता है जिसका अर्थ है – श्रेष्ठतम् व्यक्ति। लामा शब्द साधना में विभिन्न उपलब्धियां प्राप्त कर चुके बौद्ध भिक्षुओं को प्रदान किया जाता है लेकिन उनका स्थान दलाई लामा से नीचे ही आंका जाता है।

वर्तमान समय में 14वें दलाई लामा तेनजिन ज्ञात्स तिब्बत के राष्ट्राध्यक्ष और आध्यात्मिक गुरु हैं। उनका जन्म 6 जुलाई 1935 को उत्तर पूर्वी तिब्बत के तार किस क्षेत्र में रहने वाले ओमान परिवार में हुआ था। 2 वर्ष की अवस्था में बालक लहमो घटक की पहचान तेरी में दलाई लामा चुपके ज्ञात्सो के अवतार में की गई। परम पावन ने अपनी भारतीय शिक्षा 6 वर्ष की अवस्था में प्रारंभ की। 23 वर्ष की अवस्था में उन्होंने अपनी फाइनल परीक्षा पास की और उन्हें बौद्ध दर्शन में पीएचडी की उपाधि प्रदान की गई।

तिब्बती बौद्ध धर्म की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनमें जाति–धर्म, छुआछूत जैसी भावनाएं नहीं हैं और न ही वहां की महिलाओं में पर्दा प्रथा जैसी कोई कुरीति है। क्योंकि बौद्ध धर्म समानता और स्वतंत्रता का पक्षधर है और इसी आधार पर विश्व शांति की धारणा का पोषण करता है और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शांति प्रयासों पर अपना योगदान करता रहा है।

दलाई लामा का शांति संबंधित प्रमुख संदेश निम्नलिखित है– "आज के समय की चुनौती का सामना करने के लिए मनुष्य को सार्वभौमिक उत्तरदायित्व की व्यापक भावना का विकास करना चाहिए। हम सब को यह सीखने की ज़रूरत है कि हम न केवल अपने लिए कार्य करें बल्कि पूरी मानवता के लाभ के लिए कार्य करें। मानव अस्तित्व की वास्तविक पूंजी 'सार्वभौमिक उत्तरदायित्व' ही है। यह विश्व शांति, प्राकृतिक संसाधनों के समवितरण और भविष्य की पीढ़ी के हितों के लिए पर्यावरण की उचित देखभाल का सबसे अच्छा आधार है।"

अंततः यह कहा जा सकता है कि जिस समाज में व्यक्तियों में प्रेम, सहयोग, उदारता एवं परोपकार जैसे सामाजिक मूल्यों का समावेश पाया जाता है, उस समाज के व्यक्तियों का व्यक्तित्व सामाजिक मूल्यों से संपन्न होता है। और जिस समाज में इस प्रकार के व्यक्ति और ऐसे व्यक्तित्व वाले नागरिकों की अधिकता होती है उस समाज में सर्वत्र शांति की स्थिति प्रायः बनी रहती है क्योंकि हमारे यही सामाजिक और नैतिक मूल्य समाज में शांति बनाए रखने में सहायक होते हैं और समाज को नवीन दिशा प्रदान करने वाले होते हैं।

1.4.2 राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पहल

आज के समय की सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता है– अंतर्राष्ट्रीय सद्भावना। अंतर्राष्ट्रीय सद्भावना या अंतर्राष्ट्रीयता की भावना, विश्व मैत्री और विश्व बंधुत्व की भावनाओं पर आधारित है। मानव मात्र का कल्याण हो, प्राणी मात्र पर समान दृष्टि रहे, विश्व भर में राष्ट्रों की पारस्परिक मित्रता हो और उनमें भाईचारे का नाता हो, समस्त वसुधा कुटुंब के समान प्रतीत हो, अंतर्राष्ट्रीयता इन्हीं श्रेष्ठ विचारों पर निर्भर करती है। वसुधैव कुटुंबकम्, 'आत्म सर्वभूतेषु' एवं महात्मा गांधी द्वारा दिए गए अहिंसा और विश्व मैत्री के अमर संदेश हमें इसी राष्ट्रीयता का पाठ पढ़ाते हैं। वर्तमान समय में अंतर्राष्ट्रीय सद्भावना और शांति की अत्यधिक आवश्यकता है। आज के समय में हम विश्व में

अनेक प्रकार के अराजकता, आतंकवाद और हिंसा को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में महसूस कर रहे हैं। आज की सबसे बड़ी आवश्यकता अंतर्राष्ट्रीय सद्भावना, शांति और अंतर्राष्ट्रीयता की है। विश्व में इस अंतर्राष्ट्रीयता की भावना को बनाए रखने के लिए विशेष प्रयास की आवश्यकता है। अंतर्राष्ट्रीयता को परिभाषित करते हुए गोल्ड स्मिथ ने कहा है कि "अंतर्राष्ट्रीयता एक भावना है जो व्यक्ति को बताती है कि वह अपने राज्य का ही सदस्य नहीं है वरन् विश्व का नागरिक भी है।"

डॉ वाल्टर एच.सी. लेबज के अनुसार— "अंतर्राष्ट्रीय भावना इस ओर ध्यान दिए बिना कि व्यक्ति किस राष्ट्रीय संस्कृति के हैं, एक दूसरे के प्रति सब जगह उनके व्यवहार का आलोचनात्मक और निष्पक्ष रूप से निरीक्षण करने और आंकने की योग्यता है।"

वर्तमान समय में राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शांति बनाए रखने के लिए हमें राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय भावना और सद्भावना की अत्यधिक आवश्यकता है। आज विश्व की संकीर्ण मानसिकता के कारण दूसरे राष्ट्रों के लिए अनेक समस्याएं उत्पन्न किए जा रहे हैं। सकीर्ण राष्ट्रीयता की भावना आज के समय में घातक बन गई है क्योंकि अंधी और सनकी राष्ट्रीयकरण युद्ध की जननी होती है, अशांति को आश्रय देती है, मानव मात्र में भेद करती है और उन्हें एक—दूसरे से भिन्न कर देती है।

अन्तर्राष्ट्रीय भावना के लिए शिक्षा की आवश्यकता

आज का युग अंतर्राष्ट्रीयता का युग है। आज विश्व—बंधुत्व और विश्व मैत्री एंव शांति की भावना जितनी आवश्यक है, उतनी शायद पहले कभी नहीं थी। इसका कारण यह है कि पहले जीवन इतना जटिल नहीं था जितना आज है। पहले मनुष्य इतना स्वार्थी नहीं था जितना आज है; पहले राष्ट्र इतने अंधे नहीं थे जितने आज है; पहले राष्ट्र की परिधि में घिर कर मानव जी सकता था, अपने ह्रदय को व्यापक और विशाल बना सकता था, लेकिन आज वैज्ञानिक अनुसंधानों और वायुयान, जलयान, रेडियो बेतार—के—तार आदि के अविष्कारों के कारण सभ्यता का रूप बदल गया है, युग की परिस्थितियां बदल गयी हैं।

आज मानव अपने राष्ट्र के सीमित दायरे में सुख, संतोष और शांति से जीवन व्यतीत करना असंभव पाता है। आज किसी राष्ट्र में घटने वाली घटना विश्व भर को प्रभावित करती है। इसके किसी कोने में होने वाला युद्ध दूर—दूर तक के देशों में संकट उत्पन्न कर देता है। इसका एक उदाहरण के.जी. सैयदैन ने इस प्रकार दिया है — "युद्ध यूरोप में आरंभ होता है और बंगाल में तीन लाख व्यक्ति अकाल में मर जाते हैं, लाखों बेघर हो जाते हैं और अपने साधारण कार्यों से पृथक हो जाते हैं और उन सब सुखों से वंचित हो जाते हैं जो जीवन को सुखी,रोचक और आकर्षित बनाते हैं।" आज अंतर्राष्ट्रीयता हमारे जीवन का लक्ष्य मात्र न रहकर हमारी अनिवार्यता बन गई है और इस अनिवार्यता को समझने— समझाने के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर की शिक्षा को प्रदान किया जाना आवश्यक है। शिक्षा ही विश्व के संघर्षों, जीवन की जटिलताओं और स्वार्थों के बवंडर से हमारी रक्षा कर सकती है।

अंतर्राष्ट्रीयता के विकास के लिए शिक्षा ही एक प्रमुख माध्यम है। वैसे तो अंतर्राष्ट्रीय भावना के विकास में रेडियो, समाचार पत्र, संगणक, जनसंचार माध्यम और

सिनेमा आधुनिक साधन हैं लेकिन इसमें शिक्षा को सबसे श्रेष्ठ स्थान दिया जाता है। यूनेस्को UNESCO (United Nations Educational, Scientific and Cultural Organization) द्वारा प्रकाशित 'Towards World Understanding' में लिखा है – "शिक्षालय आसपास की संस्कृति में निहित सर्वोच्च तत्वों को व्यक्त कर सकते हैं, और साधरणतः करते भी हैं। वे सत्य, ईमानदारी और निष्पक्षता में समाज के सामान्य स्तर से ऊंचे होने चाहिए और साधारणतः होते भी हैं वे लोगों के मानदंडों और मूल्यों को काफी ऊंचा उठाने का प्रयास करते हैं।"

अंतर्राष्ट्रीय सद्भावना एवं शांति शिक्षा के लिए विद्यालय में शैक्षिक कार्यक्रम

अंतर्राष्ट्रीय सद्भाव एवं शांति के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रचलित शैक्षिक कार्यक्रम में परिवर्तन करना आवश्यक है और इस संबंध में अधोलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं–

1. सर्वप्रथम विद्यालयों का वातावरण परिवर्तन किया जाना चाहिए। जाति, धर्म, संप्रदाय, आदि पर आधारित विद्यालय को समाप्त किया जाना चाहिए। ऐसे विद्यालयों का निर्माण किया जाना चाहिए जो छात्रों में अंतर्राष्ट्रीयता की भावना का विकास करने में सहायक हो।
2. अंतर्राष्ट्रीय भावना का विकास करने के लिए शिक्षण विधि में भी परिवर्तन किया जाना चाहिए। उदाहरण स्वरूप विज्ञान के शिक्षण में उसके सामाजिक पक्ष पर बल दिया जाए। बालकों को बताया जाए कि वैज्ञानिक आविष्कारों द्वारा मानव जीवन को किस प्रकार सुखी और संपन्न बनाया जा सकता है। इसी प्रकार सामाजिक पक्षों पर बल देकर सभी विषयों का विश्लेषण अंतर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण से किया जाना चाहिए। प्राथमिक स्तर पर कहानी विधि और माध्यमिक स्तर पर प्रोजेक्ट विधि या किसी अन्य क्रियात्मक विधि का प्रयोग किया जाना चाहिए।
3. अंतर्राष्ट्रीय भावना नामक विषय को अनिवार्य बना जाए और विश्व के प्रमुख धर्मों और उनके आदर्शों को भी पाठ्यक्रम में स्थान दिया जाए। विश्व इतिहास, विश्व शांति, विश्व कला और विश्व संस्कृतियों से संबंधित पाठ्यवस्तु को पाठ्यक्रम में स्थान दिया जाना चाहिए। विभिन्न देशों में रहने वाले व्यक्तियों के रहन–सहन, समानता और असमानता को संबंधित विषयों में महत्व दिया जाना चाहिए।
4. अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर खेलकूद की प्रतियोगिता का आयोजन किया जाना चाहिए।
5. रेडियो, समाचार पत्र, सिनेमा, दूरदर्शन,भाषण आदि अविधिक(प्दवितउंस) साधनों का प्रयोग किया जाना चाहिए।
6. अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के दिवस मनाने चाहिए। जैसे यू.ए.एन दिवस, बाल दिवस आदि।
7. अन्तर्राष्ट्रीय महत्व की समस्याओं पर वाद–विवाद प्रतियोगिताओं का आयोजन किया जाना चाहिए।
8. UNESCO के अतिरिक्त वर्ल्ड पीस मूवमेंट, वर्ल्ड ब्रदर हुड आदि संस्थाओं की गतिविधियों से अवगत कराया जाए।

यूनेस्को एंव अंतर्राष्ट्रीय भावना

यूनेस्को का आधारभूत सिद्धांत है कि – "युद्ध मनुष्य के मस्तिष्क में आरंभ होते हैं अतः शांति और सुरक्षा के साधनों का निर्माण भी मनुष्य के मस्तिष्क में ही किया जाना

टिप्पणी

चाहिए।" यूनेस्को का कहना है कि शिक्षा, विज्ञान और संस्कृति के क्षेत्रों में विविध राष्ट्रों में सहयोग स्थापित करने व उनकी आपस की विभिन्नताओं एवं विरोध के कारणों को समाप्त करने के लिए आवश्यक है ताकि विश्व संस्कृति का विकास किया जा सके। राष्ट्रों के भेद का प्रमुख आधार– संस्कृति की विभिन्नता ही है। यदि विविध राज्यों के विचारक, साहित्यकार, कवि और शिक्षाशास्त्री समय–समय पर आपस में मिलते रहें, अपनी समस्याओं को परस्पर विचारों के माध्यम से समझते रहे, तो एक–दूसरे के दृष्टिकोण को समझने, एक दूसरे की संस्कृति की अच्छी बातों को ग्रहण करने और एक–दूसरे के समीप आने का अवसर मिलता है। जैसा कि यूनेस्को का कथन है कि युद्ध का आरंभ मस्तिष्क से ही होता है। इसलिए लोगों के मन में दूसरों के प्रति विद्वेष की भावना भर दी जाती है, तभी वे युद्ध के लिए तत्पर होते हैं। अतः अंतर्राष्ट्रीय सद्भाव का आरंभ मनुष्य को मानसिक भावनाओं को बदलकर करना चाहिए। इस परिषद का यही उद्देश्य है। इसके लिए उसकी ओर से विभिन्न देशों में राष्ट्रीय कमीशन का निर्माण किया गया है। ये कमीशन अपने अपने देश में शिक्षा के विस्तार और विभिन्न संस्कृतियों के आपसी संबंध का प्रयास करते हैं।

अंत में यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सद्भाव और शांति के लिए शिक्षा से अधिक उचित माध्यम और कोई नहीं हो सकता। यदि विश्व के देशों में शिक्षा को माध्यम बनाकर अंतर्राष्ट्रीय भावना का विकास किया जाए तो हम राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शांति बनाए रख सकते हैं। जवाहरलाल नेहरू ने ठीक ही कहा है कि "पृथकता का अर्थ है – पिछड़े रहना और पतन। संसार बदल गया है और पुरानी रुकावटें समाप्त होती जा रही हैं। जीवन अधिक से अधिक अन्तर्राष्ट्रीय होता जा रहा है। हमें इस भावी अंतर्राष्ट्रीयता में अपनी भूमिका अदा करनी चाहिए।"

अपनी प्रगति जांचिए

5. हस्तकला के माध्यम से शिक्षा किसकी देन है?
   (क) अरविंदो (ख) टैगोर
   (ग) गांधी जी (घ) विवेकानंद
6. दलाई लामा क्या कहलाते थे?
   (क) बौद्ध गुरु (ख) जैन गुरु
   (ग) सिख गुरु (घ) इनमें से कोई नहीं

1.5 संघर्षों की समझ और समाधान

संघर्षों की समझ और समाधान को निम्न बिंदुओं के तहत समझा जा सकता है–

1.5.1 संघर्ष का स्वरूप एवं प्रकार

संघर्ष को सामाजिक आचरण की एक विशिष्ट कोटि के रूप में देखा जा सकता है – दो पक्षों को कोई ऐसी वस्तु प्राप्त करने का प्रयास करते हुए जो उनमें से किसी के पास न हो। इसके अतिरिक्त, संघर्ष को एक संभावना या स्थिति के रूप में, एक संरचना अथवा अभिव्यक्ति के रूप में, एक घटना या प्रक्रिया के रूप में समझा जा

सकता है। साहित्य में संघर्ष को संघर्षरत व्यक्तियों या शक्तियों की सहज प्रवृत्तियों के रूप में प्रस्तुत किया गया है। संघर्ष आंतरिक अथवा बाह्य हो सकता है – अर्थात् यह किसी व्यक्ति के मन में अथवा किसी व्यक्ति और किसी बाहरी शक्ति (अथवा दृष्टिकोणों) के बीच हो सकता है। संघर्ष सामान्यतया दो अथवा दो से अधिक व्यक्तियों के बीच होता है, किंतु यह कई अलग–अलग रूपों में हो सकता है। यह व्यक्ति के अपने भीतर भी हो सकता है। अपने स्वरूप में, संघर्ष ध्रुवीकरण और छीजते अवसर की एक प्रक्रिया है। जब किसी मुद्दे पर दो व्यक्तियों अथवा पक्षों के बीच संघर्ष हो, तो एक उसके पक्ष में होता है और दूसरा विपक्ष में। दोनों अपने–अपने पक्षों को सिद्ध करने का हर संभव प्रयास करते हैं। एक अपने पक्ष का बचाव और विरोधी के पक्ष को ध्वस्त करने का प्रयास करता है। वह अपने विरोधियों के तर्कों, औचित्यों, दृष्टिकोणों और सरोकारों को नज़रअंदाज कर देता है। उनके कथनों की बनावट और अर्थ को खारिज कर देता है, और अपनी गलतियों के प्रति आंखें मूंद लेता है। वह उन्हें गलत और स्वयं को सही मान लेता है।

संघर्ष का अर्थ

संघर्ष संगठित या असंगठित, क्षणभंगुर या चिरस्थायी, भौतिक या आध्यात्मिक हो सकता है। विद्वान फेयरचाइल्ड के अनुसार समाजशास्त्र में संघर्ष एक प्रक्रिया अथवा स्थिति है, जिसमें दो या दो से अधिक लोग या समूह एक दूसरे के प्रयोजनों को सक्रियता से हराना, एक दूसरे के हितों को पूरा होने से रोकना, यहां तक कि एक दूसरे को चोट पहुंचाना अथवा बरबाद कर देना चाहते हैं। संघर्ष की प्रक्रिया में, लोग किसी एक ही लक्ष्य या उद्देश्य अथवा वस्तु को पूरा या प्राप्त करने के लिए एक दूसरे से संघर्ष करते हैं। किसी संस्कृति में कोई वस्तु प्रतिस्पर्धा से प्राप्त की जा सकती है और इस प्रकार वही वस्तु, प्रतिस्पर्धा की सीमा पार हो जाने पर, झगड़े लड़ाई अथवा संघर्ष का कारण बन जाती है। जब भी लोगों के मूल्य, मत, आवश्यकताएं, हित भिन्न होते हैं और वे कोई बीच का मार्ग ढूंढ नहीं पाते तब संघर्ष जन्म लेता है।

संघर्ष की परिभाषा

संघर्ष की परिभाषा लोगों के बीच विचार प्रक्रिया, अभिवृत्तियों, तालमेल, हितों, अपेक्षाओं और यहां तक कि ग्रहण बोधों में अंतर के कारण उत्पन्न होने वाले टकराव के रूप में की जाती है। किसी संघर्ष के चलते लोगों में झगड़े होते हैं। वे एक दूसरे को शारीरिक प्रताड़नाएं देते हैं और शांति व सौहार्द समाप्त हो जाता है। वस्तुतः किसी संघर्ष के कारण संबंध बिगड़ सकते हैं, मित्र शत्रु बन जा सकते हैं।

संघर्ष केवल लोगों में ही नहीं, बल्कि देशों, राजनीतिक दलों और राज्यों के बीच भी उत्पन्न हो सकता है। यदि किसी मामूली से संघर्ष पर समय रहते काबू नहीं किया जाए, तो देशों के बीच कोई बड़ा युद्ध हो सकता है, दरार पैदा हो सकती है, जिससे अशांति और असामंजस्य पनप सकता है।

ए. डब्ल्यू. ग्रीन के अनुसार, ''यह दूसरे अथवा अन्य लोगों की इच्छा का विरोध, उसे पूरा होने से रोकने या करने या दबाने का सुविचारित प्रयास है।''

प्रोफेसर एम. अफज़लुर का मानना है कि संघर्ष की कोई एक सर्वमान्य परिभाषा नहीं है। वह कहते हैं कि मतभिन्नता का यह एक बिंदु है। संघर्ष कोई

टिप्पणी

स्थिति है या फिर आचरण का कोई रूप होता है। वर्ष 1990 में रॉबर्ट ए. बेरॉन की संस्थागत संघर्षों की परिभाषाओं की समीक्षा का उदाहरण देते हुए, वह कहते हैं कि संघर्ष की परिभाषाओं में हितों का विरोध और विरोधी विचार या दृष्टिकोणों को रोकने का प्रयास करने की प्रक्रिया शामिल है। अफजलुर के अनुसार संघर्ष एक प्रक्रिया है जो सामाजिक सत्ताओं के भीतर या बीच असामंजस्य, असहमति अथवा मतभेद में परिलक्षिति होता है।

प्रोफेसर माइकल निकॉलसन संघर्ष की परिभाषा एक गतिविधि के रूप में करते हैं, जो तब जन्म लेता है जब चेतन लोग (व्यक्ति या समूह) अपनी अभिलाषाओं, आवश्यकताओं और मांगों अथवा कर्तव्यों व दायित्वों से संबद्ध परस्पर विरोधी कार्यों को पूरा करना चाहते हैं। संघर्ष किसी असहमति की पराकाष्ठा है, जो इसकी पूर्वापेक्षा है, जिसमें लोग एक दूसरे को क्षति पहुंचाने का प्रयास करते हैं।

संघर्ष के स्रोत

संघर्ष के मुख्यतः तीन स्रोत हैं – आर्थिक, मूल्यपरक और शक्तिपरक

आर्थिक संघर्ष : इसमें अपर्याप्त और दुष्प्राप्य संसाधनों की प्राप्ति के लिए प्रतिस्पर्धी प्रयोजन और अभिप्रेरणाएं आती हैं। संघर्ष कर रहा प्रत्येक पक्ष यथासंभव अधिक से अधिक प्राप्त कर लेना चाहता है, और प्रत्येक पक्ष का आचरण व मनोभाव इस बात पर केंद्रित होता है कि वह जहां तक हो सके प्राप्त कर ले।

मूल्यपरक संघर्ष : मूल्य संघर्ष में जीवन शैलियों, विचारधाराओं – प्राथमिकताओं, सिद्धांत और पद्धतियों–परिपाटियों जिनमें लोगों की आस्था होती है – में असामंजस्य शामिल है। अंतर्राष्ट्रीय संघर्ष, जैसे शीतयुद्ध, में अकसर मूल्यजन्य संघर्ष होता है, जिसमें प्रत्येक पक्ष अपने जीवन की शैली और राजनीतिक–आर्थिक तंत्र सही और उच्च सिद्ध करने का प्रयास करता है।

शक्तिपरक संघर्ष : यह संघर्ष तब होता है जब प्रत्येक पक्ष अपने संबंध और सामाजिक विन्यास में अपना प्रभाव कायम रखना अथवा उसका विस्तार करना चाहता है। एक पक्ष के कमज़ोर हुए बिना दूसरा पक्ष मजबूत नहीं हो सकता – कम से कम एक दूसरे पर प्रत्यक्ष प्रभाव के मामले में। इस प्रकार, शक्ति संघर्ष चलता है और अंततः उसका परिणाम हार और जीत के रूप में सामने आता है – या फिर अनिर्णीत स्थिति के रूप में, जहां तनाव बरकरार रहता है। शक्ति संघर्ष लोगों के बीच, समूहों (गुटों) के बीच अथवा राष्ट्रों के बीच हो सकता है। शक्ति की भूमिका सभी संघर्षों में होती है, क्योंकि संघर्ष के सभी पक्ष एक दूसरे पर अपना नियंत्रण या प्रभाव कायम करना चाहते हैं।

उल्लेख समीचीन है कि ज्यादातर संघर्ष शुद्ध रूप से संघर्ष नहीं होते, पर उनमें नानारूप स्रोतों का समावेश होता है। उदाहरणस्वरूप, संघ–प्रबंधन संघर्ष में विशेष रूप से आर्थिक संघर्ष होता है, किंतु इसमें किसी न किसी रूप में शक्ति संघर्ष भी हो सकता है, और इसमें अकसर अलग–अलग विचारधाराएं अथवा राजनीतिक मूल्य निहित होते हैं। स्रोत जितने अधिक होंगे, संघर्ष उतना ही अधिक तीव्र और दुःसाध्य होगा।

संघर्ष का एक और महत्वपूर्ण स्रोत अप्रभावी संवाद–संप्रेषण है। त्रुटिपूर्ण संवाद और गलतफहमी संघर्ष को उस स्थिति में भी जन्म दे सकते हैं, जहां कोई मूलभूत असामंजस्य न हो। इसके अतिरिक्त, किसी स्थिति में तथ्यों को लेकर पक्षों के बोध अलग–अलग हो सकते हैं, और जब तक उनके बीच तालमेल न हो तब तक कोई समाधान नहीं हो सकता। आत्मक्रेंद्रीयता, चयनात्मक प्रत्यक्षण, संवेगात्मक पूर्वाग्रह, पूर्वधारणाएं, आदि वे शक्तियां हैं जो लोगों में स्थितियों को दूसरे पक्ष से विपरीत रूप में देखने को प्रेरित करती हैं। संवाद क्षमता की कमी के कारण अकसर भ्रांति, हानि और क्रोध की स्थिति पैदा होती है, जिससे संघर्ष को बल मिलता है।

संघर्षों के प्रकार

संघर्ष के निम्न प्रकार हैं, जिनका विवरण यहां दिया जा रहा है।

- **अंतर्संघर्ष (अंतर्द्वंद्व)**

इसका अर्थ किसी व्यक्ति में मनःस्थिति द्वारा सृजित अंतःस्फोट की एक स्थिति है। किंतु यह समझना ज़रूरी है कि किसी व्यक्ति की यह स्थिति उसके आसपास की परिस्थितियों के कारण उत्पन्न होती है। ये स्थितियां क्रोध, अवसाद, संभ्रम और कुंठा हैं, जो आक्रामकता, अस्थिर आचरण, व्यसन और चरम स्थितियों में आत्महत्या की भावना को जन्म दे सकती हैं (रॉस, 1993)। (ई. आई. रॉस, *राइट नाउ*, बार्न्स एंड नॉबल पब्लिशिंग, न्यू यॉर्क, अमेरिका) यह वह संघर्ष है जिसका उल्लेख 'स्व–विरोधी' के रूप में किया गया है (लैंब, 2006), जिसमें व्यक्ति अपने मन और आदतों से लड़ता रहता है। वह धूम्रपान, मदिरापान तथा कई अन्य मादक पदार्थों का सेवन करता है। (एन. लैंब, *दि आर्ट एंड क्राट ऑफ स्टोरी टेलिंग*, एफ.डब्ल्यू. मीडिया, इंक., न्यू यॉर्क, अमेरिका)

ऐसा तब होता है जब उसका कोई निजी लक्ष्य, उद्‌देश्य, योजना, या फिर कोई कार्य पूरा नहीं हो पाता। वहीं, यह प्रतियोगी मूल्यों और सिद्धांतों की तुष्टि नहीं होने की स्थिति में भी होता है। अंतर्संघर्ष के कई उप–भेद होते हैं। इसे किसी व्यक्ति की कोई निर्णय ले पाने की अक्षमता, अच्छे और बुरे के बीच अंतर्द्वंद्व अथवा यथार्थ और आकांक्षा के बीच अंतर के रूप में देखा जा सकता है।

अपने स्वरूप में अंतर्संघर्ष (अंतर्द्वंद्व) आंतरिक होता है, किंतु यह कभी–कभी अंतर–वैयक्तिक तनावों के रूप में किसी के साथ संघर्ष में स्पष्ट रूप से भी दिखाई देता है।

अंतर्संघर्ष (अंतर्द्वंद्व) व्यक्ति के मन में होता है और इसमें विरोधी मूल्यों को स्पष्ट करने के लिए एक आंतरिक संघर्ष होता है। ज़े–फेरेल के अनुसार, अंतर्संघर्ष (अंतर्द्वंद्व) संज्ञानात्मक और भाव क्षेत्रों में होता है। कोई व्यक्ति सोच सकता है कि उसका संस्था अथवा अन्य कर्मचारियों से संघर्ष है, किंतु यह संघर्ष केवल उस व्यक्ति के मन में होता है। किंतु, प्राइस का मानना है कि अंतर्संघर्ष (अंतर्द्वंद्व) अंतर–वैयक्तिक संघर्ष का अंतर्निहित कारण हो सकता है।

- **अंतर–वैयक्तिक संघर्ष**

हम सब एक ऐसे तंत्र में रहते हैं, जो परिवर्तनशील होता है और जिसमें परिवार, सहकर्मी, मित्र, सहपाठी, आदि रहते हैं। हालांकि हम एक दूसरे के साथ आगे बढ़ते हैं, किंतु हमारे बीच अकसर संघर्ष की स्थिति भी उत्पन्न होती है। संघर्ष का यह रूप अंतर–वैयक्तिक होता है।

अंतर–वैयक्तिक संघर्ष का अर्थ दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच संघर्ष है। सूक्ष्म अर्थ में इसे 'व्यक्ति के विरुद्ध व्यक्ति' कहा गया है। मनुष्य के कई व्यक्तित्व होते हैं, जो अकसर परस्पर–विरोधी विकल्पों या पसंदों और मतों में दिखाई देते हैं। यह संघर्ष प्रत्यक्ष विरोध हो सकता है, जैसे हाथापाई, शस्त्र युद्ध अथवा लूट में, या फिर दो अथवा दो से अधिक लोगों की आकांक्षाओं के बीच अपेक्षाकृत एक सूक्ष्म संघर्ष हो सकता है (निकॉलजेवा, 2005)। (एम. निकोलजेवा, *ऐस्थेटिक ऐप्रोचेज जव चिल्ड्रेंस लिटरेचर : एन इंट्रोडक्शन*, स्केअर्सक्रो प्रेस, लैनहैम, मेरीलैंड, अमेरिका)

यह आवश्यक नहीं कि यह संघर्ष केवल शारीरिक हो, इसके अन्य रूप भी होते हैं, जैसे किसी व्यक्ति की किसी दूसरे व्यक्ति के प्रति घृणा या तिरस्कार की भावना। इस तरह के संघर्ष का अर्थ अप्रत्यक्ष विरोध या वैर भी हो सकता है। तात्पर्य यह कि अंतर–वैयक्तिक संघर्ष वह संघर्ष है जो किसी समुदाय के लोगों के अतिरिक्त किसी संस्थान या संगठन में कार्यरत लोगों के बीच होता है। ऐसे अनेकानेक व्यक्तिगत अंतर हैं, जो अंतर–वैयक्तिक संघर्ष को जन्म देते हैं, जैसे व्यक्तित्वों, संस्कृति, अभिवृत्तियों, मूल्यों, अवगमों, आदि के अंतर।

• अंतः सामूहिक (अंतर्सामुदायिक/अंतर्सामाजिक) संघर्ष

अंतः सामूहिक (अंतर्सामुदायिक/अंतर्सामाजिक) संघर्ष का अर्थ किसी समूह या समाज के लोगों के एक दूसरे से भिन्न विचारों, मतों, अभिवृत्तियों आदि अथवा एक दूसरे के साथ अंतर्वैयक्तिक असामंजस्यों के कारण उत्पन्न संघर्ष है। दूसरे शब्दों में संघर्ष का यह प्रकार किसी समूह के लोगों के बीच होता है। यह इन लोगों के असामंजस्य और गलतफहमियों और अंतर्वैयक्तिक मतभेद के कारण जन्म लेता है। विस्तृत रूप में अंतः सामूहिक (अंतर्सामुदायिक/अंतर्सामाजिक) संघर्ष की व्याख्या उस स्थिति से की जाती है, जिसमें लोगों के यथार्थ अथवा संभावित परस्पर–विरोधी लक्ष्य या हित होते हैं (ग्रीयर एवं डैनल्स, 2017)। (ग्रीयर एवं डैनल्स, https://docplayer.net)

अतः सामूहिक (अंतर्सामूहिक/अंतर्सामुदायिक) संघर्ष छोटे और बड़े दोनों स्तरों पर हो सकते हैं।

• अंतर्सामाजिक संबंध

यदि संघर्ष के कारण 'सामाजिक तानाबाना' टूट जाए, तो यह समझना आवश्यक हो जाता है कि लोग किस प्रकार फिर से परस्पर व्यवहार शुरू कर सकते हैं और किस प्रकार अंतर–सामूहिक (अंतर–सामाजिक) संबंध पुनः कायम हो सकता है। यह हिंसक संघर्ष की रोकथाम के लिए भी आवश्यक है। लोगों की सुरक्षा के मद्देनज़र अंतर–सामूहिक संघर्ष को कम करने करने वाली संस्थाओं का विकास और संघर्ष का शांतिपूर्वक समाधान आवश्यक हैं। किंतु गहन मतभेद और युद्ध की स्थितियां इन संस्थाओं को समुचित ढंग से कार्य करने से रोक सकते हैं।

शत्रुतापूर्ण संबंधों को सकारात्मक और सृजनात्मक संबंधों में बदलने के प्रयासों की प्रक्रियाएं लंबे समय से जारी हैं, जिन पर यथासंभव ध्यान दिया जाना चाहिए। उनका राजनीतिक, आर्थिक और शांति कायम करने के अन्य आयामों में समेकन किया जाना चाहिए।

हिंसात्मक संघर्ष की कई स्थितियों में, सह–अस्तित्व का इतिहास रहा है। इससे स्पष्ट होता है कि संबंधों में परिवर्तन किया जा सकता है। बदलाव के लिए समूहों और

समुदायों में स्थायी परस्पर व्यवहार तथा विश्वास व सहयोग को पुनः कायम करना आवश्यक होता है।

संस्थाओं और कार्यकर्ताओं को स्थानीय, राष्ट्रीय और समाज के सभी स्तरों पर सह–अस्तित्व और सामंजस्य की प्रक्रियाओं को बढ़ावा देने के प्रयास करने चाहिए। इन संस्थाओं और कार्यकर्ताओं में धर्मगुरु, कंपनियां, राजनेतागण तथा स्थानीय और अंतर्राष्ट्रीय गैर–सरकारी संस्थाएं व दानकर्ता आते हैं। हालांकि शांति और व्यवस्था कायम करने के प्रयासों के क्रम में संघर्षोत्तर और संवेदनशील परिवेशों में ध्यान सरकारों के पुनर्गठन अथवा सहायता पर दिया जाता है, किंतु सह–अस्तित्व और सामंजस्य की गतिविधियां समाजों और समुदायों के बीच नहीं बल्कि उनके उपांतीय क्षेत्रों से शुरू होती हैं। उदाहरण के लिए, नागरिक समाज के संगठनों की सहभागिता से हिंसा के बिना परस्पर व्यवहार और लोगों में मेल की गुंजाइश बढ़ सकती है। उपांतीय क्षेत्रों में हो रहे प्रयासों की सहायता करने के साथ–साथ समाज के भीतर संरचनात्मक परिवर्तन लाना आवश्यक होता है।

किंतु, यह समझना भी ज़रूरी है कि यह आवश्यक नहीं कि नागरिक समाज के कार्यकर्तागण सामंजस्य और शांति प्रक्रियाओं के प्रति समर्पित हों। नागरिक समाज के समूहों को राजनीतिक समूहों से जोड़ा जा सकता है, पर ऐसे कई उदाहरण हैं जब शिक्षाविदों, संचार माध्यमों, प्रवासी समूहों और धर्म गुरुओं ने हिंसक संघर्ष से सहयोग किया है।

संघर्ष की अंतर्सामाजिक स्तरीय श्रेणियां

बृहत स्तरीय संघर्ष

जब लोग अपनी स्थिति के प्रति ध्यान देने की मांग करने के लिए कुछ खास अप्रिय आचरणों के जरिए शिकायतों, दमनों, वंचना, अन्यायों, आदि की भावनाएं व्यक्त करने लगते हैं, और यह स्थिति समस्त समूह, जाति, राज्य या फिर राष्ट्रीय अथवा अंतर्राष्ट्रीय हो जाती है, तब बृहत संघर्ष होता है। बृहत स्तरीय संघर्ष तंत्र अथवा संगठन की सामाजिक संरचना में अनसुलझे परस्पर विरोधी हित के एक परिणाम के रूप में आक्रामक आचरणों के जरिए विरोधी के प्रचलित संबंधों की अभिव्यक्ति है।

किसी समाज के संरचनात्मक व्यवहार में इन गलतियों के कारण प्रभावी शासन को जीवन के लिए ज़रूरी सामाजिक नियंत्रण अथवा सामाजिक व्यवस्था कायम करने में कठिनाई होती है। बृहत संघर्ष पीड़ित समूह के असंतोष की खुली अथवा मुखर अभिव्यक्ति होते हैं, जिनका लक्ष्य दोनों पक्षों के मौजूदा संबंध को समाप्त करना नहीं तो कम से कम दूसरे पक्ष को हानि पहुंचाना अथवा उसके प्रभाव को कम करना होता है।

किसी सामान्य समाज में बृहत स्तर का यह संघर्ष बहुत कम होता है। लोगों के बड़े तबकों के बीच संघर्ष, स्थानिक श्रमिक अशांति, एक धर्म के लोगों का दूसरे धर्म के लोगों से, एक जाति के लोगों का दूसरी जाति के लोगों से, एक भाषाभाषी लोगों का दूसरे भाषाभाषी लोगों से विवाद, आदि इस संघर्ष के कुछ मुख्य उदाहरण हैं। इस श्रेणी के संघर्ष के उदाहरण हैं : लोगों के बड़े तबकों के बीच जब–तब संघर्ष, स्थानीय श्रमिक अशांति, अंतर–धार्मिक, अंतर–जातीय और अंतर–भाषायी विवाद। इसे रोकने, इसका समाधान करने अथवा इस पर नियंत्रण करने में राज्य की भूमिका अहम होती है।

किंतु किसी राज्य या समाज के लिए बृहत स्तर के संघर्ष का महत्व चुनौती से अधिक होता है। यह इतना गंभीर होता है कि किसी राज्य के स्वास्थ्य और क्षमता का मूल्यांकन इससे निपटने की इसकी प्रभावकारिता से किया जाता है।

टिप्पणी

बृहत संघर्ष के कारण : बृहत संघर्ष के मुख्यतः चार कारण हैं : प्राकृतिक संसाधन, मूल्य, दमनकारी सामाजिक व्यवस्था और सूचना का कुप्रबंध।

प्राकृतिक संसाधन : ये संघर्ष उन संसाधनों को लेकर उत्पन्न होते हैं, जो लोगों और समूहों की आवश्यकता से कम उपलब्ध होते हैं। समाज का कोई संपन्न तबका इन संसाधनों पर अपना नियंत्रण करना चाहता है, जबकि इनकी ज़रूरत वंचितों को भी होती है। ऐसे में संपन्न और वंचित तबकों के बीच संघर्ष होता है, जैसे नाइजीरिया के नाइजर डेल्टा क्षेत्र का संघर्ष।

मूल्य : संघर्ष लोगों अथवा समूहों या फिर संगठनों के मूल्यों में अंतर के चलते उत्पन्न हो सकता है। इन मूल्यों में दर्शन, विचारधाराएं, धर्म, आदि आते हैं। किसी एक समूह के अपने मूल्यों को किसी दूसरे समूह पर थोपने या थोपने का प्रयास करने के कारण संघर्ष हो सकता है – विशेष रूप से जहां कोई समूह किसी दूसरे समूह के मूल्यों या विचारों अथवा धर्म की उपेक्षा करे।

दमनकारी सामाजिक व्यवस्था : समाज के कुछ मानदंड अपने स्वरूप में दमनकारी होते हैं, जिनकी आड़ में उच्च तबके के लोग वंचितों के साथ अन्याय करते हैं। इस तरह के शोषण से बचने के लिए जब वंचित तबका कोई प्रयास करता है, तब संघर्ष जन्म लेता है। महिलाओं के साथ हिंसक व्यवहार इस संघर्ष के कारण का एक उदाहरण है।

सूचना का कुप्रबंध : सूचना, ज्ञान और जानकारी लोगों, समुदायों तथा संगठनों के परस्पर व्यवहार तथा संबंधों के लिए ज़रूरी होते हैं। इनके त्रुटिपूर्ण होने की स्थिति में संघर्ष की स्थितियां उत्पन्न हो सकती हैं।

लघु स्तरीय संघर्ष

लघु स्तरीय संघर्ष को स्थानीय या स्थानिक संघर्ष भी कहा जाता है, जिसमें उपराष्ट्रीय स्तर पर केंद्रित हिंसा या हिंसा का खतरा आता है। इसमें किसी राज्य की सरकार, नौकरशाहों, राजनेताओं आदि का कोई प्रत्यक्ष हस्तक्षेप नहीं होता। सरकार इन विवादों में प्रत्यक्ष रूप से शामिल लोगों का परोक्ष रूप से समर्थन कर सकती है, पर इन विवादों का वाहक नहीं होती। सुसंगठित सशस्त्र समूह भी इन लघु संघर्षों में प्रत्यक्ष रूप से शामिल नहीं होते।

वस्तुतः, सामुदायिक स्तर पर अनौपचारिक अथवा अव्यवस्थित ढंग से संगठित संगठन इन संघर्षों का संचालन करते हैं।

लघु अथवा स्थानिक संघर्षों के कारण शांति और सुरक्षा को खतरा पैदा हो सकता है। अन्य संघर्षों की तुलना में इन संघर्षों के चलते जान–माल का नुकसान अधिक होता है। उदाहरणस्वरूप, वर्ष 2013 में दारफुर में हुए अंतर–सामुदायिक संघर्ष में लगभग 2000 लोग मारे गए और पूर्वी दारफुर में 1 लाख 14 हजार से अधिक लोग बेघर हो गए।

- **अंतर–सामूहिक (अंतर–सामुदायिक/अंतर–सामाजिक) संघर्ष**

इसका अर्थ दो या दो से अधिक समूहों, समुदायों या गुटों के बीच मतभेद या विरोध है, जैसे दो या दो से अधिक विभागों, कंपनियों, राजनीतिक दलों, या राष्ट्रों के बीच। इसमें अंतर्वैयक्तिक असामंजस्य, मनोवैज्ञानिक तनाव, शारीरिक हिंसा आदि होते हैं। अंतर–सामूहिक (अंतर–सामुदायिक/अंतर–सामाजिक) संघर्ष तब होता है जब समूहों या समुदायों के बीच गलतफहमियां उत्पन्न होती हैं। ऐसा इन समूहों या समुदायों के परस्पर विरोधी लक्ष्यों और हितों के कारण होता है। नाइजीरिया में मुसलमानों और ईसाइयों के बीच संघर्ष अंतर–धर्म (अंतर–आस्था) संघर्ष का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

अंतर–सामूहिक संघर्ष सामान्यतः निजी कारणों से नहीं होते; वे अकसर समूहों की कार्य गतिविधियों को लेकर अथवा उनके अन्य समूहों से आग्रह को लेकर होते हैं। ये संघर्ष प्रतिस्पर्धात्मकता के कारण भी हो सकते हैं।

अंतःराज्यीय (अंतर्राज्यीय) संघर्ष

यह संघर्ष किसी संप्रभु राज्य (राष्ट्र) की सीमाओं के भीतर होता है। यह किसी राज्य में ज़मीन, असमान विकास, प्राकृतिक संसाधन नियंत्रण और राजस्व–साझीदारी सूत्र जैसे आर्थिक कारणों से हो सकता है। मूल्यों में अंतर जैसे सामाजिक कारक भी इस संघर्ष को जन्म देने में अहम भूमिका निभाते हैं। वहीं इसमें यथार्थ अथवा अनुमानित जाति संतुलन या जाति संहार जैसे सामाजिक–जातीय कारकों की भूमिका भी होती है, जैसे नाइजीरिया–बियाफ्रा प्रकरण और र्वांडा जाति संहार के मामले में। लोक प्रशासन में सत्ता साझीदारी, सत्ता समीकरण अथवा क्षेत्रीकरण सिद्धांत, राजनीतिक नियुक्तियों में असंतुलन, कोटा व्यवस्था तथा ऐसे कई अन्य राजनीतिक कारक अंतर्राज्यीय संघर्ष को जन्म दे सकते हैं।

अंतर–राज्यीय संघर्ष

यह संघर्ष दो या दो से अधिक राज्यों के बीच होता है। कभी–कभी इस प्रकार के संघर्ष के फलस्वरूप युद्ध की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। ध्यातव्य है कि सभी युद्धों का वर्णन संघर्ष के रूप में किया जाता है। इस प्रकार अंतर–राज्यीय युद्ध और संघर्ष एक ही हैं। अंतर–राज्यीय संघर्ष किसी राज्य द्वारा किसी दूसरे राज्य के क्षेत्रीय अतिक्रमण, कूटनीतिक संबंधों के विच्छेद, एक देश से दूसरे देशों को विषाक्त अथवा वर्जित पदार्थ के निर्यात आदि के कारण उत्पन्न हो सकते हैं। एक शांत गांव डेल्टा राज्य कोको में हजारों टन जमा विषाक्त पदार्थों के कारण वर्ष 1980 में नाइजीरिया ने इटली से कूटनीतिक संबंध लगभग समाप्त कर लिये थे। नाइजीरिया और कैमरून के बीच संघर्ष के मामले सामने आते रहे हैं, किंतु बड़े पैमाने पर युद्ध कभी नहीं हुआ। वर्ष 1962 में क्यूबा प्रक्षेपास्त्र संकट के बाद से अमेरिका और क्यूबा में संघर्ष लगातार होते रहे हैं। वर्ष 1980 से 1988 तक चला ईरान–इराक युद्ध, 1982 में फॉकलैंड द्वीपसमूह को लेकर हुआ ब्रिटेन–अर्जेंटीना युद्ध, अमेरिका–अफगान युद्ध आदि अंतर–राज्यीय संघर्ष के कारण हुए युद्धों के उदाहरण हैं।

टिप्पणी

अंतर्राष्ट्रीय अथवा वैश्विक संघर्ष

इन संघर्षों में राष्ट्र राज्यों के बीच संघर्ष, प्राकृतिक संसाधनों को लेकर वैश्विक और क्षेत्रीय स्पर्धा, राजनीतिक मुद्दों को लेकर विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय संगठनों में संघर्ष, सशस्त्र दखल, जिनमें जान–माल का भारी नुकसान होता है, जातीय या धार्मिक संघर्ष, आत्मनिर्णय (स्वाधीनता) और नए राष्ट्र राज्यों के निर्माण को लेकर होने वाले संघर्ष आते हैं।

'अंतर्राष्ट्रीय संघर्ष' का अर्थ अलग–अलग राष्ट्र राज्यों के बीच और अलग–अलग राष्ट्र राज्यों में लोगों व संगठनों के बीच संघर्ष है। किंतु, यह यहीं तक सीमित नहीं है बल्कि अंतर–सामूहिक संघर्षों पर भी लागू होता है, जब स्वतंत्रता या उच्चतर सामाजिक, राजनीतिक अथवा आर्थिक शक्ति प्राप्त करने के लिए कोई समूह या संगठन युद्ध करता है, जैसे सूडान या दक्षिण सूडान, इराक़ और सीरिया।

निजी क्षेत्र के अंतर्राष्ट्रीय संघर्षों, जो निजी और दो अलग–अलग देशों से आई कंपनियों के बीच संघर्ष होते हैं, और अलग–अलग देशों की सरकारों के बीच संघर्षों में अंतर होता है। निजी संघर्ष अपने स्वरूप में निजी घरेलू अंतर–वैयक्तिक अथवा व्यवसाय संघर्षों के समान होते हैं, अंतर केवल यह होता है कि दूरी, संस्कृति, कभी–कभी भाषा, और एक संदिग्धता, जिस पर कानून लागू होगा, के कारण वे जटिल होते हैं। कभी–कभी ये समस्याएं इतनी कठिन हो जाती हैं कि इनका समाधान आसान नहीं रह जाता। किंतु, अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय अनुबंधों के लिए किसी अंतर्राष्ट्रीय मध्यस्थता संगठन की मध्यस्थता से विवाद के समाधान की आवश्यकता होती है। इससे क्षेत्रीय विवाद रोके जा सकते हैं और कुछ अन्य समस्याओं का निराकरण भी हो सकता है।

- **हित एवं आवश्यकताएं**

लोगों, समाजों और देशों के अपने–अपने हित और आवश्यकताएं होती हैं, जैसे आर्थिक संसाधनों, सुरक्षा, सम्मान और सामाजिक जीवन में भागीदारी, पहचान, संस्कृति, धार्मिक मूल्यों आदि के हित और आवश्यकताएं। इनके पूरा नहीं होने की स्थिति में संघर्ष हो सकता है। यदि लोगों का आर्थिक शोषण हो, उनकी स्वतंत्रता पर संकट आए, समाज में उन्हें समुचित स्थान न मिले या उनकी संस्कृति को लेकर उनकी उपेक्षा अथवा मनोहानि हो, तो वे संघर्ष करने को उद्यत हो उठते हैं।

संरचनाएं

संघर्ष समाज और संस्था की संरचनाओं के अनुरूप उत्पन्न हो सकता है। किसी के शक्ति, संसाधन, निर्णय लेने का अधिकार, सम्मान, आदि प्राप्त करने में इन संरचनाओं की भूमिका अहम होती है। मानव–शास्त्र के कई विद्वानों का मानना है कि समुदायों की सामाजिक संरचना और संघर्ष में एक संबंध होता है।

शक्ति

शक्ति किसी परिणाम पर प्रभाव डालने या किसी कार्य को पूरा करने की क्षमता है। यह अमूर्त होती है, जिसे समझने के लिए उस संदर्भ को समझना ज़रूरी होता है, जिसमें इसे लगाया जाता है। संघर्ष के संदर्भ में शक्ति की व्याख्या किसी की

आवश्यकताओं को पूरा करने की क्षमता के रूप में की जाती है। किसी संघर्ष के बने रहने के लिए उसके सभी पक्षों को उस संदर्भ के परिणाम को प्रभावित करने की कुछ न कुछ शक्ति और क्षमता होनी चाहिए।

टिप्पणी

शक्ति एक दुर्ग्राह्य अवधारणा है क्योंकि इसके कई रूप होते हैं। हर व्यक्ति में शक्ति के कई क्षमतावान स्रोत होते हैं, जिनसे वह अनभिज्ञ होता है। इनमें से कुछ स्रोत संघर्ष से मुक्त होते हैं जबकि कुछ अन्य का संघर्ष की प्रक्रिया से संवर्धन अथवा अवनयन किया जा सकता है।

संघर्ष की स्थितियों में शक्ति की भूमिका अहम होती है। संघर्ष अधिक से अधिक शक्ति प्राप्त करने की चाह या उसे खोने के भय के कारण हो सकते हैं। हालांकि शक्ति शून्य में नहीं होती, किंतु संबंधों में मौजूद और उन पर आधारित होती है। लोग, समूह या राष्ट्र जब शक्ति प्राप्त करने के साथ–साथ अपने प्रभाव का विस्तार करना चाहते हैं, तब संघर्ष की स्थिति पनपती है।

अन्य पक्षों को प्रभावित करने के शक्ति के तीन तरीके होते हैं। पहला, मानकीय या प्रेरक उपागम (Normative approach) जिसमें लोगों के मूल्यों या मान्यताओं की मांग होती है। उदाहरणस्वरूप, कोई मां या पिता अपने किशोरवय बच्चे से खाना खाने के बाद तश्तरी साफ करने के लिए कह सकता है, क्योंकि वह परिवार का एक अंग होता है और हर कोई उसकी सहायता करता है। दूसरा उपयोगितावादी उपागम (Utilitarian approach) है, जो पारितोषिक के उपयोग पर आधारित होता है। तीसरा दंड की एक विधि के रूप में शक्ति का बलपूर्वक उपयोग है।

शासन

संघर्ष अपरिहार्य है, किंतु शासन की प्रक्रियाओं में मतभेदों और विरोध पर सकारात्मक ढंग से नियंत्रण कर इसे सीमित किया जा सकता है। माना जाता है कि संघर्ष की जड़ें समूहों (नृजातीय अथवा धार्मिक) के बीच सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक असमानताओं से उपजी परिवेदनाओं में निहित होती हैं। हाल में शोधों में संघर्ष के आर्थिक अभिप्रेरण की आवश्यकता को समझने पर ध्यान दिया गया है। किंतु कारण जो भी हो, समुचित राजनीतिक व्यवस्थाओं से संघर्ष को दूर करने में सहायता मिल सकती है। संवैधानिक संरचना और राजनीतिक व न्याय प्रणालियों समेत शासन के कई पहलू इसमें सहायता कर सकते हैं।

प्रभावहीन और अनुचित शासन प्राकृतिक संसाधनों की चुनौतियों को बढ़ा देता है, अविश्वास को बनाए रखता है, और समाजों–समुदायों के बीच असमानताओं को गहरा कर देता है, जिससे संघर्ष बढ़ता है।

शासन की चुनौतियां जैसे अवैध एवं अयोग्य संस्थाएं, राजनीतिक समावेशन का अभाव, सेवाओं की असमान सुविधा और भ्रष्टाचार संघर्ष के मुख्य कारक हैं। कमज़ोर शासन शिकायतों को हवा देता है जिससे संघर्ष की संभावना बढ़ जाती है।

इसके विपरीत, सुशासन के परिणाम जैसे निष्पक्ष शक्ति संरचना, प्रभावशील और वैध संस्थाएं, न्यून भ्रष्टाचार, समावेशी राजनीतिक व्यवस्थाएं और सार्वजनिक सेवाओं की समान व प्रभावशाली सुविधा संघर्ष को दूर करने में सहायता करते हैं।

अधिकार

मानव अधिकारों को उनके स्वरूप में आम तौर पर रक्षात्मक माना जाता है। अर्थात्, कुछ लोग अथवा वर्ग उन्हें राज्य अथवा अन्य कारकों से अपने सम्मान की रक्षा का एक साधन मानते हैं। वहीं, अधिकारों को अकसर दर्शन की दृष्टि से मानव सम्मान के सिद्धांतों में निहित और/या धर्म की दृष्टि से किसी सृष्टिकर्ता के वरदान के रूप में देखा जाता है। इन से इतर, इन अधिकारों को बहुधा विधिसम्मत अवधारणा और अक्षत या अलंघ्य के रूप में भी देखा जाता है। कहा गया है कि यदि मानव अधिकार समस्या का हिस्सा हैं तो उन्हें समाधान का हिस्सा भी होना चाहिए।

इन अधिकारों में मूल अधिकारों के अतिरिक्त राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक अधिकार आते हैं। इनके उल्लंघन या हनन से संघर्ष के पनपने की संभावना रहती है। अतीत में इनके उल्लंघन के चलते अनेकानेक संघर्ष हुए हैं।

संस्कृति

संस्कृति किसी संघर्ष और उसके समाधान का एक अपरिहार्य हिस्सा होती है। संस्कृतियां भूमिगत नदियों के समान होती हैं, जो हमारे जीवन और संबंधों से होती हुई गुजरती हैं। हालांकि संस्कृतियां शक्तिसंपन्न होती हैं, किंतु वे अकसर अचेतन होती हैं और संघर्ष पर और संघर्ष के समाधान की प्रक्रिया पर अव्यक्त–अगोचर तरीकों से प्रभाव डालती हैं। संस्कृतियां भाषा–बोली, पहनावे और खान–पान की परिपाटियों से अधिक होती हैं। सांस्कृतिक समूहों में जाति, नृजातीयता अथवा राष्ट्रीयता हो सकती है, किंतु वे पीढ़ी, सामाजिक–आर्थिक वर्ग, काम उन्मुखता, क्षमता और अक्षमता, राजनीतिक और धार्मिक संबंध, भाषा व महिला–पुरुष प्रकरण के गर्भ से भी उत्पन्न होती हैं।

संस्कृतियां परिवर्तनशील होती हैं और उनका संबंध जीवन के प्रतीकात्मक आयाम से होता है। हम जिन समुदायों–समूहों में रहते हैं, उनके सांस्कृतिक संदेश हमें इसकी जानकारी देते हैं कि क्या अर्थपूर्ण अथवा महत्वपूर्ण है, और विश्व में हम क्या हैं और औरों के साथ हमारा क्या संबंध है।

प्रत्येक संघर्ष में एक संस्कृति निहित होती है क्योंकि संघर्षों की उत्पत्ति संबंधों से होती है। यह हमेशा संघर्ष के एक कारक की भूमिका निभाती है – मुख्य कारक के रूप में अथवा उस पर सूक्ष्म या हलका प्रभाव डालते हुए। संस्कृति हर संघर्ष का एक घटक होती है। इस प्रकार किसी संघर्ष के पक्षों के सांस्कृतिक संदर्भों को समझना आवश्यक होता है – विशेष रूप से तब जब वे पक्ष अलग–अलग संस्कृतियों के हों।

विचारधारा और विचारपद्धति

विचारधारा संघर्ष के लिए महत्वपूर्ण होती है। विद्वान जॉन बी. टॉमसन के अनुसार विचारधारा का संबंध शक्ति के असममित या विषम संबंधों को स्थायी बनाए रखने, यानी वर्चस्व को बरकरार रखने की प्रक्रिया से होता है। संघर्ष के प्रभावकारी समाधान के लिए विचारधारा को समझना ज़रूरी होता है। किंतु अभी तक इसे गंभीरता से नहीं लिया गया है। इसे अमूर्त या अतार्किक माना जाता है, इसलिए किसी संघर्ष की ठोस व्याख्याओं और समाधानों की प्रक्रिया में इसकी उपेक्षा की जाती रही है।

विचारधारा किसी समूह या व्यक्ति के मतों अथवा मान्यताओं का एक विन्यास होती है। विचारधारा का अर्थ बहुधा राजनीतिक मान्यताओं का या किसी संस्कृति से संबद्ध विचारों का एक विन्यास होती है। पूंजीवाद, साम्यवाद, समाजवाद, मार्क्सवाद, नाजीवाद, फासीवाद विचारधाराएं हैं। किंतु सभी वाद विचारधारा नहीं होते।

पूंजीवादी गुट और साम्यवादी गुट के बीच संघर्ष बीसवीं शताब्दी के सर्वाधिक प्रसिद्ध संघर्षों में से एक थी, जिसे शीत युद्ध की संज्ञा दी गई। इस शीत युद्ध का अंत सोवियत संघ के विघटन और साम्यवादी गुट्ट वे कमज़ोर पड़ जाने के साथ हुआ।

धर्म

संघर्ष और धर्म के बीच एक स्पष्ट, विज्ञानसम्मत ठोस संबंध कायम करना कठिन है। धर्म की जटिलता और उसके विभिन्न स्तरों पर विचार करने का एक तरीका विभिन्न समाजों और सांस्कृतिक रीति–रिवाजों में धर्म की अलग–अलग भूमिकाओं पर विचार करना है। अर्थात् यह देखा जाना चाहिए कि धर्म के कौन से पहलू किन रूपों में प्रभावी हैं। ये पहलू ऐतिहासिक विरासतों, शक्ति संबंधों, संसाधनों की सुलभता और उन पर नियंत्रण, मानवीय पहचानों, सांस्कृतिक पहलुओं और राजनीतिक दर्शनों से किस प्रकार जुड़े हैं।

लोगों और समूहों के विकल्पों का औचित्य सिद्ध करने में धर्म की भूमिका अहम हो सकती है, और यह तथ्य धार्मिक संघर्ष के मामले में पूर्णतः सत्य है। वस्तुतः, लोग और समूह अकसर कहते हैं कि उनकी मान्यताएं उन्हें किसी संघर्ष के लिए प्रेरित करती हैं।

किंतु, धर्म के प्रति निष्ठाएं और मूल्य यदि कुछ लोगों को संघर्ष के लिए प्रेरित करते हैं, तो कुछ अन्य लोगों को शांति के दूत के रूप में कार्य करने की प्रेरणा भी देते हैं। हाल के शोधों से पता चलता है कि संघर्ष प्रभावित समाजों में भी कई धार्मिक संगठन एक दूसरे की निष्ठा के प्रति वार्तालाप को बढ़ावा देने, तथा परस्पर सहयोग व संघर्ष समाधान की दिशा में दिन–रात कार्य करते हैं।

इस प्रकार संघर्षों में धर्म की भूमिका अहम होती है, जिसे समझने के लिए यह समझना ज़रूरी है कि धर्म क्या है।

पहचान

पहचान का तात्पर्य उन गुणों, मान्यताओं, व्यक्तित्व और अभिव्यक्तियों से है जो किसी व्यक्तित्व अथवा समूह का निर्माण करते हैं। कई क्षेत्रों में पहचान के अंतरों को संघर्ष के एक मुख्य कारण के रूप में देखा जाता है। संघर्ष की मनोविज्ञान की, विशेष रूप से सामाजिक मनोविज्ञान की व्याख्याएं सामाजिक पहचान सिद्धांत (Social identity theory) से उत्पन्न होती हैं। समाजशास्त्र के अनुसार पहचान का संबंध आत्मबोध और आत्म–चेतना से होता है। राजनीति में, पहचान की राजनीति को राष्ट्र और सामुदायिक पहचान की अवधारणाओं में सामंजस्य स्थापित करने के एक अनुसंधान के रूप में देखा जाता है। मानवविज्ञान, इतिहास, साहित्य, चिकित्सा, दर्शनशास्त्र और अन्य विधाओं में पहचान और संघर्ष से उसके संबंध पर विमर्श के लिए कुछ और जोड़ा जाता है।

लोग अपनी पहचान के प्रति अत्यधिक सजग रहते हैं, उनके मन में हमेशा यह विचार रहता है कि वे कौन हैं। वे अपनी सामाजिक और सांस्कृतिक पहचान को हमेशा आगे रखते हैं।

टिप्पणी

पहचान में संस्मरणों, अनुभवों, संबंधों और मूल्यों, आदि का समावेश होता है, जो किसी व्यक्ति में स्व की भावना उत्पन्न करते हैं। ये सब मिलकर उसके मन में धीरे–धीरे इसके प्रति एक भावना जाग्रत करते हैं कि वह कौन है।

पहचान में कई संबंध होते हैं, जैसे एक बच्चे, एक मित्र, एक साझीदार और एक पिता या माता के रूप में लोगों की पहचान। इसमें वे बाहरी अभिलक्षण होते हैं, जिन पर किसी व्यक्ति का नियंत्रण या तो होता नहीं या फिर कम होता है। पहचान में धार्मिक मान्यताएं, नैतिक अभिवृत्तियां और राजनीतिक अभिमत भी होते हैं, जो किसी व्यक्ति के विकल्पों को दिशा देते हैं। पहचान में राजनीतिक अभिमत, नैतिक अभिवृत्तियां और धार्मिक मान्यताएं भी होते हैं, जो किसी व्यक्ति के उन विकल्पों को दिशा देते हैं, जिनका चयन वह दैनिक स्तर पर करता है।

सामाजिक संघर्ष में पहचान की भूमिका अहम होती है, क्योंकि यह आवश्यक है कि लोग और समूह स्वयं को संघर्ष में किस प्रकार देखते हैं। लोगों और समूहों को संघटित करते और व्यक्तिगत तथा सामूहिक आकांक्षाओं को वैधता व औचित्य प्रदान करते हुए पहचान इसमें अंतर करती है कि 'हम' कौन हैं और 'वे' कौन हैं। सामाजिक संघर्ष की प्रक्रिया में पहचान के विभिन्न प्रकार स्वतः उत्पन्न होते हैं और उनमें परिवर्तन भी स्वतः ही होता है। पहचान के विभिन्न रूप संघर्ष और संघर्ष की प्रक्रियाओं पर किस प्रकार प्रभाव डालते हैं, और संघर्षों के भीतर उनकी उत्पत्ति कैसे होती है इसका अवबोध हमें सामाजिक संघर्षों की उत्पत्ति, प्रसार और संभाव्य परिवर्तन से अवगत कराता है।

व्यावहारिक ज्ञान से पता चलता है कि सांस्कृतिक मतभेद संघर्ष की संभावना को बल देते हैं। संस्कृति एक कर सकती है तो बांट भी सकती है, किंतु विद्वानगण इस बात को लेकर प्रायः एकमत नहीं हैं कि राज्यों में पहचान की उत्पत्ति किस प्रकार होती है, कौन सी विशेषताएं सर्वाधिक मुख्य हैं, और संघर्ष कब हो सकता है।

एक न्यायसंगत, निष्पक्ष और समावेश समाज की तलाश में, पहचान वंचितों को उनकी उच्चतम क्षमता को समझने और फलने–फूलने का अवसर देती है।

पहचान की भावना न केवल गर्व और आनंद का बल्कि क्षमता और आत्मविश्वास का स्रोत भी हो सकती है। यह एक आंतरिक शक्ति है जो मन की परतों और खांचों की गहराई में छिपी रहती है। और बाहर भंगिमाओं, गतिविधियों, आचार–व्यवहारों और विचारधाराओं में दिखाई देती है।

पहचान का उपयोग किसी व्यक्ति की स्व की भावना और विश्व से उस स्व के संबंध का वर्णन करने के लिए किया जाता है। यह मनुष्य की एक बुनियादी आवश्यकता है जो लोगों और समूहों को किसी खास सामाजिक संदर्भ में अर्थ और सुरक्षा की भावना व पूर्वानुमेयता प्रदान करती है। 'हम कौन हैं' और हमारे परिवेश में हम कैसे 'हो' सकते हैं और कैसे जीवित रह सकते हैं और सुरक्षित महसूस कर सकते हैं, इसकी एक प्रबल भावना के बिना विश्व से हमारे स्व अथवा समूह का संबंध संकट में पड़ जाएगा।

पहचान के कई प्रकार हैं। इन प्रकारों का संबंध लोगों की अस्तित्वपरक आवश्यकताओं और मूल्यों से होता है। वे समावेशी और एकांतिक अथवा अनन्य हो

सकते हैं; वे पीढ़ियों तक बरकरार रह सकते हैं अथवा बदलते परिवेश के साथ बदल सकते हैं। कोई व्यक्ति अपनी पहचान को कैसे देखता है इसके अनुरूप पहचान के कुछ प्रकार अन्य प्रकारों से अधिक महत्वपूर्ण होते हैं, किंतु यह बात स्थान, काल और परिस्थितियों पर निर्भर करती है। कुछ प्रकार एक दूसरे से गुंथे होते हैं।

मूल्य

मूल्यों की व्याख्या उन प्राथमिकताओं के रूप में की जा सकती है, जिनका संबंध परिणामों या कार्यकलापों के समुचित स्तरों से होता है। इस रूप में मूल्य किसी व्यक्ति की गलत और सही की भावना को दर्शाते हैं। मूल्यों का अभिवृत्तियों और आचरण पर प्रभाव पड़ता है। इनमें नैतिक, धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, भौतिक, सामुदायिक और सौंदर्यबोधी मूल्य आते हैं। मूल्यों को अकसर किसी की पहचान के अंग के रूप में और मूल्यों की चुनौती को पहचान के संकट के रूप में देखा जाता है। लोग, समुदाय और राज्य अकसर अपनी जीवन शैली और राजनीतिक–आर्थिक तंत्र के औचित्य और विशिष्टता को अन्य लोगों, समुदायों और राज्यों के समक्ष बेहतर सिद्ध करने का प्रयास करते हैं, फलतः संघर्ष उत्पन्न होते हैं, जिसमें मूल्य एक प्रमुख घटक होते हैं।

संघर्ष के कारण

संघर्ष के कारण संदर्भ–केंद्रित होते हैं, बहु–प्रयोजनीय और बहु–आयामी। इसके तीन मुख्य कारण इस प्रकार हैं : सामाजिक–आर्थिक, राजनीतिक और सांस्थानिक और प्राकृतिक संसाधन व पर्यावरणीय कारक।

सामाजिक–आर्थिक कारण : असमानता, बहिष्करण और उपेक्षा, सामाजिक एकजुटता का अभाव या क्षरण, ग़रीबी, आदि इसके मुख्य घटक हैं।

राजनीतिक और सांस्थानिक कारण : इसमें राज्य अथवा राष्ट्र की दुर्बल संस्थाएं, विशिष्ट वर्गों का शक्ति संघर्ष और राजनीतिक बहिष्करण, सामाजिक समझौते में टूटन और भ्रष्टाचार, पहचान की राजनीति आते हैं।

प्राकृतिक संसाधन व पर्यावरणीय कारक : इसमें लोभ, जनसंख्या वृद्धि के कारण राष्ट्रीय संसाधनों की कमी, फलस्वरूप पर्यावरण का असुरक्षित होना, संसाधन का अनुचित लाभ आदि शामिल हैं।

इनके अतिरिक्त दो और कारण हैं – आसन्न एवं दूरवर्ती।

युद्ध विचार

युद्ध क्या है?

युद्ध की परिभाषा सामान्यतया राज्यों अथवा राष्ट्रों के बीच हिंसात्मक संघर्ष के रूप में की जाती है।

राष्ट्र कई कारणों से युद्ध में कदम रखते हैं। कहा जाता है कि कोई राष्ट्र तभी युद्ध में प्रवेश करता है जब उसे लगे कि हानियों की तुलना में इसके लाभ अधिक होंगे, और यदि लगे कि युद्ध के सिवाय कोई दूसरा चारा नहीं है। कुछ लोगों का मानना है कि युद्ध मुख्यतः आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक कारणों से लड़े जाते हैं। इसके

विपरीत कुछ अन्य लोगों का कहना है कि आधुनिक युग में कई युद्ध सैद्धांतिक कारणों से लड़े जाते हैं।

टिप्पणी

प्रचलित अर्थ में युद्ध राजनीतिक समूहों के बीच एक संघर्ष है। समाज विज्ञानी इस शब्द का उपयोग सामान्यतया उन्हीं संघर्षों के लिए करते हैं, जो सामाजिक दृष्टि से मान्यताप्राप्त स्वरूपों के अनुरूप हों। वे युद्ध को रीति रिवाज अथवा कानून में मान्यताप्राप्त एक संस्था के रूप में देखते हैं। शक्तिशाली राष्ट्रों के कमज़ोर राष्ट्रों के साथ संघर्ष को आम तौर पर शांति स्थापना, सैन्य अभियान अथवा खोज कहा जाता है, जबकि छोटे राष्ट्रों के साथ बड़े राष्ट्रों के संघर्ष को हस्तक्षेप अथवा प्रतिशोध कहा जाता है। वहीं आंतरिक समूहों के साथ संघर्ष को विद्रोह या बगावत कहा जाता है।

युद्ध राष्ट्रों, सरकारों, समाजों अथवा भाड़े के सैनिकों, बागियों और नागरिक सेनाओं जैसे परासैन्य समूहों के बीच एक तीव्र सशस्त्र संघर्ष है। इसका चित्रण सामान्यतः नियमित अथवा अनियमित सैन्य बलों के उपयोग से चरम हिंसा, आक्रमण और संहार के रूप में किया जाता है। संपूर्ण युद्ध वह युद्ध है जो केवल वैध सैन्य लक्ष्यों तक सीमित नहीं होता और इसके परिणाम व्यापक विभीषिका और जान–माल के नुकसान के रूप में सामने आ सकता है।

युद्ध अध्ययन के कुछ विद्वान युद्ध को एक वैश्विक और मानव स्वभाव के वंशागत पहलू के रूप में देखते हैं, जबकि कुछ अन्य विद्वान इसे विशिष्ट सामाजिक–सांस्कृतिक अथवा पारिस्थितिक परिस्थितियों का परिणाम मानते हैं।

युद्ध सभी युगों में विश्लेषण का एक महत्वपूर्ण विषय रहा है। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में, दो विश्वयुद्धों के परिणाम में और नाभिकीय, जैविक तथा रासायनिक प्रलय की छाया में, शोधकर्ताओं ने इस विषय पर पहले से कहीं अधिक लिखा। युद्ध के स्वरूप को समझना, इसके कारणों, संचालन और रोकथाम के कुछ सिद्धांतों का सृजन करना ज़रूरी है, क्योंकि सिद्धांत मनुष्य की अपेक्षाओं को आकार देते हैं और मानवीय आचरण का निर्धारण करते हैं।

कूटनीति, मतप्रचार आदि की तरह युद्ध किसी राष्ट्र की एक राष्ट्रीय नीति है। अपने लक्ष्यों और महत्वाकांक्षाओं को सिद्ध और अपने राष्ट्रीय हितों को पूरा करने के लिए राष्ट्र इसका सहारा लेते रहे हैं। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को समझने के लिए युद्ध और शांति के प्रश्नों को समझना ज़रूरी होता है; ये वे प्रश्न हैं जिनमें जीवन की समस्या शामिल होती है।

युद्ध शब्द के ऐतिहासिक संदर्भ ने रणनीतिक नेताओं और जनसाधारण के मानस पर एक अमिट छाप छोड़ी है। यह छाप इतनी गहरी है कि कोई व्यक्ति युद्ध को राष्ट्रों के बीच सशस्त्र संघर्ष से इतर किसी विषय के रूप में देखता है।

दर्शनशास्त्र के स्टैनफोर्ड विश्वकोश के अनुसार युद्ध को राजनीतिक समुदायों और राष्ट्रों के बीच एक यथार्थ, सुविचारित और व्यापक सशस्त्र संघर्ष के रूप में देखा जाना चाहिए। मरियम–वेब्स्टर शब्दकोश में इसकी व्याख्या दो राज्यों अथवा राष्ट्रों के बीच सामान्यतः खुली और घोषित सशस्त्र शत्रुतापूर्ण संघर्ष के रूप में की गई है।

टिप्पणी

विद्वानजन कह सकते हैं कि ये परिभाषाएं इस अर्थ में बोधगम्य और सही हैं कि कोई सामान्य व्यक्ति जब युद्ध शब्द सुनता है तो उसके मन में क्या भाव उठते हैं। किंतु, सामरिक दृष्टि से, ये परिभाषाएं इतने सामान्य हैं कि युद्ध की जटिलता और उन कई पक्षों का संदेश नहीं देतीं जो अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में राष्ट्र की सफलता में योगदान करते हैं।

1.5.2 संघर्ष समाधान

संघर्ष समाधान किसी संघर्ष के प्रबंधन और किसी समाधान के समझौते के लिए बातचीत की एक प्रक्रिया है। इसे बेहतर ढंग से दो मुख्य तत्वों संघर्ष प्रबंधन और बातचीत के एक कार्यकारी प्रारूप के रूप में समझा जा सकता है। संघर्ष प्रबंधन किसी संघर्ष में नकारात्मक संवेगात्मक अवस्थाओं के उन संवेगात्मक अवस्थाओं में परिवर्तन के लिए बातचीत की एक प्रक्रिया है जो उस संघर्ष का एक समाधान निकालने का अवसर देती हैं। समझौता वार्ता (Negotiation) वादी और प्रतिवादी पक्षों को उनके मतभेदों के प्रति किसी नतीजे पर पहुंचने में सहायता करने की एक संप्रेषण प्रक्रिया है।

संघर्ष में समझौता वार्ता (Negotiation), बल्कि हित आधारित समझौता वार्ता, हेतु सहयोगशील कार्यनीति के लिए एक विशेष उपागम की आवश्यकता होती है। हित आधारित समझौता वार्ता एक समाकलनात्मक समझौता अपनाने के लिए बातचीत की एक प्रक्रिया है, जो दोनों पक्षों के हितों को पूरा करती है।

सकारात्मक परिणामों की प्राप्ति के लिए संघर्षों के समाधान में दो विशिष्ट तत्व आते हैं – संघर्ष प्रबंधन और समझौता वार्ता। प्रबंधन में अभिवृत्तियों और उन प्रबल नकारात्मक संवेगों का निवारण किया जाता है, जिनका संबंध आम तौर पर संघर्ष की किसी स्थिति से होता है। इसमें मतभेदों का एक आपसी तालमेल कायम करना आता है। इस तत्व को अकसर संघर्ष समाधान कहा जाता है। संघर्ष का समाधान हानिकारक आचरण का शमन और विरोधी अभिवृत्तियों को कम कर किया जा सकता है। किंतु, इस स्थिति में भी संघर्ष के कारण बने रहते हैं, जिन्हें दूर करना आवश्यक होता है। संघर्ष के कम हो जाने पर, दोनों पक्षों को संतुष्ट करने वाले किसी परिणाम पर पहुंचने का अगला चरण समझौता वार्ता अथवा समस्या समाधान की प्रक्रिया शुरू करना है। इस स्थल पर संघर्ष का समाधान हो जाता है, अर्थात् जिस स्थिति के चलते संघर्ष शुरू होता है, उसमें सुधार कर लिया जाता है, ताकि सभी संबद्ध पक्षों के हित पूरे हो सकें।

1.5.3 मध्यस्थता एवं संघर्ष समाधान की सृजनात्मक नीतियां

संघर्ष का संदर्भ

संघर्ष किसी निश्चत समय पर किसी निश्चित क्षेत्र में पनपते हैं और वैश्विक और स्थानीय संदर्भ उन्हें आकार देते हैं। पहले वैश्विक संदर्भ पर विचार करते हुए संघर्ष की किसी भी स्थिति को विभिन्न काल–मानों पर प्रवृत्तियों से जोड़ा जा सकता है : लंबी प्रक्रियाएं, जैसे किसी सामाजिक अथवा अंतर्राष्ट्रीय तंत्र में दीर्घकालिक परिवर्तन,

मध्यवर्ती प्रक्रियाएं, जैसे किसी निर्णय निर्माता का किसी नीति विशेष का निर्धारण करना, और अल्पकालिक प्रक्रियाएं, जैसे निर्णय। इस प्रकार, संघर्ष का कोई न कोई संदर्भ अवश्य होता है, जिसकी किसी संघर्ष के समाधान के लिए जानकारी आवश्यक होती है।

संघर्ष संदर्भ के भीतर होता है और संदर्भ का उस पर प्रभाव पड़ता है, किंतु संघर्ष की अपनी गतिशीलता होती है। संघर्ष का कोई तंत्र सामान्यतया आसपास के सामाजिक परिवेश में निहित होता है, जो संघर्ष को सार्थक ढंग से आकार देता है। पहला, संदर्भ से संघर्ष तक कुछ प्रयोजनार्थक प्रभाव हो सकते हैं – स्पष्ट रूप से कहें तो, जब बाहरी लोग किसी संघर्ष को हवा देते हैं, या फिर समर्थकों को शस्त्रास्त्रों की आपूर्ति करते हैं, अथवा संघर्ष तंत्र के बाहर के कारक प्रयोजनवश संघर्ष पर प्रभाव डाल सकते हैं, उदाहरणस्वरूप उत्पादन के साधनों में आने वाला कोई परिवर्तन जब वर्ग हितों को संघर्ष में डाल देता है।

संघर्ष समाधान की नीतियां

प्रतिस्पर्धी नीति : इस नीति में विरोधी पक्ष के दृष्टिकोण पर विचार किये बिना कोई पक्ष अपने सरोकार को सामने रखता है। यह नीति अत्यंत हठधर्मी होती है, जिसमें सहयोगशीलता की गुंजाइश बहुत कम होती है, इसमें पक्ष का लक्ष्य अपना हित साधना होता है। इस नीति का उपयोग तब किया जाता है जब किसी व्यक्ति को त्वरित कार्रवाई करनी होती है, जब वह ऐसे निर्णय लेता है जो सर्वमान्य नहीं होते, जब वह महत्वपूर्ण समस्याओं का समाधान करना चाहता है या जब किसी व्यक्ति को किसी ऐसी स्थिति में सुरक्षा की ज़रूरत होती है, जिसमें अप्रतिस्पर्धी व्यवहार का लाभ लिया जा सके।

इस नीति का आवश्यकता से अधिक उपयोग हानिकारक होता है। इससे चाटुकारिता की भावना होती है, अर्थात् कमज़ोर पक्ष मजबूत पक्ष की बात मानने को मजबूर होता है। यदि इसका उपयोग बहुत ज्यादा हो तो संबद्ध व्यक्ति गलतियां करने लगता है, जैसे आवश्यक जानकारी के बिना ही कार्य शुरू कर देना, अन्य लोगों के पीठ पीछे उनकी बुराइयां करना, असहमति जताने के लिए भाव–भंगिमाओं का उपयोग करना, हेरा–फेरी करते या दखल देते हुए कार्य से लोगों को भटकाना, आदि। इस नीति के आवश्यकता से अधिक उपयोग से निरंतर तनाव अथवा क्रोध की स्थिति जन्म लेती है और कभी–कभी हिंसात्मक स्थिति भी उत्पन्न हो जाती है।

इस नीति का आवश्यकता से कम उपयोग करना भी हानिकारक होता है। इससे वांछित परिणाम नहीं मिल पाता, अनिश्चय की स्थिति बनती है, कार्य धीमा हो जाता है और लोग सहयोग करना कम कर देते हैं। ऐसी स्थिति में लोग अपने व्यवहार को उचित ठहराने, समस्या पर कार्य करने के लिए एक शर्त के रूप में छूट की मांग करने, छोड़ देने की धमकी देने और निजी तौर पर प्रहार करने लगते हैं।

इस नीति का उपयोग निम्नलिखित स्थितियों में किया जाना चाहिए :

- त्वरित, निर्णायक कार्य के लिए, जैसे आपात स्थिति।
- उन महत्वपूर्ण मामलों में, जब किसी सामूहिक कार्य का क्रियान्वयन करना हो।

- कंपनी के कल्याण के लिए महत्वपूर्ण मामलों, जब संबद्ध व्यक्ति को लगे कि वह सही है।
- अप्रतिस्पर्धी व्यवहार का लाभ लेने वाले लोगों से स्वयं को बचाने के लिए।

टिप्पणी

परिवर्जन नीति (Avoiding Strategy) : इस नीति का उपयोग तब किया जाना चाहिए जब संबद्ध व्यक्ति या अन्य लोगों के सरोकारों की तुष्टि न होती हो। इस नीति में हठधर्मिता और सहयोगशीलता कम होती है। इसका ध्येय समाधान की गति को धीमा करना होता है। इसका उपयोग तनाव कम करने अथवा समाधान में विलंब करने के लिए अपेक्षाकृत कम महत्वपूर्ण मामलों में करना उचित होता है। परिवर्जन की यह नीति तब भी उचित होती है, जब कोई संबद्ध व्यक्ति सत्ता में छोटे पद पर हो और स्थिति पर उसका नियंत्रण कम हो। इसके लिए यह ध्यान रखना ज़रूरी होता है कि कदम कब वापस खींचना है। वहीं इसके लिए कूटनीति का सहारा लेते हुए गंभीर समस्याओं अथवा संवेदनशील क्षेत्रों से बचना सीखना भी ज़रूरी होता है।

इस नीति के आवश्यकता से अधिक उपयोग से वांछित परिणाम नहीं मिलते। आवश्यकता से अधिक उपयोग विचार–विमर्श की प्रक्रिया को किसी फलदायी परिणाम पर पहुंचने से रोक सकता है और कार्यदल को कार्य करने में बाधा पहुंचा सकता है। परिवर्जन नीति का आवश्यकता से अधिक उपयोग करने वाले लोग बदले के भय से खुलकर और निर्भय होकर बोल नहीं सकते। वहीं इससे कार्यदल के सदस्यों में संवाद की कमी आ जाती है।

परिवर्जन नीति का आवश्यकता से कम उपयोग भी हानिकारक होता है। इससे एक तरफ जहां वैमनस्य बढ़ता है वहीं दूसरी तरफ भावनाओं को चोट पहुंचती है। इसके अतिरिक्त, एक साथ कई समस्याओं पर काम करने के कारण कार्य का बोझ अधिक हो सकता है।

इस नीति का उपयोग निम्नलिखित स्थितियों में करना चाहिए :

- जब समस्या छोटी हो, अथवा जब अन्य अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण समस्याओं का समाधान ज़रूरी हो।
- जब संबद्ध व्यक्ति को अपने सरोकारों की तुष्टि की कोई संभावना नहीं दिखाई दे, जैसे जब उसकी शक्ति कम हो या किसी ऐसी स्थिति के प्रति उसे कुंठा हो, जिसे वह बदल नहीं सकता हो, जैसे राष्ट्रीय नीतियां।
- जब किसी संघर्ष का सामना करते समय कोई ऐसी क्षति होने की संभावना हो जो समाधान के लाभों से अधिक गहरी हो।
- जब लोगों को शांत करना हो – तनावों को कम करने के लिए।
- जब सूचना का संग्रह करना किसी आसन्न निर्णय के लाभ से अधिक ज़रूरी हो।
- जब अन्य लोग संघर्ष का समाधान अपेक्षाकृत अधिक प्रभावशाली ढंग से कर सकें।
- जब समस्या किसी अन्य ज़रूरी समस्या की तुलना में ऊपर ऊपर से प्रासंगिक लगे।

अनुकूली नीति (Collaborating Strategy) : यह नीति तब अपनाई जाती है जब दोनों पक्षों को संतुष्ट करना हो। यह अत्यंत प्रभावशील और अत्यंत उपयुक्त नीति है;

टिप्पणी

इसका लक्ष्य ऐसा समाधान होता है जो दोनों पक्षों के अनुकूल हो। इसके समुचित उपयोगों में समाधानों का समेकन, समझ, दृष्टिकोणों का समामेलन, वचनबद्धता और संबंधों में सुधार शामिल हैं। इस नीति का सर्वाधिक समुचित उपयोग एक सामूहिक परिवेश में होता है। इस पद्धति में संघर्ष समाधान को किसी आपसी लाभदायक परिणाम पर पहुंचने के अवसर के रूप में देखा जाता है। इसमें विरोधियों के अंतर्निहित सरोकारों की पहचान करने के साथ–साथ किसी ऐसे विकल्प का पता लगाया जाता है, जो प्रत्येक पक्ष के सरोकारों को पूरा कर सके।

इस नीति का उपयोग निम्नलिखित स्थितियों में किया जाना चाहिए :

- जब अन्य पक्षों की सहमति और वचनबद्धता आवश्यक हो।
- जब परिवेश सहयोगशील हो।
- जब विभिन्न संबद्ध व्यक्तियों के हितों को पूरा करने की ज़रूरत हो।
- जब एक दीर्घकालिक संबंध आवश्यक हो।
- जब संबद्ध व्यक्तियों का कटु अनुभूतियों, वैमनस्य आदि की स्थिति में काम करने की विवशता हो।
- जब संबद्ध लोग संपूर्ण दायित्व लेना नहीं चाहें।
- अनुकूली नीति के लाभ :
- वास्तविक समस्या का समाधान हो जाता है।
- परिणाम लाभदायक होते हैं।
- संबद्ध लोगों के एक दूसरे के प्रति विश्वास और सम्मान सुदृढ़ होते हैं।
- भविष्य में प्रभावशील सहयोग के एक आधार का निर्माण होता है।
- परिणाम दोनों पक्ष साझा करते हैं।
- संबद्ध पक्षों के लिए संघर्ष समाधान का परिणाम कम तनावपूर्ण होता है।
- अनुकूली नीति की कुछ कमियां भी होती हैं।
- एक परस्पर स्वीकार्य समाधान का पता लगाने के प्रति सभी पक्षकारों की प्रतिबद्धता आवश्यक होती है।
- अन्य विधियों की तुलना में अधिक प्रयास और समय की आवश्यकता हो सकती है।
- यदि किसी पक्ष का विरोधी पक्ष में विश्वास न रह जाए, तो संबंध समाप्त हो जाता है। इसलिए एक सहयोगात्मक संबंध बनाए रखने के लिए सभी पक्षों को सहयोगशील प्रयास जारी रखने चाहिए।

मध्यमार्गी (समझौतावादी) नीति (Compromising Strategy) : इस नीति में एक बीच का मार्ग अपनाया जाता है या फिर संबद्ध लोगों के सरोकारों को एक दूसरे से मिला लिया जाता है। यह नीति कुछ हद तक निश्चयात्मक और कुछ हद तक सहयोगशील होती है। इसका लक्ष्य बीच का मार्ग पता लगाना होता है। इस नीति का उपयोग तब किया जाता है, जब दोनों पक्ष समान रूप से शक्तिशाली होते हैं। इस नीति

टिप्पणी

के परिणाम अस्थायी होते हैं और यह तब उपयुक्त होती है जब समय महत्वपूर्ण हो। वहीं, यह प्रतिस्पर्धी और अनुकूली नीतियों की सहायता भी करती है, जब वे स्थिति का समाधान नहीं कर पातीं। इस नीति में वार्तालाप के संचार और उन्हें खुला रखने की क्षमता, दोनों पक्षों के लिए एक निष्पक्ष परिणाम का पता लगाने की क्षमता, संबद्ध पक्षों की इच्छा के कुछ हिस्से का त्याग करने की क्षमता और समस्या के सभी पहलुओं को महत्व देने की क्षमता आती हैं।

इस नीति के आवश्यकता से अधिक उपयोग से दीर्घकालिक लक्ष्यों की पूर्ति में बाधा और विश्वास में कमी आ सकती है। वहीं, इससे एक प्रतिकूल परिवेश का निर्माण हो सकता है।

इसके आवश्यकता से कम उपयोग के फलस्वरूप विरोध बढ़ सकते हैं, शक्ति का जब–तब संघर्ष हो सकता है और समझौता वार्ता अप्रभावी हो सकती है।

इस नीति का उपयोग निम्नलिखित स्थितियों में किया जाना चाहिए :

- जब लक्ष्य बहुत महत्वपूर्ण नहीं हों।
- जब जटिल समस्याओं का अस्थायी समाधान निकालना हो।
- जब समय के दबाव में आवश्यक समाधान निकालने हों।

सामंजस्यपरक नीति (Accommodating Strategy) : यह नीति सरल और सहयोगशील होती है; इसका लक्ष्य स्थिति को स्वीकार कर लेना है। इसमें त्याग की क्षमता, निःस्वार्थ भाव, आदेशों का पालन और सहमति की क्षमता आते हैं। यह नीति कुछ कमज़ोर प्रतीत हो सकती है, किंतु यह किसी छोटे संघर्ष के समाधान का सर्वोत्तम विकल्प हो सकती है। यह समाधान चाहने वाले व्यक्ति के लिए अत्यंत उपयुक्त होती है।

इस नीति के आवश्यकता से अधिक उपयोग के कारण लोग विचारों पर कुछ कम ध्यान देते हैं। लोगों की एक दूसरे की योगदान की भावना में कमी आ जाती है। जो लोग इसका अधिक उपयोग करते हैं उनमें बदलाव की इच्छा कम हो जाती है और वे भविष्य की अनिश्चितताओं को लेकर चिंतित रहने लगते हैं।

इस नीति का उपयोग निम्नलिखित स्थितियों में किया जाना चाहिए :

- जब किसी संबद्ध व्यक्ति को लगे कि आप गलत हैं, अथवा आपका अनुभव कम है या फिर आप में ज्ञान की कमी है।
- जब समस्या किसी संबद्ध व्यक्ति की तुलना में किसी दूसरे संबद्ध व्यक्ति के लिए महत्वपूर्ण हो।
- जब चल रही प्रक्रिया किसी व्यक्ति हित को क्षति पहुंचा सकती हो।
- जब सौहार्द बनाए रखना और किसी प्रकार की अव्यवस्था से बचना ज़रूरी हो।

समाधान की अन्य नीतियां

इन नीतियों में समेकन, सामंजस्य प्रबंधन, संसाधनों का विस्तार, समूहों की औपचारिक संरचना में परिवर्तन, समान लक्ष्यों और उद्देश्यों की पहचान, समस्या समाधान, उच्चतर लक्ष्य, आधिकारिक समादेश, मानवीय चरकारक में परिवर्तन, आदि आते हैं। यहां इनका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है।

टिप्पणी

समेकन (Integration)

यह उन स्थितियों के लिए अति प्रभावकारी नीति है, जिनमें अलग–अलग लक्ष्यों अथवा आदर्शों की अपेक्षा होती है। समेकन का कार्य संघर्ष को समझने और सुझावों के मूल्य का मूल्यांकन करने के लिए आमने–सामने के वार्तालाप और विचार–विमर्श से पूरा किया जाता है। उदाहरणस्वरूप, यह नीति तब उपयोगी होती है, जब दो विभाग प्रमुखों को किसी एक के सुविधाओं के उपयोग पर आपत्ति होती है।

सामंजस्य प्रबंधन (Consensus Management)

यह वह प्रक्रिया है जिसमें सभी के हित में कोई समाधान निकालने और आम सहमति बनाने के लिए लोग एक समूह के रूप में कार्य करते हैं। इसमें निर्णय निर्माण प्रक्रिया में समूह के प्रत्येक व्यक्ति से सहयोग की मांग की जाती है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि सभी की सहमति पर जो निर्णय लिया जाता है, उसके अनुरूप सभी कार्य करते हैं। इस प्रक्रिया में सभी का भाग लेना आवश्यक होता है।

संघर्ष समाधान की सृजनात्मक नीतियां

सुधार के लिए दूसरों के विचारों को सुनना और उनके सुझावों को स्वीकार करना आवश्यक होता है। आप पहले से मन में स्थिर किसी विचार के बिना स्थिति पर चर्चा करते हैं। यह सृजनात्मक समस्या समाधान का आधार है। यह उदारता आपकी अवस्थिति अथवा पूर्व–नियोजित नीति पर ध्यान देने की बजाय आपको सुनने का अवसर देती है। इसलिए, यह और भी आवश्यक हो जाता है कि मध्यस्थता करने वाले संभावना के लिए खुले सत्र का आयोजन करें। अपने मन को शांत करना मध्यस्थता की प्रक्रिया का पहला चरण है, ताकि आप अपने अंतर्मन की आवाज सुन सकें।

सामूहिक या व्यक्तिगत रूप से संघर्ष का समाधान

यह प्रक्रिया संघर्ष के समाधान की सर्वाधिक प्रचलित नीतियों में से एक है। यह एक व्यक्तिगत अथवा सामूहिक गतिविधि है। जब किसी नगर के नगर निगम को सुरक्षा और स्वास्थ्य को लेकर कुछ कार्य करने होते हैं, तब नागरिकों को अकसर सामूहिक रूप से समाधान निकालने और विचार देने को कहा जाता है। सामूहिक समाधान सृजनात्मकता और संघर्ष समाधान की प्रक्रिया का एक मेल है।

मानस चित्रण

यह संघर्ष समाधान की एक उपयोगी सृजनात्मक प्रक्रिया है। मानस मानचित्र विचारों और अवधारणाओं की एक चित्रात्मक प्रस्तुति है। यह सृजनात्मकता और संघर्ष समाधान का एक दृश्य साधन है।

प्रतितथ्यात्मक चिंतन (Counterfactual Thinking)

इस प्रक्रिया में अतीत के निर्णयों पर विचार किया जाता है। यह चिंतन वर्तमान संघर्ष का सामना करने और उसका समाधान निकालने में सहायता करता है। प्रतितथ्यात्मक चिंतन संघर्ष के सृजनात्मक समाधान के सर्वाधिक उपयुक्त उदाहरणों में से एक है। किंतु, इस क्रिया में नकारात्मक संवेगों से बचने का प्रयास किया जाता है। गलती की पुनरावृत्ति से बचने, अवसरों को समझने और अपनी प्रगति का मूल्यांकन करने के लिए

व्यक्ति को अपने अतीत के अनुभवों का उपयोग करना चाहिए। इसमें ध्यान वर्तमान और भविष्य पर केंद्रित किया जाता है।

कल्पना

कल्पना अपने मुख्य अर्थ में एक प्रत्ययात्मक प्रक्रिया है, जिसमें सामान्य नियम और प्रत्यय विशिष्ट उदाहरणों (यथार्थ अथवा ठोस) के उपयोग और वर्गीकरण या अन्य विधियों से लिये जाते हैं। यह सृजनात्मकता और संघर्ष समाधान में अत्यंत सहायक होती है।

अपनी प्रगति जांचिए

7. "संघर्ष दूसरे अथवा अन्य लोगों की इच्छा का विरोध, उसे पूरा होने से रोकने या करने या दबाने का सुविचारित प्रयास है।" यह परिभाषा किसने दी?

   (क) प्रोफेसर माइकल निकॉलसन (ख) ए.डब्ल्यू. ग्रीन

   (ग) प्रोफेसर एम. अफजलुर (घ) फेयरचाइल्ड

8. संघर्ष समाधान की किस नीति के अंतर्गत विरोधी पक्ष के दृष्टिकोण पर विचार किए बिना कोई पक्ष अपने सरोकार को सामने रखता है?

   (क) परिवर्तन नीति (ख) अनुकूली नीति

   (ग) प्रतिस्पर्धी नीति (घ) मध्यमार्गी (समझौतावादी) नीति

1.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (घ)
2. (ख)
3. (क)
4. (ख)
5. (ग)
6. (क)
7. (ख)
8. (ग)

1.6 सारांश

संसार में शांति बहुत ज़रूरी है। अपने कार्यों को पूरा करने के लिए हमें इसकी आवश्यकता होती है। हर धर्म अपने अनुयायियों को शांति का पालन करने की सीख देता है। शांति के बिना कोई भी राष्ट्र विकास नहीं कर सकता। यह मनुष्य को मानवता का पाठ पढ़ाती है। इसके बिना किसी भी व्यक्ति के लिए सही अर्थों में जीना संभव नहीं है, इसलिए हर कोई शांति चाहता है।

टिप्पणी

प्रतिबल परिस्थितियों में परिवर्तन अथवा किसी अशुभ या भयसूचक स्थिति के प्रति किसी व्यक्ति की प्रतिक्रिया है। इसे किसी बाहरी घटना अथवा आवश्यकता को लेकर चिंता के प्रति एक निजी प्रतिक्रिया के रूप में देखा जा सकता है। वस्तुतः जब कोई व्यक्ति अपनी समस्या का समाधान नहीं कर पाता, तब उसे प्रतिबल अपने प्रभाव में ले लेता है।

संसार के प्रायः हर हिस्से को व्यापक स्तर पर प्रचंड और कष्टप्रद संघर्षों का सामना करना पड़ा है। संघर्ष प्रभावित ज्यादातर समाजों में ये संघर्ष सीमित रूप से उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों के वितरण में असमानता को लेकर होते रहे हैं। इसलिए संवृद्धि और विकास से संबद्ध भोजन और आवास की बुनियादी भौतिक आवश्यकताओं तथा मनुष्य की बुनियादी शारीरिक आवश्यकताओं को पूरा करने के प्रयास आवश्यक हैं। अलग–अलग राष्ट्रों में शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व के महत कार्य को पूरा करने के लिए, 'शांति की संस्कृति' का सृजन करते हुए मानव समाज के सभी स्तरों पर शांति शिक्षा आवश्यक है।

मानव जाति की प्रगति व विकास के लिए शांति आवश्यक है जिसे बनाए रखने हेतु मानव मूल्य आवश्यक होते हैं। वे मानव आचरण के लिए एक मार्गदर्शक का कार्य करते हैं। कुछ मूल्य अंतर्भूत या स्वाभाविक होते हैं, जैसे प्रेम, सत्य। मानव जीवन निर्बाध गति से चलता रहे इसके लिए शांति आवश्यक है और शांति को बनाए रखने में इन मूल्यों का महती योगदान होता है।

भारत के संविधान की प्रस्तावना में उसके उद्‌देश्य समाहित हैं, जिनमें समस्त देश में सद्‌भाव का प्रसार करना मुख्य है। जैसा कि हम जानते हैं, संविधान सर्वोच्च कानून है, जिसका पालन करना देश के प्रत्येक नागरिक के लिए अनिवार्य है। एक महान राष्ट्र के निर्माण में सहायता हेतु यह नागरिकों के बीच अखंडता और एकता बनाए रखने में सहायता करता है। इस संविधान के कुछ महत्वपूर्ण मूल्य हैं, जो इसकी आत्मा को आकार देते हैं। ये मूल्य इसके विभिन्न अनुच्छेदों और प्रावधानों में निहित हैं।

शांतिपूर्ण समाजों का सृजन करने और उन्हें बनाए रखने वाले कारकों को समझे बिना, कार्यक्रमों का गठन, नीतियों का निर्धारण अथवा शांतिपूर्ण एवं प्रत्यास्थी समाजों के निर्माण के लिए आवश्यक संसाधनों की समझ संभव नहीं है। शांति विश्व के समक्ष खड़ी अनेकानेक जटिल चुनौतियों को समझने और दूर करने का एक ढांचा प्रदान करती है।

अंतर–सांस्कृतिक सद्‌भाव समाजों में और राष्ट्रों के बीच शांति व अक्षोभ का प्रसार करने का एक माध्यम है। व्यक्तिगत और सांस्थानिक स्तर पर अलग–अलग संस्कृतियों के लोगों के बीच एक अंतर्संबंध होता है, जो राष्ट्रों की राज्यव्यवस्था में एक सकारात्मक छवि प्रस्तुत करता है। अंतर–सांस्कृतिक सद्‌भाव शांतिपूर्वक जीने और जीने देने के सिद्धांत को बढ़ावा देती है।

आधुनिक भारत का निर्माण करने में और शांति–सद्‌भाव बनाए रखने में जिन विचारकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है उनमें स्वामी विवेकानंद, महामना मदन मोहन

मालवीय, गुरुदेव रविंद्र नाथ टैगोर, महात्मा गांधी, महर्षि अरविंद, स्वामी दयानंद के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन विचारकों ने भारतीय शिक्षा को अपने विचारों से प्रभावित किया है। टैगोर ने विश्व भारती की स्थापना करके शिक्षा के क्षेत्र में एक नई विचारधारा का सूत्रपात किया। महात्मा गांधी की नवीन शिक्षा योजना राष्ट्र के लिए उनकी सर्वोत्तम देन है। इन सभी विचारकों ने राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शांति स्थापना में अपना महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया है।

संघर्ष केवल लोगों में ही नहीं, बल्कि देशों, राजनीतिक दलों और राज्यों के बीच भी उत्पन्न हो सकता है। यदि किसी मामूली से संघर्ष पर समय रहते काबू नहीं किया जाए, तो देशों के बीच कोई बड़ा युद्ध हो सकता है, दरार पैदा हो सकती है, जिससे अशांति और असामंजस्य पनप सकता है।

संघर्ष समाधान किसी संघर्ष के प्रबंधन और किसी समाधान के समझौते के लिए बातचीत की एक प्रक्रिया है। इसे बेहतर ढंग से दो मुख्य तत्वों संघर्ष प्रबंधन और बातचीत के एक कार्यकारी प्रारूप के रूप में समझा जा सकता है। संघर्ष प्रबंधन किसी संघर्ष में नकारात्मक संवेगात्मक अवस्थाओं के उन संवेगात्मक अवस्थाओं में परिवर्तन के लिए बातचीत की एक प्रक्रिया है जो उस संघर्ष का एक समाधान निकालने का अवसर देती हैं। समझौता वार्ता (Negotiation) वादी और प्रतिवादी पक्षों को उनके मतभेदों के प्रति किसी नतीजे पर पहुंचने में सहायता करने की एक संप्रेषण प्रक्रिया है।

1.7 मुख्य शब्दावली

- **प्रतिबल** : तनाव, दबाव।
- **ग्रस्त** : पीड़ित।
- **पलायन** : छोड़ना।
- **स्फूर्ति** : ताजगी, नयापन।
- **विश्रांति** : शिथिलता।
- **सत्ता** : शासन, शक्ति।
- **फिदायीन** : आत्मघाती।
- **करुणा** : दया।
- **अतीत** : भूतकाल।
- **प्रतिकार** : विरोध।
- **संधारणीय** : सतत्।
- **प्रबल** : जोरदार।
- **बेसिक** : बुनियादी, प्राथमिक।
- **चाटुकारिता** : चापलूसी।

1.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

टिप्पणी

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. शांति क्या है? परिभाषित कीजिए।
2. शांति की चुनौतियां कौन–सी हैं? वर्णित कीजिए।
3. शांति की स्थापना में उत्तरदायी कारक कौन से हैं? लिखिए।
4. आतंकवाद से क्या तात्पर्य है? स्पष्ट कीजिए।
5. शांति के मूल्यों का वर्णन कीजिए।
6. शांति शिक्षा के प्रमुख विचारक कौन हैं? उल्लेख कीजिए।
7. संघर्ष से आप क्या समझते हैं? परिभाषित कीजिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. शांति की अवधारणा समझाते हुए शांति की प्रमुख चुनौतियों का उल्लेख कीजिए।
2. शांति के संवैधानिक मूल्यों की व्याख्या कीजिए।
3. शांति शिक्षा के प्रमुख दृष्टिकोणों का विवेचन कीजिए।
4. शांति शिक्षा में गांधी, टैगोर व दलाई लामा का क्या योगदान रहा? समीक्षा कीजिए।
5. संघर्ष समाधान हेतु सृजनात्मक नीतियों का विश्लेषण कीजिए।
6. निम्न पर टिप्पणी कीजिए–
   (क) अपराध
   (ख) हिंसा
   (ग) अंतर–सांस्कृतिक सद्भाव

1.9 सहायक पाठ्य सामग्री

- Burnley, Jen 1988 Developing Skills for International Understanding Journal of the WCCI, vol.2 (1) June 1988, PP.108-112
- Balassoriya A 5 2001 Learning the way to Peace-A Teacher's Guide to Peace Education, Unesco, New Delhi.
- Carson, Terrance R. and Gideonse, Hendrik D. 1987 Peace Education and the Task for Peace Educators, WCCI.
- Gangrade K.D. 2001 Religion and Peace: A Gandhi Perspective, Gandhi Smriti and Darshan Smriti, New Delhi.
- Kaur B. 2006 Teaching of Peace and conflict and Pride- school Histories of the Freedom Struggle in India, Penguin Books India, New Delhi.

- Kumar K. 2006 Peace Lines, Penguin Publications, New Delhi.
- Kumar K 2007 Shanti Shiksha Aur Gandhi (In Hindi) Maharishi Valmiki College of Education, Delhi University.
- Mutart, Edmund, 1987 Pathways to Peace, Journel of WCCI (2) PP 33-36.
- Obach, Mifrando ,1987 Peace Education and children. A Structural Dialogue About Global Responsibility, Journael of WCCI, 3 (2) 48-67.
- Prasad D 2005 Education for Living Cretively and Peacefully, Spark India Hyderabad.

इकाई 2 शांति शिक्षा का शिक्षाशास्त्र

टिप्पणी

संरचना

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 पाठ्यक्रम प्रक्रियाओं पर महत्वपूर्ण चिंतन
 2.2.1 विभिन्न समूहों– लिंग, जाति, संस्कृति के लिए कक्षा के बाहर स्वस्थ अनुशासन पद्धतियां
 2.2.2 कक्षा के बाहर शिक्षा
 2.2.3 अनुशासन के लिए दंडात्मक की अपेक्षा सुधारात्मक दृष्टिकोण
2.3 शांति शिक्षा का महत्वपूर्ण शिक्षाशास्त्र
 2.3.1 स्कूल स्तर पर तनाव, परीक्षा भय, शारीरिक दंड, हिंसा और संघर्ष को दूर करने के शैक्षणिक कौशलों एवं रणनीतियों के बारे में जागरूकता
 2.3.2 शैक्षिक, व्यक्तिगत, सामाजिक और सांस्कृतिक विषयों से संबंधित व्यवहार में करुणा, प्रेम, देखभाल का समावेशन
 2.3.3 शांति के मूल्यों को स्पष्ट करने हेतु पाठ्यपुस्तक सामग्री का प्रयोग
2.4 शांति शिक्षक बनना
 2.4.1 संवाद के लिए श्रवण कौशल का विकास
 2.4.2 संभाषणमूलक (संवाद के लिए) श्रवण प्रक्रिया
 2.4.3 श्रवण कौशल का संवर्धन व विकास
 2.4.4 भाव और अभिव्यक्ति की चेतना का विकास
 2.4.5 सामाजिक–आर्थिक, सांस्कृतिक, तथा लिंग और जाति भेद के प्रति संवेदनशीलता
 2.4.6 संवेगात्मक सहायता के कौशल
2.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.6 सारांश
2.7 मुख्य शब्दावली
2.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.9 सहायक पाठ्य सामग्री

2.0 परिचय

शांति शिक्षा से मानवीय चेतना में शांति के मार्गों के प्रति प्रतिबद्धता का सृजन करने की आशा की जाती है। जिस प्रकार चिकित्सा महाविद्यालय में कोई चिकित्सक सीखता है कि बीमारों की सेवा कैसे की जाए, उसी प्रकार शांति शिक्षा की कक्षाओं में छात्र सीखते हैं कि हिंसा के कारण उपजी समस्याओं का समाधान कैसे किया जाए। सामाजिक हिंसा और युद्ध का वर्णन रोग विज्ञान के अनुसार, रोग के एक रूप में किया जा सकता है। शांति शिक्षा में संघर्षों का अहिंसात्मक ढंग से संचालन करने के कौशलों की शिक्षा देते हुए और संघर्षों के शांतिपूर्ण समाधान की आकांक्षा का सृजन करते हुए हिंसा के बुरे परिणामों के विरुद्ध छात्र–छात्राओं को शिक्षा देने का प्रयास किया जाता है। शांति के शिक्षक शांति की एक चेतना का विकास करते हुए हिंसा को रोकने हेतु शिक्षण कौशलों का उपयोग करते हैं, जो एक न्यायसंगत और स्थायी भविष्य का आधार प्रदान कर सकें।

प्रस्तुत इकाई में शांति शिक्षा के लिए शिक्षाशास्त्र के अंतर्गत पाठ्यक्रम प्रक्रियाओं पर महत्वपूर्ण चिंतन, कक्षा के बाहर शिक्षा, स्कूल स्तर पर तनाव, परीक्षा भय, शारीरिक

दंड और संघर्ष आदि के शैक्षिक कौशल एवं रणनीतियों, शांति शिक्षक बनने की प्रक्रिया आदि तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है।

टिप्पणी

2.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- शांति शिक्षा की पाठ्यक्रम प्रक्रियाओं को समझ पाएंगे;
- लिंग, जाति, संस्कृति, आदि विभिन्न समूहों के लिए अनुशासन पद्धतियों को जान पाएंगे;
- स्कूल स्तर पर तनाव, परीक्षा भय, शारीरिक दंड, हिंसा और संघर्ष को दूर करने के शैक्षिक कौशलों को समझ पाएंगे;
- शांति के मूल्यों को स्पष्ट करने हेतु पाठ्यसामग्री के प्रयोग के बारे में जान पाएंगे;
- शांति शिक्षक की भूमिका के बारे में जान पाएंगे।

2.2 पाठ्यक्रम प्रक्रियाओं पर महत्वपूर्ण चिंतन

भारत में शिक्षा, जाति और संस्कृति के बीच एक गहरा संबंध है। आज भी देश के भीतर कई समुदायों में बच्चों को स्कूल भेजने की कोई परंपरा नहीं है। इसके अतिरिक्त, ये परंपराएं उन स्थापित सामाजिक मानकों के साथ चलती हैं, जो बाल श्रम और स्कूल से वंचित बच्चों की अनदेखी करते हैं। स्कूल में भी लिंग, जाति, आयु और सामाजिक स्थिति सब मिलकर शिक्षकों की पहचान को आधार देते हैं और इन कारकों का शिक्षकों के विचारों, अध्यापन–कला, व्यवहार व अभ्यास और छात्रों के साथ परस्पर क्रियाओं पर प्रभाव पड़ता है। इन सामाजिक कारकों का प्रभाव छात्रों पर भी पड़ता है। अकरलॉफ और क्रैंटन के अनुसार किसी व्यक्ति को लाभ तब मिलता है, जब उसके या फिर दूसरों के कार्यकलाप उसकी 'आत्म–छवि' को प्रखर करते हैं। इस 'आत्म–छवि' या पहचान का संबंध किसी व्यक्ति के सामाजिक परिवेश से होता है, जहां लोग, जैसे छात्र एवं शिक्षक, उन सामाजिक संदर्भों में स्वयं को या फिर अन्य लोगों को जोड़कर देखते हैं, जिनमें महिला, जाति, नृजाति और सांस्कृतिक प्रयोजन शामिल होते हैं। उच्च या निम्न सामाजिक स्थिति के अनुरूप लोग लाभ प्राप्त करते हैं या उससे वंचित रह जाते हैं। इस प्रकार, जो छात्र स्कूल की 'सामाजिक पृष्ठभूमि' और उसके 'आदर्श छात्र' की छवि के अनुरूप होते हैं, उन्हें स्कूल का समर्थन मिलता है और जो इन दोनों बिंदुओं के अनुरूप नहीं होते वे इस समर्थन से वंचित रह जाते हैं।

हालांकि आरंभिक शोधों से पता चलता है कि छात्रों के परिणामों के निर्धारण में स्कूल के सहयोग की भूमिक कम होती है, किंतु परवर्ती शोध संकेत देते हैं कि स्कूलों की भूमिका अहम होती है। शिक्षा की प्रक्रियाओं के लगभग सभी समीक्षक, वे चाहे विद्वान हों, या स्कूल के प्रशासक, नीति–निर्धारक हों अथवा माता–पिता, शैक्षिक सफलता में शिक्षक की गुणवत्ता को सर्वाधिक महत्वपूर्ण सांस्थानिक निर्धारक मानते हैं। किंतु, इस बात पर पर्याप्त बहस जारी है कि शिक्षक के कौन से पक्ष और विशेषताएं या अभिलक्षण वास्तव में महत्वपूर्ण हैं।

यदि शिक्षक और छात्रों की जनसांख्यिकीय विशेषताएं या अभिलक्षण समान हों, तो प्रभाव नानाविध हो सकते हैं और छात्रों के शैक्षिक परिणामों में सुधार हो सकता है। इन प्रभावों में एक ऐसा भी होता है, जिसे अनुकरणीय प्रभाव कहा जाता है। इसके अनुसार छात्र अपने कार्य में अधिक से अधिक रुचि ले सकते हैं, उनके आचरण में सुधार हो सकता है और किसी ऐसे शिक्षक से शिक्षा प्राप्त करने पर बेहतर प्रदर्शन कर सकते हैं, जो समान लिंग, जाति और धर्म के हों – अर्थात् यदि बालक हों तो पुरुष शिक्षक और बालिकाएं हों तो महिला शिक्षक।

एक अन्य तरीका जिसमें शिक्षकों की जनसांख्यिकीय विशेषताएं या अभिलक्षण छात्रों की पढ़ाई की गतिविधियों और परिणामों में सुधार ला सकती हैं, वह है भेदभाव के प्रति नकारात्मक सोच। यह वह स्थिति है, जिसमें शिक्षक छात्रों के किसी विशेष सामाजिक समूह या वर्ग के होने के कारण उनके साथ अलग तरह से व्यवहार करते हैं। भेदभाव न भी हो रहा हो, तो भी छात्रों का प्रदर्शन इसलिए खराब हो सकता है क्योंकि उनके मन में यह भय बना रहता है कि उनके साथ भेदभाव होगा। इस अवस्था के चलते छात्र बेहतर या कमतर परिणाम देते हैं क्योंकि वे इस अपेक्षा के प्रति प्रतिक्रिया करते हैं।

2.2.1 विभिन्न समूहों– लिंग, जाति, संस्कृति के लिए कक्षा के बाहर स्वस्थ अनुशासन पद्धतियां

लिंग, जाति, संस्कृति, आदि विभिन्न समूहों के लिए अनुशासन पद्धतियों को निम्न बिंदुओं के तहत क्रमशः समझा जा सकता है–

- **लिंग**

भारतीय शिक्षा प्रणाली में लैंगिक स्थिति महिला पूर्वाग्रह गहरे तक जमा हुआ है – विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में – जहां स्कूलों–कॉलेजों में बालिकाओं के साथ बालकों से भिन्न व्यवहार किया जाता है। उन्हें उतने अवसर भी नहीं मिलते जितने कि उनके बालक सहपाठियों को मिलते हैं। वर्ष 1996 में संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम की महिला विकास सूची में भारत का स्थान 103 से 107 था जो वर्ष 2007 में घटकर 114–115 पर पहुंच गया। इससे स्पष्ट है कि भारत में पुरुषों की तुलना में महिलाओं को शिक्षा के अवसर कम मिलते हैं और शिक्षा की यह कमी केवल समता के दृष्टिकोण से नहीं बल्कि आर्थिक एवं सामाजिक अक्षमता की दृष्टि से भी चिंता का विषय है। पूर्व में हुए कुछ शोधों से संकेत मिलता है कि उर्वरता, शिशु स्वास्थ्य और शिशु मृत्यु दर जैसे महत्वपूर्ण विषयों के लिए महिला शिक्षा पुरुष शिक्षा से अधिक आवश्यक है, और शिक्षा में महिला–पुरुष अंतर को दूर करने के लिए इस पर बल दिया जाना चाहिए। शोधों में विकासशील देशों में इस कल्पना के साथ महिला शिक्षकों के पक्ष में तर्क दिया गया है कि उनकी सहभागिता के कारण कक्षा में बालिकाओं की संख्या बढ़ेगी और वे बेहतर प्रदर्शन भी करेंगी। इस विचार के आलोक में भारत में अधिक से अधिक महिला शिक्षकों की नियुक्ति पर बल दिया गया है और दिया जा रहा है।

- **जाति**

भारत में जाति प्रथा को एक अति व्यवस्थित सामाजिक सोपान के रूप में चित्रित किया जा सकता है, जिसमें अलग–अलग सामाजिक स्थिति और सामाजिक अर्थ के साथ

टिप्पणी

लोगों के विशाल अंतर्विवाही समूह निहित होते हैं। जाति प्रथा के मूल पारंपरिक व्यवसायों से जुड़े हैं, जिसके आधार इस प्रथा का चार वर्गों में वर्गीकरण किया गया है। पांचवें वर्ग को, जिसे पहले 'अछूत' कहा जाता था, इतना गौण माना जाता था कि उसे प्रथा में स्थान नहीं दिया गया। इस वर्ग को आज 'अनुसूचित जाति' की औपचारिक और तटस्थ संज्ञा दी गई है। यह वर्ग सामाजिक, शैक्षिक और आर्थिक स्तर पर पिछड़ा है। भारत के संविधान में जाति प्रथा का कोई स्थान नहीं है, किंतु यह आज भी जारी है – विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में। अभी हाल तक उच्चतर वर्ग के लोग अपने घरों पर उन्हें अपने साथ बैठने की अनुमति नहीं देते थे – वे या तो खड़े रहते थे या फिर जमीन पर बैठते थे। शिक्षा में निम्न जाति के बच्चों की उपस्थिति कम होती है जिसका कारण रोजगार में भेदभाव को माना जाता है। इसके चलते पढ़ाई–लिखाई के प्रति निम्न जाति के बच्चों और माता–पिता की रुचि कम हो सकती है और ये बच्चे स्कूल में अच्छा करने को लेकर अपेक्षित प्रयास भी नहीं करते। किंतु, निम्न जाति की पृष्ठभूमि वाले लोगों के लिए सार्वजनिक क्षेत्र की सेवाओं में आरक्षण ने इन लोगों की आर्थिक सुरक्षा सुनिश्चित की है, जिसके फलस्वरूप शिक्षा के प्रति उनका लगाव बढ़ा है। इस प्रकार जाति और शिक्षा के बीच संबंध अनुभवाश्रित है।

- **संस्कृति सापेक्ष शिक्षा की नीतियां**

बीते कुछ दशकों के दौरान, छात्र–छात्राओं, उनके अनुभवों, शिक्षा–दीक्षा और पृष्ठभूमियों में बदलाव आया है। आज कक्षाओं में अलग–अलग जातियों, संस्कृतियों और सामाजिक– आर्थिक स्थितियों के परिवारों पर ध्यान दिया जाने लगा है। ऐसे में, इन छात्र–छात्राओं को शिक्षक जिस प्रकार शिक्षा दे रहे हैं, उसमें उन्हें भी सुधार लाना चाहिए। शिक्षा में परिवर्तन की इन पद्धतियों में एक संस्कृति अनुकूली शिक्षा की पद्धति है।

संस्कृति सापेक्ष शिक्षा क्या है?

संस्कृति सापेक्ष शिक्षा अध्यापन की एक कला है, जिसमें शिक्षा के सभी पहलुओं में छात्र–छात्राओं के सांस्कृतिक संदर्भों को शामिल किया जाता है। शिक्षा की परंपरागत नीतियों में शिक्षक–छात्र गतिविधि पर बल दिया जाता है : शिक्षक विशेषज्ञ होते हैं और मानकीकृत परीक्षाओं के अनुकूल पाठ्यक्रम का सख्ती से पालन करते हैं, जबकि छात्र–छात्राएं ज्ञान अर्जन करते हैं। यह पद्धति पुरानी पड़ चुकी है।

आज कक्षाएं विविधतापूर्ण हैं। कक्षाओं में किसी एक नहीं बल्कि नानाविध पृष्ठभूमियों के छात्र–छात्राएं होते हैं, इसलिए शिक्षा में भी बदलाव जरूरी है। इसे व्यक्तिगत व सांस्कृतिक अनुभवों तथा उनके पूर्व ज्ञान पर आधारित होना चाहिए। इसे न्यायोन्मुखी होना चाहिए तथा इसमें आज के सामाजिक संदर्भ को जोड़ा जाना चाहिए। संस्कृति सापेक्ष शिक्षा का यही अर्थ है।

शिक्षा की संस्कृति सापेक्ष और परंपरागत नीतियां

संस्कृति सापेक्ष शिक्षण पद्धति में माना जाता है कि पारंपरिक पाठ्य सामग्री के साथ कुछ गलत नहीं है, किंतु इसमें विश्व की अलग–अलग संस्कृतियों के साहित्यों और अलग–अलग लेखकों के लेखनों के समावेश करने का प्रयास किया जाता है। ऐसे में छात्र–छात्राएं जो कुछ पढ़ रहे होते हैं, उसमें उन्हें केवल पश्चिमी जगत की संस्कृति

नहीं बल्कि उनकी अपनी संस्कृति भी दिखाई दे सकती है। शिक्षा अधिक से अधिक प्रयोगात्मक, अधिक से अधिक क्रियाशील होती है। इसमें शिक्षक छात्र–छात्राओं को एक वैश्विक, बहुसांस्कृतिक समुदाय से अवगत कराते हैं।

टिप्पणी

संस्कृति सापेक्ष शिक्षा महत्वपूर्ण क्यों है?

संस्कृति सापेक्ष शिक्षा आज विशेष रूप से प्रासंगिक है। मुख्य धारा की शिक्षा में आज के छात्रों के यथार्थों को स्थान नहीं दिया गया है। संस्कृति सापेक्ष शिक्षा केवल उनके लिए नहीं है, जो उच्च और मध्य वर्गों, अंग्रेजी बोलने वाले परिवारों से आते हैं – यह प्रत्येक व्यक्ति के लिए शिक्षा की एक नीति है। यदि इस शिक्षा की समुचित व्यवस्था हो, तो यह क्रांतिकारी हो सकती है। शिक्षा की संस्कृति सापेक्ष नीतियों के कुछ महत्वपूर्ण लाभ इस प्रकार हैं :

- छात्रों में पहचान की भावना मजबूत होती है
- कक्षा में समानता व समावेशन को बढ़ावा मिलता है
- पाठ्य सामग्री में छात्र–छात्राओं की भागीदारी होती है
- क्रांतिक चिंतन को बल मिलता है

शिक्षकों के लिए संस्कृति सापेक्ष शिक्षण की कुछ महत्वपूर्ण नीतियां

छात्र–छात्राओं के पिछले ज्ञान को जाग्रत करें : छात्र खाली स्लेट नहीं होते, वे जब कक्षा में आते हैं, तब उनके अपने अनेकानेक अनुभव होते हैं। शिक्षकों को उनके पूर्व ज्ञान का उपयोग करने के लिए उन्हें बढ़ावा देना चाहिए ताकि वे समूह चर्चा में सहयोग कर सकें, जो उन्हें शिक्षा का एक आधार प्रदान करती है। शिक्षा में पढ़ाये जा रहे साहित्य से भिन्न कोई पद्धति अपनाना इसका एक उदाहरण है।

शिक्षा को प्रासंगिक बनाएं : शिक्षा को अधिक से अधिक प्रासंगिक और सार्थक बनाने के लिए पाठ्यक्रम के पाठों को छात्रों के सामाजिक समुदायों से जोड़ें। उदाहरणस्वरूप, यदि आप इतिहास का कोई अध्याय पढ़ा रहे हों, तो इस पर चर्चा करें कि आज यह आपके स्कूल अथवा आपके समुदाय में आवश्यक क्यों है।

छात्रों को उनकी सांस्कृतिक पूंजी का लाभ लेने को बढ़ावा दें : सभी छात्र एक ही पृष्ठभूमि के नहीं होते, इसलिए उन छात्रों को प्रोत्साहित करना आवश्यक होता है, जो अपनी बात कह नहीं सकते। उनके अनुभवों – उनकी सांस्कृतिक पूंजी – को जाग्रत करना आवश्यक होता है। उदारहणस्वरूप, शिक्षक को कक्षा में पढ़ने के लिए कोई ऐसी पुस्तक लेनी चाहिए, जिसमें ऐसे छात्र–छात्राएं अपना तादात्म्य जोड़ सकें और उन्हें लगे कि वे विशेषज्ञता हासिल कर सकते हैं।

अपने कक्षा विन्यास पर पुनर्विचार करें : अपनी कक्षा की पुस्तकालय में पुस्तकों की एक सूची बनाएं, जिनमें विभिन्न जातियों के लेखकों की पुस्तकें हों। उनमें नगरीय और उपनगरीय दोनों परिवारों की पुस्तकें होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त, दीवारों पर जो पोस्टर आपने चिपकाएं हों उन पर भी विचार करें। ये छोटी–छोटी चीजें कक्षा को अधिक से अधिक संस्कृति सापेक्ष बनाती हैं।

अपनापन कायम करें : शिक्षकों को अपने छात्रों से अपनापन कायम करना चाहिए ताकि वे स्वयं को सम्मानित महसूस करें। इस प्रकार का संबंध कायम करने से उन्हें

कक्षा में समुदाय बनाने और एक दूसरे को समझने में सहायता मिलती है, जो बहुत ही जरूरी है।

टिप्पणी

2.2.2 कक्षा के बाहर शिक्षा

क्षेत्र शिक्षा अथवा अध्ययन यात्रा की अवधारणा शिक्षा प्रणाली में कुछ वर्षों पूर्व शामिल की गई। इसके पूर्व, शिक्षा मुख्यतः कक्षा तक सीमित थी। आज, परिदृश्य में इतना बदलाव आ चुका है कि छात्रों से उनके अंतर्वैयक्तिक कौशलों, आत्म–चेतना और संवाद कौशलों में सुधार की अपेक्षा की जाती है। यही कारण है कि कक्षा के बाहर शिक्षा का महत्व उत्तरोत्तर बढ़ रहा है। यह स्पष्ट है कि छात्र कक्षा के बाहर की गतिविधियों से सरलता से कौशल सीख सकते हैं।

कक्षा के बाहर शिक्षा की गतिविधियां छात्र–छात्राओं का ध्यान कक्षा की शिक्षा से खींच सकती हैं। किंतु, हाल के एक शोध के अनुसार कक्षा के बाहर के अनुभव और गतिविधियां कक्षा की शिक्षा पर अधिक से अधिक ध्यान देने के साथ–साथ अन्य कौशलों जैसे नेतृत्व, क्रांतिक चिंतन और तर्कशक्ति में सुधार लाने में भी सहायता करती हैं। कार्य अथवा प्रयोग–आधारित शिक्षा छात्रों की सकारात्मक सोच में सुधार लाने में सहायता करती है।

कार्य अनुभव छात्रों को यथार्थ जीवन की समस्याओं के लिए समय रहते तैयार होने के अवसर देता है। कक्षा के बाहर की गतिविधियों से वे बहुत सी बातें सीख लेने में सफल होते हैं।

कक्षा के बाहर अनुशासन की स्वस्थ पद्धतियां

आज के शिक्षा विशेषज्ञ माता–पिता को उनके बच्चों अथवा आश्रितों को कक्षा के बाहर शिक्षा के अवसर देने की सलाह देते हैं। यहां उल्लेख आवश्यक है कि 'कक्षा के बाहर शिक्षा' एक व्यापक पदावली है, जिसकी कोई निश्चित सीमा नहीं है। बाहरी खेल, परिवेशी और पर्यावरणीय शिक्षा और साहसिक तथा मनोरंजन गतिविधियां आदि कुछ उदाहरणों का उल्लेख यहां समीचीन है। कक्षा के बाहर शिक्षा अपेक्षाकृत अधिक प्रेरक और यथार्थवादी होती है और छात्र–छात्राओं पर इन गतिविधियों का पर्याप्त अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

शिक्षकों और छात्र–छात्राओं को कक्षा की सीमा से बाहर शिक्षण एवं शिक्षा के अनेक लाभ मिलते हैं। जब छात्र–छात्राओं से सिद्धान्त रूप में प्राप्त शिक्षा का 'यथार्थ विश्व में' प्रयोग करने को कहा जाता है, तो उसका परिणाम शिक्षा का एक छात्र–केंद्रिक अनुभव होता है, जो शिक्षा का संवर्धन और व्यक्तिगत व सामाजिक विकास का पोषण करता है। इसके अतिरिक्त, जो छात्र कक्षा के बाहर की शिक्षा में भाग लेते हैं, उनके अभिप्रेरण के स्तर में सुधार आता है। वे पाठ्य सामग्री को अपेक्षाकृत अधिक प्रखरता से स्मरण करते हैं और कक्षा में उनका प्रदर्शन बेहतर होता है।

डेवी के अनुसार कक्षा के बाहर की शिक्षा के अनुभव आनुभविक शिक्षा के रूप होते हैं। ये अनुभव इस सरल सिद्धान्त में निहित होते हैं कि ''अनुभव सर्वोत्तम शिक्षक होता है।'' इस प्रारूप के अंतर्गत कक्षा के बाहर शिक्षा एक सक्रिय प्रक्रिया होती है, जिसमें छात्र–छात्राओं का सामना यथार्थ समस्याओं से होता है। उनमें नई–नई

परिकल्पनाएं जन्म लेती हैं, वे यथार्थ समस्याओं का परीक्षण और अपने आसपास के विश्व का अर्थ समझने के लिए परस्पर व्यवहार करते हुए अपने–अपने विचारों को साझा करते हैं।

टिप्पणी

शिक्षा यात्रा या क्षेत्र शिक्षा (Field Trip) और शिक्षा

सृजनात्मक वर्षों में शिक्षा यात्राएं या क्षेत्र शिक्षा की उन महत्वपूर्ण विधाओं में से एक है, जिसकी सहायता से शिक्षक अपने छात्रों के ज्ञान का संवर्धन कर सकते हैं। हम सभी जानते हैं कि बच्चे कुछ करते हुए ही सीखते हैं। उन्हें वे बातें स्मरण रहती हैं, जिन्हें वे व्यक्तिगत तौर पर महसूस करते हैं। इसके अतिरिक्त, सक्रिय, खोजपूर्ण अनुभवों से संप्रत्यय का अनुकूल विकास होता है। शिक्षा यात्राएं आनुभविक शिक्षा का एक प्रकार है, जो बच्चों को कक्षा के परिवेश से बाहर शिक्षा के एक नए परिवेश में ले जाता है। ये यात्राएं उतनी ही सरल हो सकती हैं, जितना कि स्कूल के मैदान में किसी कक्षा के बच्चों को शिक्षा देना। वहीं, ये उतनी ही व्यापक हो सकती हैं जितना कि किसी क्षेत्र का भ्रमण। शिक्षा यात्राएं व्यावहारिक अनुभव प्रदान करते हुए न केवल बच्चों की शिक्षा के अनुभवों का संवर्धन करती हैं, बल्कि उस संसार के प्रति ज्ञान और समझ का संवर्धन भी करती हैं, जिसमें बच्चे रहते हैं।

हाल के दिनों में, इस विषय पर बहुत शोध हुए हैं कि हम किस प्रकार ज्ञान का संग्रह कर उसे हमारे स्मृति तंत्र में बचाये रख सकते हैं। शिक्षक शिक्षा यात्राओं का उपयोग आम तौर पर शिक्षा को सुदृढ़ करने के एक तरीके के रूप में देखते हैं।

क्षमता के संदर्भ में हमारा सर्वाधिक शक्तिशाली स्मृति तंत्र प्रासंगिक स्मृति तंत्र है। हमारे जीवन में ऐसे अनेकानेक 'प्रसंग' आते हैं, जिन्हें हम स्पष्टतः स्मरण कर सकते हैं, वे चाहे बहुत पहले क्यों न आए हों। यदि हम अपने अतीत के किसी प्रसंग पर ध्यान दें, तो उससे जुड़ा अधिक से अधिक विवरण हमें याद आने लगता है। हमें वे भावनाएं और संवेग भी याद आने लगते हैं, जो उस प्रसंग के साथ आए थे, बल्कि हम उन्हें महसूस करने लगते हैं। वस्तुतः, संवेग उस प्रसंग की स्मृति को सजग कर सकते हैं। यह स्मृति का एक बहुत ही शक्तिशाली प्रकार है और कुशल शिक्षक इसका समुचित उपयोग कर लेते हैं।

शिक्षा यात्राएं अथवा क्षेत्र शिक्षा आनुभविक स्मृति के सृजन का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। आनुभविक स्मृति का सृजन रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द, स्थान और संवेगों से होता है। कला गतिविधियों के साथ शिक्षा यात्राएं या क्षेत्र शिक्षा अनुभव से पहले, उसके दौरान और उसके बाद शक्तिशाली स्मृतियों के सृजन में छात्र–छात्राओं की सहायता कर सकती है, जिन्हें वे अपने भावी जीवन में स्मरण कर सकते हैं। कलाएं प्रसंग के लिए संवेगात्मक सामग्री उपलब्ध कराने और संवेगात्मक प्रेरकों का निर्माण करने में सहायता करती हैं, जो अनुभव से प्राप्त स्मृतियों के संग्रह का संवर्धन करते हैं। इस पद्धति में स्मृति के प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों मार्गों का समावेश होता है, जिससे घटनाओं को पुनः स्मरण करने की संभावना बढ़ती है।

क्षेत्र शिक्षा बच्चों के किसी क्षेत्र विशेष के ज्ञान में वृद्धि करती है। किसी प्राकृतिक ऐतिहासिक संग्रहालय का भ्रमण, कोई वीडियो देखने या कोई पाठ्यपुस्तक पढ़ने से कहीं ज्यादा रोमांचक होता है।

टिप्पणी

शिक्षा यात्राएं बच्चों के अपने समुदाय के प्रति उनकी जानकारी को समृद्ध करती हैं। जब बच्चे पुलिस के किसी स्थानीय विभाग अथवा ऐसे ही किसी अन्य कार्यालय के भ्रमण पर जाते हैं, तो वे समाज के इन महत्वपूर्ण संसाधनों को बड़ी ही गहनता से समझने लगते हैं। शिक्षा यात्राओं में 'समुद्रतट सफाई' अथवा 'सड़क सफाई' को ध्यान में रखते हुए, बच्चों को उन गतिविधियों में शामिल होने का अवसर मिलता है, जिनमें वे समुदाय का समर्थन करते हैं। शिक्षा यात्राएं बच्चों को सक्रिय प्रयोगशालाएं उपलब्ध कराती हैं, जहां उन्हें नियमित कक्षा से हटकर ज्ञान अर्जन करने का अवसर मिलता है।

शिक्षा यात्रा या क्षेत्र शिक्षा के दौरान कार्यक्रम के क्रम पर विचार करें : कक्षा के बाहर शिक्षा के विशेषज्ञ जय रॉबर्ट्स अनुशंसा देते हुए कहते हैं कि बौद्धिक विषयों के लिए प्रातः काल, व्यावहारिक और क्रियाशील गतिविधियों के लिए दोपहर और चिंतन व अंतर्वैयक्तिक परिचर्चाओं के लिए सायं काल का समय बेहतर होता है।

शिक्षा यात्रा की योजना बनाते समय संतुलित कार्यक्रम को ध्यान में रखा जाना चाहिए : शिक्षकों को अति अथवा अल्प कार्यक्रम यात्राओं से परहेज करना चाहिए, जो ज्ञान के संतृप्ति और ऊब को जन्म दे सकती हैं। शिक्षकों को निरंतर अनुभव को समझना चाहिए इसलिए यदि आवश्यक हो, तो वे कुछ गतिविधियों में कटौती अथवा यात्रा में अधिक से अधिक अनुभवों को शामिल या छात्रों को अधिक से अधिक कार्य देकर अपनी आकस्मिक योजना लागू कर सकते हैं।

लाभ

शिक्षा यात्राएं कक्षा की शिक्षा का एक अचूक पूरक हैं। इन यात्राओं में बच्चों को संसार के प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त करने और उसकी खोज करने का अवसर मिलता है। कोई शिक्षा यात्रा विशेष रूप से तब प्रभावकारी होती है, जब यह कक्षा में पूर्व में दी गई शिक्षा में सहायक होती है। कक्षा में पढ़ाए गये किसी विषय की जानकारी जब किसी शिक्षा यात्रा में छात्र–छात्राओं को मिलती है तब उस विषय के प्रति उनकी समझ और गहरी होती है। जो ज्ञान वे प्राप्त करते हैं उसे बनाए रखने में उन्हें सहायता मिलती है, और नई चीजें सीखते समय उन्हें आनंद भी आता है।

कक्षा के बाहर शिक्षा केवल पढ़ाई के विषय नहीं होते, बल्कि सीखने के लिए अनेकानेक अलग–अलग चीजें होती हैं, जैसे साहसिक क्रीड़ा शिविर लगाना, अलग–अलग खेलों का अभ्यास करना, कौशलों और फोटोग्राफी, कला, संगीत, नृत्य और गायन जैसे प्रिय रुचियों का विकास करना आदि।

साहसिक खेल : साहसिक खेल प्रकृति को करीब से देखने और महसूस करने का अवसर देते हैं। इन खेलों से लोगों में टीम भावना का संचार होता है, उनका मन प्रसन्न और शरीर स्वस्थ रहता है। साहसिक गतिविधियां जहां एक तरफ आनंददायक होती हैं वहीं दूसरी तरफ अवांछित स्थितियों और परिस्थितियों से समझौता करने की सीख देती हैं।

खिलाड़ियों को उनकी पसंद के नए खेल सीखने और उनका अभ्यास करने का अवसर मिलता है। खेल लोगों को चुस्त, तरोताजा और स्वस्थ रखते हैं और उनमें प्रबंध कौशल का विकास करते हैं। वे समय प्रबंधन का कौशल और अनुशासन सीखते हैं और उनमें साहस आता है।

कक्षा के बाहर शिक्षा में संगीत, नृत्य, चित्रकारी, कला, शिल्पकला, आदि जैसी अभिरुचि की क्रियाओं का अवसर मिलता है।

टिप्पणी

2.2.3 अनुशासन के लिए दंडात्मक की अपेक्षा सुधारात्मक दृष्टिकोण

स्वस्थ और सकारात्मक अनुशासन, अनुशासन का वह प्रारूप है, जिसका उपयोग स्कूलों और माता–पिता के बच्चों के लालन–पालन में किया जाता है, जो आचरण के सकारात्मक बिंदुओं पर केंद्रित होता है। यह इस सिद्धान्त पर आधारित है कि कोई भी बच्चा बुरा नहीं होता, केवल आचरण अच्छे और बुरे होते हैं। स्वस्थ और सकारात्मक अनुशासन का उपयोग करने वाले मानते हैं कि अच्छा आचरण सिखाते समय तथा बुरे आचरण छुड़ाते समय बच्चे को किसी प्रकार की मौखिक अथवा शारीरिक चोट पहुँचाए बिना सिखाया और प्रबल किया जाना चाहिए। स्वस्थ और सकारात्मक अनुशासन की प्रक्रिया में शामिल लोगों का मानना है कि वे समस्याओं को नजरअंदाज नहीं करते बल्कि स्थितियों को समुचित तरीके से संभालने में बच्चों से नरमी के व्यवहार के साथ उनकी सहायता करते हुए समस्या का समाधान अलग ढंग से करते हैं।

स्वस्थ और सकारात्मक अनुशासन नकारात्मक अनुशासन के विपरीत होता है। नकारात्मक अनुशासन में अनुचित व्यवहार के प्रति क्रोध, हानिकारक अथवा हिंसक प्रतिक्रयाएं हो सकती हैं। मनोवैज्ञानिक शोधकर्ताओं द्वारा प्रयुक्त शब्दों में, स्वस्थ और सकारात्मक अनुशासन में दंड के विकल्पों का उपयोग किया जाता है, जैसे :

- सकारात्मक पुनर्बलन, या किसी अच्छे प्रयास को प्रबल करना
- नकारात्मक पुनर्बलन, या अवांछित अथवा कष्टकर उद्‌दीपन को दूर करना
- सकारात्मक दंड, अर्थात् जो गड़बड़ी बच्चे ने की उसे दूर करने के लिए कहना
- नकारात्मक दंड, अर्थात् किसी गलत आचरण के प्रति प्रतिक्रियास्वरूप बच्चे को किसी सुविधा से वंचित करना

किंतु, नकारात्मक अनुशासन के विपरीत, स्वस्थ अनुशासन की प्रक्रिया में ये सभी कार्य एक नरम, प्रोत्साही और सुदृढ़ तरीके से किये जाते हैं। स्वस्थ और सकारात्मक अनुशासन की प्रक्रिया में ध्यान उचित सीमाओं का निर्धारण और इन सीमाओं का पालन करने में बच्चों का मार्गदर्शन करने पर या स्थिति को समुचित ढंग से संभालने पर दिया जाता है।

प्रभावकारी स्वस्थ और सकारात्मक अनुशासन के पांच मानदंड इस प्रकार हैं :

इस अनुशासन में बच्चों में जुड़ाव का भाव उत्पन्न होता है (संबद्ध और अर्थ)

शिष्ट और प्रोत्साही होता है (सहृदय और दृढ़ एक साथ)

दीर्घ काल तक प्रभावकारी रहता है (इसमें इस पर ध्यान दिया जाता है कि बच्चे क्या सोच रहे हैं, क्या महसूस कर रहे हैं और क्या सीख रहे हैं। वहीं, इसमें इस पर भी ध्यान दिया जाता है कि वे अपने और अपने संसार को लेकर क्या निर्णय ले रहे हैं।)

इसमें बच्चों को महत्वपूर्ण सामाजिक और जीवन से संबद्ध कौशलों की सीख दी जाती है (दूसरों के प्रति सम्मान, चिंता, समस्या का समाधान और सहयोग तथा परिवार, स्कूल या समाज का सहयोग करने के कौशल)।

बच्चों को उनकी क्षमता का ज्ञान कराया जाता है (बच्चों की निजी क्षमता और स्वयं शासन के सृजनात्मक उपयोग को बढ़ावा दिया जाता है)।

शारीरिक दंड के विकल्प

टिप्पणी

एक स्वस्थ और सकारात्मक अनुशासन पद्धति बाल–केंद्रित होती है, जिसमें प्रत्येक व्यवहार के केंद्र में बच्चों के सर्वोत्तम हित होते हैं। शिक्षक और बच्चों के बीच संबंध इस पद्धति का केंद्र होता है : इसका लहजा, इसका स्वरूप और इसमें निहित करुणा व सम्मान। इन संबंधों का सृजन शिक्षक बच्चों की विकासात्मक आवश्यकताओं के मूलभूत ज्ञान के आधार पर करते हैं और सीखने व बढ़ने में बच्चों की सहायता के ध्येय के साथ उनके प्रति अपनी अनुक्रियाओं का निर्धारण करते हैं।

स्वस्थ और सकारात्मक अनुशासन गुरु व मार्गदर्शक के रूप में शिक्षक की भूमिका पर निर्भर करता है। इसमें अच्छे विकल्पों के प्रति और अनर्थकारी विकल्पों के परिणामों के विपरीत स्वस्थ मनोभाव का संचार किया जाता है।

अनुशासन की एक स्वस्थ पद्धति में शिक्षा के एक माध्यम के रूप में हिंसा के प्रयोग का कोई स्थान नहीं होता। यह पद्धति तात्कालिक अनुकूलता लाने की बजाय बच्चों के विकास को समुचित दिशा देती है।

बच्चों की पढ़ाई–लिखाई के लिए अनुशासन आवश्यक है क्योंकि उनकी सुरक्षा और संरक्षा तथा समुचित विकास सुनिश्चित करना आवश्यक है। अनुशासन शिक्षा का एक साधन है, पर माता–पिता और शिक्षकों के लिए यह जानना जरूरी है कि बच्चों को अनुशासन बिना किसी दंडात्मक प्रयास के सिखाना संभव है और यह कि मानक व सीमाएं बच्चों को किसी प्रकार की चोट पहुंचाए बिना भी तय की जा सकती हैं। स्वस्थ और सकारात्मक अनुशासन माता–पिता और शिक्षकों के विरुद्ध नहीं होता। किंतु, समस्या यह है कि ज्यादातर माता–पिता और शिक्षक मानते हैं कि अनुशासन और दंड दोनों एक ही हैं।

यह जानना जरूरी है कि दंड से बच्चों को क्षति पहुंचती है जबकि अनुशासन उनमें अच्छे गुणों का संचार करता है। इसके अतिरिक्त, दंड शक्ति के एक दुरुपयोग पर आधारित होता है, जबकि अनुशासन प्रभुत्व का एक साधन है। अनुशासन और दंड के बीच एक पतली रेखा होती है जिसके उल्लंघन से हिंसा हो सकती है। इसलिए, अनुशासन को परिचर्या एवं देखभाल तथा दूसरों के प्रति और अपने प्रति सम्मान के रूप में देखा जा सकता है।

स्वस्थ एवं सकारात्मक अनुशासन तथा दंड के बीच अंतर

अनुशासन की स्वस्थ पद्धतियों में हमेशा आचरण पर प्रश्न किया जाता है, न कि बच्चों के सम्मान पर।

जब बच्चे नियमों व मानदंडों को समझ लेते हैं, तब स्वस्थ अनुशासन अत्यधिक कारगर होता है। यह स्मरण रखना आवश्यक है कि एक शिक्षक के रूप में आप जब बच्चों को अधिकार दें, तब आप स्वयं अधिकार प्राप्त करते हैं।

बुरा व्यवहार करते किसी बच्चे को समझाते समय आपके मन में दंड का विचार स्वतः पनप उठता है। ऐसे में एक उत्तरदायी शिक्षक के रूप में आप जो कदम उठाएं उस पर और बच्चे पर पड़ने वाले उसके प्रभाव पर विचार करें।

टिप्पणी

आप किसी सकारात्मक अनुशासन को दंडात्मक बना सकते हैं, जो इस पर निर्भर करेगा कि आप मानदंड को किस प्रकार लागू करते हैं। उदाहरणस्वरूप, यदि कोई बच्चा कक्षा में किसी स्थान को गंदा करे, तो उससे केवल उसी स्थान को साफ करने के लिए कहें, पूरी कक्षा को साफ करने के लिए कहना दंड होगा।

स्मरण रखें कि हिंसा मौखिक भी हो सकती है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. वर्ष 1996 में संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम की महिला विकास सूची में भारत का कौन–सा स्थान था?

   (क) 102 (ख) 103

   (ग) 104 (घ) 105

2. जाति प्रथा को मूल पारंपरिक व्यवसायों के आधार पर कितने वर्गों में विभाजित किया गया है?

   (क) दो (ख) तीन

   (ग) चार (घ) पांच

2.3 शांति शिक्षा का महत्वपूर्ण शिक्षाशास्त्र

शांति शिक्षा में, शिक्षा कैसे दी जाए यह भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि शिक्षा क्या दी जाए। शिक्षाशास्त्र वह स्वरूप है, जिसे शांति शिक्षा के लिए अपनाया जाता है, और इसमें शिक्षण के वे उपागम और विधियां आती हैं, जिनका उपयोग शांति के शिक्षक करते हैं। कैसे का उत्तर हमें शिक्षाशास्त्र से ही प्राप्त होता है। शिक्षा के प्रत्येक संस्थान में, शिक्षकों से अपेक्षा की जाती है कि वे जो पढ़ा रहे हों उसके विषय, संरचना और स्वरूप पर विचार करें। शिक्षकगण किसी भी क्षेत्र में शांति शिक्षा के शिक्षाशास्त्रीय सिद्धान्तों का उपयोग कर सकते हैं। शांति शिक्षा के स्वरूप में शिक्षाशास्त्र का समावेश है, किंतु शिक्षाशास्त्र (pedagogy), यह शिक्षण में उपयोग की जाने वाली विधियों तक सीमित नहीं है। इसमें कुछ और तत्वों का समावेश भी है, जैसे संप्रेषण शैली और गुरु–शिष्य संबंध।

विषय वस्तु : विषय वस्तु का तात्पर्य इस बात से है कि क्या पढ़ाया और पढ़ा जा रहा है। हालांकि शांति की शिक्षा शिक्षण और शिक्षा के उस संदर्भ पर केंद्रित होनी चाहिए जिसमें शिक्षा दी जानी हो और जिसमें पाठों का अभ्यास किया जाना हो, किंतु शिक्षक अपनी शांति शिक्षा के पाठों की रचना शांति शिक्षा के सामान्य विषयों के इर्द–गिर्द कर सकते हैं। एक विषय वस्तु दूसरी विषय से भिन्न हो सकती है, किंतु इसका संबंध छात्र–छात्राओं के जीवन से होना चाहिए। शिक्षकगण को छात्र–छात्राओं द्वारा विषय वस्तु, और संभावित अंतर्विरोधों, को उनके जीवन से जोड़ने में सहायता करनी चाहिए।

शांति शिक्षा की विषय वस्तु में शांति आंदोलनों, शांति के सर्जक, नकारात्मक और सकारात्मक शांति, प्रत्यक्ष और परोक्ष हिंसा, एक सक्रिय प्रक्रिया के रूप में शांति, मानव

अधिकार और दायित्व, विश्वदर्शन और विचारधाराएं, अहिंसक संवाद–संप्रेषण, समुदाय और वार्तालाप का ज्ञान आता है।

संरचना : संरचना का अर्थ शैक्षिक विन्यास से है, किंतु यह भौतिक परिवेश भर नहीं है। इसके अलग–अलग घटक होते हैं। स्कूल का भौतिक परिवेश संरचना का एक घटक होता है। वहीं, अन्य घटकों में प्रशासन, स्कूल के नियम–विनियम, पाठ्यक्रम, नीतियां आदि आते हैं।

हावेलस्रड का मानना है कि शांति शिक्षा के स्वरूप और विषय–वस्तु के बीच एक द्वंद्वात्मक संबंध है, जिसमें स्वरूप का निर्धारण विषय–वस्तु और विषय–वस्तु का निर्धारण स्वरूप करता है। हावेलस्रड शांति शिक्षा में इस संबंध को आवश्यक मानते हैं क्योंकि विषय–वस्तु हमेशा ज्ञात नहीं होती बल्कि शिक्षा की एक प्रक्रिया के माध्यम से प्रस्तुत की जाती है।

ज्यादातर शिक्षकों का उस विषय–वस्तु पर आधिपत्य नहीं होता, जिसमें वे अध्यापन कर रहे होते हैं। उनका नियंत्रण जिस क्षेत्र पर होता है वह है स्वरूप। यदि उन्हें अपनी कक्षा में शांति शिक्षा का समावेश और समेकन करना कठिन लगे, तो वे स्वरूप से आरंभ कर सकते हैं, जो शिक्षा के किसी भी विन्यास पर लागू हो सकता है।

शांति शिक्षा का महत्व

शांति शिक्षा शांति के क्षेत्र में छात्र–छात्राओं का ज्ञान अर्जन, कौशलों का विकास तथा मानव जीवन में शांति के अर्थ के प्रति एक अभिवृत्ति का सृजन करने में उनकी सहायता करती है। शांति शिक्षा संघर्षों को पनपने से रोकती है तथा विश्व में शांति की स्थितियां पैदा करती है। इस प्रकार शांति शिक्षा का अपना एक विशेष महत्व है।

दूसरे शब्दों में, हिंसा से बचने का एक ही उपाय है और वह है विवादों को सुलझाने के एक मार्ग के रूप में शांति शिक्षा। युवाओं को इसका ज्ञान दिलाने के लिए कि विवादों का प्रभावकारी व शांतिपूर्ण ढंग से समाधान किस प्रकार किया जाए, इसके लिए लोगों को साथ मिलकर कार्य करना चाहिए। शांति शिक्षा हिंसा के निरंतर चल रहे चक्र को रोकने, शांति को बढ़ावा देने, सहिष्णुता सुनिश्चित करने, सभी के लिए बेहतर संतुलित समाज का गठन करने में सहायता करने की समझ और अभिवृत्ति को बढ़ावा देने, समानता की भावना तथा सामाजिक न्याय को प्रोत्साहित करने के लिए आवश्यक है।

संघर्षों के दौरान और पश्चात सुधार व सकारात्मक परिवर्तन के अवसर एक साथ बढ़ जाते हैं, क्योंकि शांति के प्रयास शिक्षकों की भावी पीढ़ियों को उन समस्याओं की समझ और समाधान की शिक्षा देने में सहायता करते हैं, जो कानून के शासन के मुख्य आधार को तहस–नहस कर सकती हैं। वहीं, इन प्रयासों से एक अपेक्षाकृत अधिक न्यायसंगत समाज के निर्माण में अगली पीढ़ी के मार्गदर्शकों के रूप में कार्य करने हेतु छात्र–छात्राओं को तैयार करने में भी शिक्षकों को सहायता मिलती है।

शांति शिक्षा का शिक्षाशास्त्र

शिक्षकगण शांति शिक्षा की अध्यापन–कला का उपयोग शिक्षण के सभी क्षेत्रों और विषयों में कर सकते हैं। कक्षा में शांति शिक्षा के शिक्षाशास्त्र को किसी भी विषय या

विधा में लागू किया जा सकता है। शांति शिक्षा के विभिन्न विषय होते हैं, जैसे बहुसंस्कृतिवाद, मानवाधिकार, आदि। इन विषयों की शिक्षा जहां विषयों के रूप में ही दी जा सकती है, वहीं इन्हें अन्य क्षेत्रों में भी शामिल किया जा सकता है, जैसे समाज विज्ञान अथवा गणित की कक्षा में मानवाधिकारों का समेकन और समावेशन।

शांति शिक्षा में प्रयुक्त शिक्षाशास्त्र और विषय के बीच संबंध जटिल होता है। उदाहरणस्वरूप, यदि शिक्षक शांति पर व्याख्यान दे रहे हों, तो यह शांति शिक्षा नहीं होगी, क्योंकि इस प्रकार के अभ्यास का आधार अत्यंत कठोर होता है।

शांति शिक्षा के शिक्षाशास्त्रीय सिद्धान्त : संपूर्णता

संपूर्णता के सिद्धान्त का आधार ब्रह्मांड के पूर्णत्व की एक कल्पना और मानवीय अनुभव के सभी क्षेत्रों के बीच अनिवार्य तथा अभिन्न परस्पर संबंध और सामाजिक संयोजन के स्तर व क्षेत्र हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार ज्ञान की विभिन्न अवधारणाओं और शैक्षिक पद्धतियों का संवर्धन करने के लिए शांति शिक्षा दी जानी चाहिए क्योंकि इनका संबंध हिंसा के विभिन्न स्वरूपों से होता है।

एक सर्वांगीण संरचना के रूप में संपूर्णता मूल कारणों और समाधान के उपायों के संदर्भ में अशांति, संघर्ष और हिंसा की विभिन्न समस्याओं के बीच संभव परस्पर–संबंध को सामने लाने का प्रयास करती है। संपूर्णता शांति शिक्षा के विभिन्न स्तरों और विधियों को श्रेष्ठ और गौण रूप में अलग नहीं करती। संपूर्णता इस बात का समर्थन भी करती है कि शिक्षा के विभिन्न स्तर और विधियां – औपचारिक अथवा अनौपचारिक – एक समान महत्वपूर्ण होती हैं। सबसे बढ़कर यह कि शिक्षा की सभी विधियों–प्रणालियों को एक दूसरी का पूरक होना चाहिए, और वे एक दूसरे का संवर्धन तथा सहायता करें। उदाहरणस्वरूप, औपचारिक छात्र–छात्राओं के ज्ञान को ठोस यथार्थों और संघर्ष की प्रणालियों से जोड़ कर शांति शिक्षा को सुदृढ़ किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, शांति की किसी संस्कृति की शिक्षा देने में समाज के अति उपेक्षितों तथा दमितों के साथ–साथ धनी, सुविधाप्राप्त, सरकारी और कुलीन वर्गों को भी शामिल किया जाना चाहिए।

यह प्रकट करना चाहिए कि सभी समस्याएं एक दूसरी से जुड़ी हुई, बहुआयामी और गतिशील हैं।

संपूर्णता उस विखंडित विधि के सर्वथा विपरीत है, जिसमें स्कूलों में अकसर शिक्षा दी जाती है। एक सर्वांगीण दृष्टिकोण हमें विभिन्न समस्याओं के जटिल संबंधों को देखने–समझने का अवसर देता है। इस दृष्टिकोण में सांसारिक (अतीत, वर्तमान और भविष्य और उनके एक दूसरे से जुड़ने का ढंग) तथा स्थानीय आयामों (सूक्ष्म से बृहत, और समाज के सभी वर्ग) पर विचार करना शामिल है।

मूल्य सृजन (हृदय और आत्मा तथा मन को शिक्षित करना)

शिक्षा के सभी स्वरूप मूल्य आधारित होते हैं, हालांकि कई स्थितियों में मूल्य पौराणिक अप्रत्यक्ष पाठ्यक्रम का अंग होते हैं। दूसरी तरफ, शांति और उसे बनाए रखने के मानदंडों के अनुरूप मूल्य सृजन की शिक्षा देने हेतु शांति शिक्षा अपने ध्येयों और प्रयोजनों के प्रति मुखर होती है।

टिप्पणी

शांति शिक्षा में इसकी शिक्षाशास्त्रीय प्रक्रियाओं के माध्यम से मूल्य सृजन की महत्वपूर्ण भूमिका पर बल दिया जाता है। कावागास के अनुसार यह मानते हुए कि समस्त ज्ञान मूल्यों से कभी मुक्त नहीं होता, शांति की संस्कृति की शिक्षा को करुणा, न्याय, समानता, महिला–पुरुष निष्पक्षता, जीवन के प्रति प्रेम, मेल–मिलाप, सहभाजन, सत्यनिष्ठा, आशा और अहिंसा जैसे अपने मुख्य मूल्यों के प्रति मुखर होना चाहिए। शांति शिक्षा में इन सभी मूल्यों का शिक्षा के सभी रूपों में समावेश शामिल है।

वार्तालाप (एक दूसरे से पढ़ने की पद्धति)

वार्तालाप शांति शिक्षा के शिक्षाशास्त्र का एक मुख्य घटक है। कावागास लिखते हैं कि वार्तालाप की पद्धति एक नैतिक समानांतर शिक्षक–छात्र संबंध का पोषण करती है, जिसमें दोनों वार्तालाप पद्धति से शिक्षा देते और ग्रहण करते हैं। वर्ग चर्चा के अतिरिक्त, कावागस के वार्तालाप शिक्षा पद्धति के कुछ अन्य सुझाव इस प्रकार हैं :

अतिथि वक्ता : जैसे किसी कक्षा में सड़क पर भटकते बच्चों को बुलाएं और उनसे उनके जीवन के बारे में बात करें;

जाल का चित्र बनाना : किसी विषय और अन्य उप–विषयों पर केंद्रित एक जाल का चित्र बनाएं (विषय जाल के केंद्र में हो तथा उप–विषय केंद्र से जुड़े हों) और सभी को जोड़ें;

अभिनय : छात्रों को परस्पर सांस्कृतिक संघर्ष का अभिनय करने को कहें

स्वांग : निरस्त्रीकरण पर एक पाठ के लिए कुछ छोटे हथियार इकट्ठा करें, छात्रों से अलग–अलग भूमिकाओं का अभिनय करने को कहें, जैसे हथियारों के सौदागर, हथियार खरीदने वाले, हथियारों का विरोध करने वाले, आदि;

गायन

चित्रकारी

कविता लेखन व पाठ

छोटी टोलियों में बातचीत

आत्म–चिंतन : इसका अर्थ अपने भीतर झांकना और अपने स्वभाव के प्रति जिज्ञासु होना है। इसमें अपनी प्रतिक्रियाओं–अनुक्रियाओं का अवलोकन, कार्यकलाप और अपने कार्यकलापों के परिणाम आते हैं। आत्म–चिंतन शिक्षक को स्वयं भी करना चाहिए और छात्र–छात्राओं को भी इसके लिए प्रोत्साहन देना चाहिए। इस प्रक्रिया में शिक्षक स्वयं से पूछ सकते हैं कि वह कभी भेदभाव के शिकार हुए या नहीं। किसी दूसरे के साथ उन्होंने भेदभाव किया है या नहीं। उन्हें अपने छात्रों से भी ऐसा करने के लिए कहना चाहिए। चिंतन के लिए समय महत्वपूर्ण होता है। आत्म–चिंतन इस कार्यक्रम का मुख्य विषय होना चाहिए।

शांति शिक्षा का मूल्यांकनात्मक शिक्षाशास्त्र

शांति शिक्षा (औपचारिक हो अथवा अनौपचारिक) सभी स्तरों पर शांति की संस्कृति के सृजन का एक मुख्य माध्यम होती है, और शांति संस्कृति का आधार तथा मुख्य घटक भी। शांति शिक्षा के तत्वों का शिक्षा के सभी स्तरों पर शिक्षण की अध्यापन–कला में

समेकन और समावेश होना चाहिए। वस्तुतः, पाठ्यक्रम के लगभग सभी विषयों का चयन छात्र–छात्राओं को एक शांतिपूर्ण और सुखी जीवन हेतु दिशा निर्देश देने के लिए किया जाता है, किंतु कक्षा में शांति एवं सुख की शिक्षा की प्रक्रिया यथार्थ में नहीं रही है।

टिप्पणी

शोधों से पता चलता है कि कक्षा में एक सुरक्षित और शांतिपूर्ण वातावरण के सृजन पर शिक्षकों का पर्याप्त ध्यान नहीं होता क्योंकि वे विषय–वस्तु के अध्ययन पर जोर देते हैं। कुछ शोध यह संकेत भी देते हैं कि पीढ़ियों के बीच शांति के मुख्य मूल्यों की विरासत स्थिर बनी रहती है क्योंकि यह मौखिक परंपरा पर निर्भर करती है; स्कूल में शिक्षकगण शांति के मूल्यों के महत्व को समझते हैं, किंतु अभी तक यह नहीं समझ पाए हैं कि इन मूल्यों का साभिप्राय और सुव्यवस्थित ढंग से विकास कैसे किया जाए; छात्र–छात्राएं और शिक्षकगण शांति आचरण के प्रति पर्याप्त ढंग से प्रवृत्त होते हैं, किंतु आचरण के उन स्वरूपों के प्रति सजग नहीं होते, जो शांतिपूर्ण कक्षाओं और स्कूलों के सृजन के प्रतिकूल होते हैं।

शांति संस्कृति की संस्थाओं के रूप में स्कूलों की रणनीतिक अवस्थिति होती है और शिक्षकगण मुख्य कर्ता–धर्ता होते हैं। विषयों के विपरीत, शांति शिक्षा शिक्षकों के व्यक्तित्व पर निर्भर करती है। जो शिक्षक शांतिप्रिय नहीं होते, वे शांति की शिक्षा नहीं दे सकते क्योंकि उनका आचरण उस शिक्षा के विपरीत होता है, जो वे दे रहे होते हैं। छात्र–छात्राएं शांति की संस्कृति के सृजन के मुख्य संसाधन होते हैं – वे यह भी सीखते हैं कि स्कूल के दैनिक जीवन में हिंसक गतिविधियों से कैसे बचा जाए।

शांति की संस्कृति के सृजन का दायित्व स्कूलों और उनके सभी घटकों का होता है, जैसे छात्र–छात्राओं को उन सभी गुणों, ज्ञान और कौशलों की शिक्षा देना जो संघर्षों को रचनात्मक ढंग से दूर करने के लिए आवश्यक होते हैं। संघर्ष की रोकथाम और समाधान की शिक्षा भी दी जा सकती है, क्योंकि स्कूल में प्रत्येक बच्चे की सुरक्षा उसका अधिकार होता है। किंतु, विषय सामग्री में उन विषयों का समावेश अभी स्पष्ट रूप से नहीं हो पाया है, जो छात्र–छात्राओं को उनकी सुरक्षा का भान करा सकें। संरक्षा की भावना का संबंध सामाजिक वातावरण से भी होता है, छात्र–छात्राओं का परोपकारी आचरण जैसे सहयोग या एक दूसरे की सहायता उन्हें शिक्षा के बेहतर परिणामों के लिए बढ़ावा दे सकती है।

शांति शिक्षा की अध्यापन–कला एक प्रक्रिया है, केवल शांति और युद्ध की शिक्षा भर नहीं। एक प्रक्रिया के रूप में इसके लिए शांति और युद्ध का सूक्ष्म ज्ञान आवश्यक होता है। वहीं, एक प्रजातांत्रिक समाज में नागरिकों के रूप में शांतिपूर्वक रहना सीखना भी आवश्यक होता है। जहां तक शांति शिक्षा की अध्यापन–कला के विषय का प्रश्न है, यह विषय ज्ञान और कौशलों के उस रूप में हो सकता है, जिसमें कक्षा में होने वाले उन दैनिक कार्यक्रमों को उठाया जाए, जो छात्र–छात्राओं की शांति का वाहक होने में सहायता कर सकें।

शांति शिक्षा की अध्यापन–कला में ध्यान मन पर दिया जाता है, क्योंकि सभी युद्ध और संघर्ष मन से ही शुरू होते हैं। शांति शिक्षा की अध्यापन–कला केवल संघर्ष समाधान की शिक्षा नहीं है, न ही वहीं तक सीमित है, बल्कि इसमें मानसिकता और मन की यह समझने, सोचने अथवा पता लगाने की क्षमता का सृजन आते हैं कि मतभेदों

टिप्पणी

को किस प्रकार दूर किया जाए और विरोधी पक्ष से मुलाकात अवश्य किया जाए ताकि मतभेद पनपें ही नहीं। शिक्षा प्रक्रिया वैसे प्रत्येक व्यक्ति के मन और हृदय में आंतरिक शांति के सृजन के साथ शुरू होती है, जो सच, ज्ञान और प्रत्येक संस्कृति की जानकारी तथा साझा मूल्यों का मूल्यांकन चाहता हो, ताकि भविष्य बेहतर हो सके। जिन लोगों में आंतरिक शांति होती है, उन्हें सामाजिक प्राणी के रूप में सम्मान और मान्यता दी जाती है।

शांति शिक्षा के शिक्षाशास्त्र को लागू करने के लिए अलग–अलग मार्गों और अलग–अलग नीतियों की आवश्यकता होती है, क्योंकि इसका वास्तविक स्वरूप संपूर्णतावादी और सहयोगशील होता है। शांति शिक्षा का शिक्षाशास्त्र उपदेशात्मक उपागम से परहेज करता है, जिसका संबंध संप्रत्ययात्मक शिक्षा से होता है। शांति शिक्षाशास्त्र की नीति छात्रों को उनके अपने हेतु अनुभव के लिए बढ़ावा देना है – स्कूल में विभिन्न संदर्भों तथा जीवन के यथार्थ विन्यासों में शांति का शैक्षिक अनुभव। इस प्रकार, शांति का शिक्षाशास्त्रीय उपागम संपूर्णतावादी, सहभागी, सहयोगी, आनुभविक और मानवतावादी होता है।

आज मानदंडों में गिरावट और राजनीतिज्ञों, व्यवसायियों तथा अन्य लोगों की कर्तव्य निर्वहन की इच्छाशक्ति में कमी आई है। शिक्षण संस्थाएं आज परीक्षा कारखानों का रूप ले चुकी हैं, जिनमें केवल परिमाणात्मक विषयों के पाठ्यक्रमिक मूल्य का स्थान रह गया है। एक तरफ जहां छात्र–छात्राओं पर प्रतिस्पर्धी वातावरण में सफलता हासिल करने का दबाव उत्तरोत्तर बढ़ रहा है, तो वहीं दूसरी तरफ शिक्षकगण को कक्षा को एक ऐसा कक्ष बनाने का दबाव घेरे रहता है, जिसमें शिक्षण कम परीक्षा का कार्य ज्यादा हो। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि युवाओं में दबाव और चिंता उत्तरोत्तर बढ़ रही है। कक्षा में ज्यादातर समय परीक्षा की तैयारी और अभ्यास पर दिया जाता है। यह व्यवस्था किसी भी ऐसे विषय की शिक्षा को निरस्त कर देती है, जिसे जांचने–परखने का कोई वस्तुनिष्ठ मापदंड नहीं होता। इसका परिणाम वह पाठ्यक्रम है जो उत्तरोत्तर संकुचित और सीमित होता जा रहा है – हर उस विषय को दरकिनार करते हुए जिसके लिए छात्र–छात्राओं से अपेक्षाकृत अधिक जटिल, व्याख्यात्मक अथवा कल्पनात्मक प्रतिक्रिया की अपेक्षा की जा सकती है। कक्षा में वार्तालाप, चर्चा–परिचर्चा और सम्मानजनक व सहिष्णु सामाजिक संबंधों के विकास पर निर्भर विषयों पर कम से कम समय दिया जाता है। कक्षा में छात्र–छात्राओं के सरोकारों पर कम से कम ध्यान दिया जाता है। इस अर्थ में शांति शिक्षा के आज स्कूलों को नियमबद्ध करने वाले सीमित और संकुचित चिंतन के केंद्रबिंदु में उस लक्ष्य का कोई स्थान नहीं होता, जो छात्र–छात्राओं के लिए उनकी मानवता की संपूर्ण शिक्षा की अपेक्षा रखता है। शांति के लिए शिक्षा एक सर्वांगीण प्रक्रिया है, जिसके अनुसार यदि मानव जाति को सहयोगशील और शांतिपूर्ण जीवन को अपनाना है, तो इसके लिए मनुष्य की सारी संभावनाओं और क्षमताओं का विकास आवश्यक है। इसके लिए सामाजिक चेतना और तर्क की क्षमता में बदलाव के साथ–साथ उनके विकास की आवश्यकता है। किंतु जिस शिक्षा पर आज स्कूलों में ध्यान दिया जाता है, उससे इस बदलाव की आशा करना कठिन है। कार्य और औसत दर्जे के परिणामों पर बल के चलते किसी भी विषय की प्रासंगिकता की उपेक्षा होती है, जिसे परिमाणात्मक विवरण में तत्काल बदला नहीं जा सकता। अपने अपेक्षाकृत अधिक

अप्रत्यक्ष किंतु गंभीर स्वरूप के साथ कोई अनुभव–प्रेरित शिक्षा नैतिक और आध्यात्मिक बदलाव के प्रति किंचित प्रासंगिक हो सकती है। इसमें ऐसी किसी अपेक्षाकृत अधिक जटिल और अंतःस्थ गुणों से युक्त शिक्षा की बात नहीं की जा सकती, जो हमारे संवेगात्मक जीवन के बारे में हो।

टिप्पणी

2.3.1 स्कूल स्तर पर तनाव, परीक्षा भय, शारीरिक दंड, हिंसा और संघर्ष को दूर करने के शैक्षणिक कौशलों एवं रणनीतियों के बारे में जागरूकता

स्कूल स्तर पर तनाव, परीक्षा भय, शारीरिक दंड, हिंसा और संघर्ष को दूर करने के शैक्षणिक कौशलों और रणनीतियों को क्रमवार इस प्रकार समझा जा सकता है–

1. तनाव

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में प्रतिस्पर्धा का भाव प्रारंभिक कक्षाओं से ही प्रारंभ हो जाता है। बच्चों पर गृह कार्य, परीक्षाओं, असाइनमेंट, बेहतर करने का दबाव व अभिभावकों की महत्वाकांक्षा का दबाव होता है। बहुत से छात्र बेहतर समय प्रबंधन नहीं कर पाने के कारण बुरी तरह से तनावग्रस्त हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त कई बार छात्रों को वित्तीय समस्याओं से भी गुजरना पड़ता है, जो कि उनके आत्मबल को तोड़ने वाला होता है और वे कहीं न कहीं तनाव से ग्रस्त हो जाते हैं।

इन गहरे तनाव के प्रभाव में छात्र कई बार अपने मित्रों से कट जाते हैं, जिस कारण उनमें अकेलापन आ जाता है। अपने परिवारजनों की आकांक्षा एवं भविष्य में सफल होने के दबाव में वे परीक्षाओं की रात–रात भर जगकर पढ़ाई करते हैं, जो उनके स्वास्थ्य को प्रभावित तो करता ही है उन्हें गंभीर अवसाद में धकेल देता है। कई बार छात्र असफल होने की आशंका से आत्महत्या जैसे कदम भी उठा लेते हैं।

छात्रों को इस प्रकार की तनावपूर्ण स्थितियों से बचाने के लिए कुछ कारगर कदम उठाने की आवश्यकता है ताकि मुक्त भाव से बेहतर प्रदर्शन किया जा सके। सबसे पहले विद्यार्थियों को समय प्रबंधन की कला विकसित करनी चाहिए, जिससे कि वे पढ़ाई के साथ अन्य गतिविधियों को भी समय दे सकें, जिससे तनावमुक्त रहने में सहायता मिलेगी। तैयारी को नियोजित ढंग से समय पूर्व करने का प्रयास करें। साथ ही व्यायाम, संगीत सुनना व पर्याप्त सोने की आदत डालें, मित्रों से बातचीत करें और बेहतर प्रदर्शन करने हेतु समूह अध्ययन की पद्धति को अपनाएं, इससे रोचकता बढ़ेगी और तनाव कम होगा।

अभिभावक भी बच्चे पर बेहतर प्रदर्शन हेतु अनावश्यक दबाव न डालें और बच्चों के बेहतर पोषण एवं मानसिक विकास हेतु संतुलित आहार उन्हें दें। अभिभावकों को यह भली–भांति समझना चाहिए कि हर बच्चे की अपनी अलग–अलग विशेषता होती है अतः उसकी मजबूती को निखारने में सहयोग करें। परीक्षा के वक्त बच्चों को सकारात्मक बनाए रखें।

एक विद्यार्थी को बेहतर वातावरण प्रदान करके ही हम उन्हें निखारने का अवसर दे सकते हैं। हमें याद रखना होगा कि आज का विद्यार्थी कल हमारे देश का भविष्य है, हम उसको निर्द्वन्द्व वातावरण प्रदान करें, यह हमारा दायित्व है।

टिप्पणी

कोविड–19 यानी कोरोना वायरस को फैलने से रोकने के लिए लगाया लॉकडाउन अब छात्रों के लिए भी तनाव का कारण बन रहा है। इस लॉकडाउन में कुछ छात्र अपना संतुलन बनाए हुए हैं लेकिन बहुत से छात्र अपना संतुलन खो रहे हैं। वे तनाव, अवसाद आदि का शिकार हो रहे हैं। जिसका असर उनके शारीरिक स्वास्थ्य पर भी पड़ रहा है। इस महामारी के कारण विद्यार्थी भी बहुत परेशान हैं। उनको चिंता है कि पता नहीं स्कूल/कॉलेज कब खुलेंगे? उनकी परीक्षा का परिणाम क्या होगा? इसी प्रकार की अनेक चिंताएं छात्रों में तनाव को बढ़ा रही हैं।

छात्रों पर शिक्षा का दबाव उनके आनंदोल्लास को खत्म करता जा रहा है और उन्हें दिन–प्रतिदिन चिंता और निराशा की ओर ले जाता है जिस कारण कई छात्र काफी तनाव (डिप्रेशन) में आ जाते हैं।

जब एक छात्र इस प्रकार के तनाव में होता है तो इससे उनकी विद्यालयी शिक्षा पर भी काफी नकारात्मक प्रभाव पड़ते हैं। जिससे उनके ग्रेडस पर तो प्रभाव पड़ता ही है साथ ही साथ स्वास्थ्य को लेकर भी परेशान रहने लगते हैं।

इसलिए छात्रों तथा अभिभावकों को सबसे पहले यह जानना बहुत ज़रूरी है कि ऐसे कौन–कौन से मुख्य कारक हैं जिस कारण छात्र अक्सर तनाव में आ जाते हैं तथा इसके निवारण के लिए छात्रों तथा अभिभावकों को क्या करना चाहिए।

तनाव के लक्षण

छात्रों की नियमित गतिविधियों में होने वाले कई बदलावों का पता लगाकर तनाव को पहचाना जा सकता है। हालांकि कई बार कुछ छात्रों को पता होता है कि वह अपनी विद्यालयी शिक्षा को लेकर काफी तनाव में हैं लेकिन इस विषय पर न तो वे अपने माता–पिता से चर्चा करते हैं और न ही किसी और से इस विषय में कोई मदद लेते हैं। वहीं दूसरी ओर कुछ ऐसे भी छात्र होते हैं जिनके तनाव का कारण उन्हें खुद अच्छी तरह समझ नहीं आता है। अर्थात् ऐसी परिस्थिति में अभिभावकों को चाहिए कि वह अपने बच्चों के तनाव के कारण को समझकर उसका निष्कर्ष निकाल सकें।

छात्रों में होने वाले तनाव के मुख्य संकेत नीचे अंकित हैं–

1. खेल और कहीं आने जाने में रुचि न होना
2. भूख में परिवर्तन
3. नींद की समस्याएं
4. अत्यधिक चिंता और नकारात्मक विचार
5. परफॉरमेंस में कमी आना
6. चिड़चिड़ापन और अधीरता
7. दबाव में होने की प्रवृति
8. पूरी तरह से खुद को खाली महसूस करना
9. किसी भी कार्य को पूरा करने में असमर्थता महसूस करना
10. सरदर्द
11. सामाजिक अलगाव

टिप्पणी

छात्रों में तनाव पैदा करने वाले कारक

छात्रों के बीच तनाव पैदा करने वाले विभिन्न कारक इस प्रकार हैं–

1. **शैक्षिक दबाव** : शैक्षिक दबाव का कई बार कारण खुद अभिभावक भी बन जाते हैं क्योंकि अकसर छात्रों पर उनके अभिभावकों द्वारा अच्छे मार्क्स प्राप्त करने का दबाव होता है, जबकि इसकी जगह अभिभावक को अपने बच्चे को प्रोत्साहित करना चाहिए कि वह केवल पढ़ाई में अपना 100 प्रतिशत दें और अच्छी शिक्षा प्राप्त करें। परीक्षा के अंक तथा पास या फेल होना जीवन का एक हिस्सा है और इससे सीख लेकर आगे अच्छा करने का प्रयत्न करना चाहिए।
2. **परीक्षा का दबाव** : अकसर देखा गया है कि छात्र परीक्षा के दबाव में या पढ़ाई के बढ़ते दबाव के कारण तनाव में आ जाते हैं। आजकल बढ़ती हुई प्रतियोगिता की होड़ में छात्रों पर दबाव बढ़ता ही जा रहा है। अर्थात् वह अपनी अपेक्षा के विपरीत खुद को देखते ही असमर्थ महसूस करने लगते हैं। ऐसे समय में चाहिए कि अभिभावक छात्रों को पूरा सहयोग करें। उन पर अपनी महत्वाकांक्षाओं का बोझ डालने के बजाय उन्हें समझाएं कि कोई प्रतियोगी परीक्षा या किसी विषय को लेकर तनाव लेने की जगह निस्संदेह अपनी पढ़ाई पर ध्यान दें।
3. **रुचि के अनुसार आगे न बढ़ना** : साथ ही यह भी देखा गया है कि कई बार छात्र अपनी रुचि के अनुसार शैक्षिक करियर में आगे नहीं बढ़ पाते हैं, जिस कारण उन्हें उनकी अपेक्षा के अनुकूल सफलता न मिलने के कारण वह तनाव में आ जाते हैं। ऐसी परिस्थिति में छात्रों को खुलकर अपनी रुचि अपने अभिभावकों को समझानी चाहिए, भविष्य में उसके स्कोप्स कितने हैं इस बारे में उनसे चर्चा करनी चाहिए। साथ ही साथ अभिभावकों को भी यह सलाह है कि वह अपने बच्चों की रुचि के अनुसार ही उनके शैक्षिक करियर को चुनें, जिसमें उनका बच्चा अच्छी तरह आगे बढ़ सके।
4. **पीयर प्रेशर** : अक्सर किशोरावस्था में बच्चे अपने दोस्तों, सहपाठियों को प्रसन्न करने की कोशिश करते हैं। कभी–कभी यह सहकर्मी प्रभाव सकारात्मक होता है जिसमें एक बच्चा खेल से जुड़ी गतिविधियों में अधिक भाग लेने या पढ़ाई में बेहतर प्रदर्शन करने के लिए प्रोत्साहित होता है क्योंकि उसके दोस्त ऐसा कर रहे होते हैं, लेकिन कभी–कभी दोस्तों का गलत प्रभाव भी पड़ सकता है जिसकी वजह से बच्चे गलत चीजों का शिकार बन जाते हैं और अगर माता–पिता बच्चों पर ज़बरदस्ती करने की कोशिश करते हैं तो उसका उल्टा असर होता है और बच्चे आक्रामक हो जाते हैं या माता–पिता से अपनी बातें छुपाने लगते हैं, जिससे वह तनाव में भी आ जाते हैं। अर्थात् यदि आपको ऐसा प्रतीत हो रहा है कि आपका सहकर्मी या मित्र आपको किसी ऐसी गतिविधियों के लिए प्रेरित कर रहा है जो आपके लिए बिलकुल सही नहीं तो बिना डरे आप अपने मित्र को ऐसी गतिविधियों के लिए मना करना सीखें तथा साथ ही साथ अभिभावक भी अपने बच्चे को हमेशा यह विश्वास दिलाएं कि आप हमेशा उसके साथ हैं अर्थात् आप उसे किसी भी परिस्थिति में अकेला नहीं छोड़ेंगे। ऐसा करने से वह अपनी बातों को आपसे नहीं छुपाएगा और उनका आत्मविश्वास भी बढ़ेगा।

2. परीक्षा भय

टिप्पणी

परीक्षा का भय सभी आयु वर्ग के छात्र–छात्राओं में होता है। कुछ छात्र–छात्राएं इससे उबरने के लिए संघर्ष करते हैं और इस संघर्ष के क्रम में उन्हें दुश्चिंता घेर लेती है। कुछ मामलों में तो वे अवसाद से भी ग्रस्त हो जाते हैं। परीक्षा के इस भय के चलते छात्र कभी–कभी अपनी योग्यता के अनुरूप भी प्रदर्शन नहीं कर पाते। इस भय से उनमें किसी भयजनक स्थिति या वस्तु से बचने की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है, जिसके फलस्वरूप भय और भी गहरा हो जाता है।

आम तौर पर परीक्षा के भय से ग्रस्त छात्र–छात्राओं को परीक्षा में प्रदर्शन की एक या एक से अधिक स्थितियों का गहरा भय होता है। परीक्षा की स्थितियों में उन्हें असीम बेचैनी और दुश्चिंता की अनुभूति होती है, और वे यथासंभव बचने का प्रयास करते हैं। कुछ छात्र–छात्राओं को तो यह भय परीक्षा के दिन से बहुत पहले से सताने लगता है। जीदनर के अनुसार इस भय से ग्रस्त छात्र–छात्राओं में नकारात्मक विचार उत्पन्न हो जाते हैं, जिनके चलते वे अपनी योग्याता के अनुरूप भी कार्य नहीं कर पाते जबकि परीक्षा मूल्यांकन की एक प्रक्रिया होती है। इसे भय के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए, बल्कि यह तो छात्र–छात्राओं के ज्ञान और क्षमताओं को मापने की एक जांच है। नाइजेल का मानना है कि परीक्षा उन्हें व्याकुल कर देती है और वे परीक्षा से घृणा करने लगते हैं। यह भय आम तौर पर मेधावी और मेहनती छात्र–छात्राओं को उतना नहीं सताता जितना कि कमजोर छात्र–छात्राओं को।

परीक्षा का भय एक सामान्य भय है, किंतु परीक्षा के पहले या उसके दौरान यदि यह भय तीव्र हो, तो परिणाम चिंताजनक हो सकते हैं। भय तब समस्यात्मक हो सकता है, जब यह परीक्षा में छात्रों को उनकी योग्यता के अनुरूप प्रदर्शन करने से रोके, वे हमेशा चिंतित रहें अथवा जब यह सीमा से अधिक हो जाए।

परीक्षा का भय उन शारीरिक लक्षणों और संवेगों का परिणाम होता है, जो जिनके चलते परीक्षा में अच्छा करने की छात्रों की योग्यता को क्षति पहुंचे। अलग–अलग कारणों से किसी एक छात्र के भय के स्तर किसी दूसरे छात्र के भय के स्तर से अलग होते हैं।

परीक्षा भय के लक्षण

परीक्षा भय के मुख्य लक्षण हैं – संज्ञानात्मक और आचरणजन्य, संवेगात्मक और शारीरिक। इन लक्षणों का संक्षिप्त विवरण यहां प्रस्तुत है।

आचरणजन्य एवं संज्ञानात्मक लक्षण : इसमें एकाग्रता की कमी, नकारात्मक सोच, दूसरों से अपनी तुलना करना, दीर्घसूत्रता आदि आते हैं। छात्र कक्षा से अनुपस्थित रहने लगते हैं, बल्कि कुछ छात्र तो स्कूल ही छोड़ देते हैं। वहीं, कुछ अन्य मदिरा अथवा अन्य मादक पदार्थों का सेवन करने लगते हैं।

संवेगात्मक लक्षण : इसमें अवसाद, तनाव, असंतोष, नकारात्मक सोच, भावशून्यता, आत्मसम्मान का अभाव, क्रोध और निराशा की अनुभूति आते हैं।

शारीरिक लक्षण : परीक्षा भय के शारीरिक लक्षणों में पसीना छूटना, सिरदर्द, सांस की कमी, चक्कर कंपन, धड़कन की गति में तेजी, मुंह सूखना, बेहोशी और अरुचि तथा मिचली आदि आते हैं।

टिप्पणी

परीक्षा भय के कारण

परीक्षा भय के प्रमुख कारण इस प्रकार हैं—

असफलता का भय : कई छात्र आत्ममूल्य की भावना को परीक्षा के अंकों से जोड़ लेते हैं और दबाव में आ जाते हैं। इससे उनके मन में परीक्षा को लेकर एक गंभीर चिंता उत्पन्न हो जाती है और वे भय से ग्रस्त हो जाते हैं। उन्हें असफलता का डर सताने लगता है और वे अपनी योग्यता के अनुरूप परिणाम प्राप्त नहीं कर पाते।

अतीत के परिणाम : समुचित पढ़ाई और तैयारी नहीं करने के कारण पिछली परीक्षाओं में जो बुरे परिणाम हुए होते हैं, वे छात्र—छात्राओं के मन में अकसर हीनता की भावना पैदा करते रहते हैं। ऐसे में वे परीक्षा को लेकर भयभीत हो उठते हैं।

तैयारी का अभाव : छात्र समय रहते तैयारी नहीं करते, बल्कि इसके लिए अंतिम समय तक रुके रहते हैं। जब परीक्षा निकट आती है, तब तक बहुत देर हो चुकी होती है, फलतः वे चिंता और भय से ग्रस्त हो जाते हैं।

इस स्थिति से उत्पन्न चिंता और नकारात्मक अभिवृत्ति उनकी आगामी परीक्षा में यह भय का एक मुख्य कारण है।

माता—पिता की अपेक्षाएं और दबाव : माता—पिता की कामना रहती है कि उनके बच्चे परीक्षाओं में अन्य बच्चों से अच्छा करें। इसके लिए कुछ माता—पिता अपने बच्चों पर अत्यधिक दबाव डालते हैं। यह दबाव प्राथमिक स्कूल से ही शुरू हो जाता है और बच्चों की प्रगति के साथ—साथ बढ़ता चलता है। अपने बच्चों को कक्षा में सबसे ऊपर देखने की उनकी इस आकांक्षा में बच्चों के सुंदर भविष्य की कामना तो रहती ही है, यह भावना भी रहती है कि समाज में लोग समझें कि वे अपने बच्चों की परवरिश किस प्रकार करते हैं, अर्थात् समाज उन्हें अच्छे माता—पिता के रूप में देखे। पर उनके इस दबाव के कारण परीक्षा को लेकर बच्चों का भय गहरा हो जाता है, ऐसे में कई बच्चे अपनी योग्यता के अनुरूप प्रदर्शन नहीं कर पाते।

परीक्षा भय से मुक्ति के उपाय

लगभग सभी छात्र इस बात को लेकर चिंतित रहते हैं कि परीक्षा में कहीं वे अपनी पढ़ाई भूल न जाएं। इस भय के चलते वे यथा वांछित प्रदर्शन नहीं कर पाते। शिक्षक इस भय को दूर करने में छात्रों की सहायता कर सकते हैं। उन्हें छात्रों को समझाना चाहिए कि परीक्षा उनके कौशलों का पता लगाने की शिक्षा की एक प्रक्रिया मात्र है। यह संदेश माता—पिता को भी दिया जाना चाहिए। उन्हें छात्रों को उनकी छोटी से छोटी उपलब्धि की भी सराहना करनी चाहिए, जिससे उनके आत्मसम्मान और परिश्रम में वृद्धि होगी। सराहना से उन्हें प्रेरणा मिलेगी। शिक्षकों को छात्रों की उनकी कमियों का पता लगाने में सहायता करनी चाहिए। आत्म मूल्यांकन से उन क्षेत्रों का पता चलता है, जिनमें सुधार की आवश्यकता अधिक होती है।

नीचे कुछ उपाय प्रस्तुत हैं, जो छात्रों को परीक्षा के भय से मुक्ति दिलाने में सहायक हो सकते हैं।

तनाव पर नियंत्रण

आज छात्र अकसर भ्रांति की स्थिति में और तनावग्रस्त देखे जाते हैं। एक आम भावना यह है कि इसके लिए बहुत हद तक माता—पिता या अभिभावक और शिक्षक उत्तरदायी

टिप्पणी

होते हैं। माता–पिता इसलिए कि वे अपने बच्चों को अन्य बच्चों से आगे देखना चाहते हैं। शिक्षक इसलिए उन पर अधिक से अधिक अंक प्राप्त करने का दबाव डालते हैं कि उन्हें शिक्षा जगत में अपने स्कूल को प्रतिष्ठा दिलाने और उस प्रतिष्ठा को बनाए रखने की चिंता रहती है। बच्चों को तनाव और भय से मुक्त रखने के लिए इन स्थितियों को पनपने नहीं दिया जाना चाहिए।

सहायता और समर्थन

बच्चों को माता–पिता और शिक्षकों की सहायता व समर्थन की आवश्यकता होती है। माता–पिता और शिक्षकगण कुछ उपाय अपना कर बच्चों को कुछ राहत दिला सकते हैं। स्कूलों को परीक्षा से पहले अध्ययन के लिए अवकाश के दिन निर्धारित करने चाहिए, ताकि बच्चों के मन को आराम का अवसर मिले। इस दौरान पढ़ाई के अतिरिक्त बच्चों को मनोरंजन का अवसर भी मिलना चाहिए। वहीं, माता–पिता को सदैव बच्चों के आसपास ही रहना चाहिए और उन्हें समय–समय पर प्रोत्साहित करना चाहिए। उन्हें बच्चों के खानपान पर भी ध्यान रखना चाहिए।

उन्हें उनकी आलोचना या उपहास नहीं करना चाहिए, न ही पढ़ाई को लेकर खीज या आवेग का प्रदर्शन करना चाहिए। उन्हें बस उनके साथ खड़ा रहना चाहिए। यदि वे तैयारी कम कर रहे हों या नहीं कर रहे हों, तो उनसे प्रेम से इसका कारण पूछना चाहिए, फटकार या दुत्कार से नहीं। यदि बच्चे कड़ी मेहनत कर रहे हों, तो उनसे कहना चाहिए कि वे मेहनत करें, परिणाम की चिंता नहीं करें।

समुचित आहार

फुटपाथों या ढाबों के भोजन से परहेज स्वास्थ्य के लिए आवश्यक होता है। इसकी बजाय, बच्चों को फलों, शाक–सब्जियों और दूध, दही से भरपूर भोजन दिया जाना चाहिए, ये सभी चीजें उनके शरीर को आवश्यक ऊर्जा और आंतरिक बल देंगी। ताजा फलों का रस, दूध और सादा पानी आवश्यक हैं। वहीं, बच्चों को आठ घंटों तक सोना चाहिए। घर में आनंद का माहौल भी आवश्यक होता है।

परीक्षा का तनाव

परीक्षा का तनाव दबाव की एक अनुभूति है, जो कई छात्र–छात्राओं को परीक्षा के समय होती है। यह अकसर परीक्षाओं से पहले पुनरीक्षण काल में और परीक्षाओं के ठीक पहले होता है। तनाव की व्याख्या दबाव के प्रति किसी व्यक्ति की अनुक्रिया के रूप में की जाती है। तनाव दबाव को जन्म देता है, यह किसी व्यक्ति की अनुक्रिया पर निर्भर करता है। किंतु, कुछ छात्र–छात्राओं के लिए, जब उन्हें लंबे समय तक अत्यधिक दबाव की अनुभूति होती रहती है, यह तनावपूर्ण हो जाता है। माध्यमिक विद्यालय शिक्षा किसी छात्र के शैक्षिक जीवन का नया मोड़ होती है। इस अवस्था में, छात्र–छात्राओं के परीक्षा परिणाम का उनकी अगली शिक्षा या संभवतः उनकी वृत्ति के निर्णय में अहम भूमिका अदा करते हैं।

परीक्षा का तनाव मनोवैज्ञानिक स्थिति की एक अवस्था होती है, जिसमें छात्र–छात्राओं को अत्यधिक कष्ट और परेशानी का सामना करना पड़ता है। तनाव की यह स्थिति परीक्षा के पहले और उसके दौरान पनपती है। यह तनाव वस्तुतः कई छात्र–छात्राओं की पढ़ाई पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है।

टिप्पणी

लक्षण

परीक्षा के तनाव के कुछ मुख्य लक्षण व संकेत इस प्रकार हैं :

शारीरिक लक्षण : इन लक्षणों में धड़कन की गति में अनियमितता, मांसपेशियों में खिंचाव, आधासीसी या सिरदर्द, समूचे शरीर में दर्द की अनुभूति, थकान की अनुभूति, अकारण पसीना छूटना, पेट की गड़बड़ी, मिचली, संभ्रम, मुंह का सूखना, नींद का अभाव या उसमें अनियमितता आदि आते हैं।

आचरणिक लक्षण : इनमें बेचैनी, नाखून कुतरना, आदि शामिल हैं। छात्रों में धूम्रपान, मदिरापान अथवा अन्य नशीले पदार्थों के सेवन के प्रति झुकाव बढ़ जाता है।

संवेगात्मक और मानसिक लक्षण : इनमें एकाग्रता की कमी, विचारों में अस्थिरता, भावशून्यता, चिंता और भय, आतंक या निराशा की असीम अनुभूति, एकाकी रहने की प्रवृत्ति, उदासी, आदि शामिल हैं।

तनाव के प्रभाव

छात्र–छात्राओं को जब तनाव की अनुभूति होती है, तब उनका मस्तिष्क जानकारी का संचय करने की स्थिति में नहीं रह जाता। उन्हें जितना अधिक तनाव होता है, उनमें कार्य के प्रति उदासी भी उतनी ही अधिक होती है।

परीक्षा के दौरान तनाव की अनुभूति के कारण छात्र अपनी सारी पढ़ाई भूल सकते हैं। वैसे, यदि वे समुचित तैयारी करें, तो इसकी संभावना कम होगी, किंतु कभी–कभी अत्यधिक तैयारी भी समस्याएं खड़ी कर सकती है।

परीक्षा के तनाव के कारण

माता–पिता की उच्चाकांक्षा : माता–पिता चाहते हैं कि उनके बच्चे स्कूल में न केवल सफल हों, बल्कि सबसे आगे रहें। वहीं, वे जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी उन्हें सफल देखना चाहते हैं। बच्चों को दिशा निर्देश देने के प्रयास में माता–पिता बच्चों के तनाव के मुख्य कारक बन जाते हैं।

परिवेश : स्कूल का परिवेश भी बच्चों के तनाव का कारक हो सकता है।

निवारण

तनाव के उपचार से बेहतर उसकी रोकथाम करना है। इससे बचाव के लिए छात्र–छात्राओं को सुव्यवस्थित, स्थायी, संगठित, और सुनियोजित प्रयास करना चाहिए। उन्हें आत्मविश्वास बनाए रखना चाहिए और समय रहते परीक्षा की तैयारी कर लेनी चाहिए।

संज्ञानात्मक उपागमों, तनाव को दूर करने के उपायों को समझना, के साथ कौशल–केंद्रित उपागमों का सृजन करना तनाव कम करने का सर्वाधिक प्रभावकारी तरीका है। छात्र–छात्राओं को जब परीक्षा के तनाव के कारणों का ज्ञान हो जाए, तब उन्हें स्वयं से अतिरिक्त प्रश्न पूछने चाहिए, ताकि वे समझ सकें कि कौन सा प्रयास सर्वाधिक उपयुक्त होगा। उदाहरणस्वरूप, यदि उन्हें लगे कि वे परीक्षा के लिए पूरी तरह से तैयार नहीं हैं, तो उन्हें स्वयं से पूछना चाहिए कि परीक्षा की तैयारी में उनसे कहां चूक हुई। क्या उन्हें पढ़ने का पर्याप्त समय नहीं मिला? क्या वे विषय सामग्री

ठीक से समझ नहीं सके? यह आत्म–मंथन का एक प्रभावकारी तरीका है, जो तनाव को कम करने में सहायक हो सकता है।

तनाव के निवारण की कुछ विधियां यहां प्रस्तुत हैं–

टिप्पणी

श्वासोच्छ्वास की तकनीक : तनाव के दौरान छात्र–छात्राओं की सांसें तेज हो जाती हैं और फूलने लगती हैं। ऐसी स्थिति में उन्हें किसी आरामदायक स्थान पर बैठ जाना और सांसों को सामान्य करने का प्रयास करना चाहिए।

योग और व्यायाम : योग और व्यायाम शरीर व मन दोनों के लिए उपयोगी होते हैं। तनाव से बचाव के लिए नियमित रूप से कम से कम 10 से 15 मिनट तक व्यायाम और योगाभ्यास करना चाहिए।

पर्याप्त नींद : तनाव को कम करने के लिए नींद का सामान्य और पर्याप्त होना आवश्यक है। सोने के पहले किसी तरह की शक्तिवर्धक औषधि अथवा ऐसी किसी चीज का सेवन नहीं करना चाहिए। सोने के पहले स्नान कर लेना अच्छी नींद में सहायक होता है।

मित्रों की सहायता : तनाव को कम करने में मित्र सहायक हो सकते हैं। छात्रों को एक टोली तैयार करनी चाहिए, जिसमें आपस में चर्चा–परिचर्चा कर तनाव को कम करने का प्रयास करें।

तनाव की रोकथाम के कुछ अन्य उपाय

बच्चों को परीक्षा के समय रात को देर से सोना नहीं चाहिए। अंतिम समय में किसी विषय की तैयारी अथवा पिछली तैयारी पर चर्चा तनाव को जन्म दे सकती है, इसलिए इन सबसे परहेज करना आवश्यक है। उन्हें मादक पदार्थों का सेवन कतई नहीं करना चाहिए – इसका पढ़ाई और स्वास्थ्य दोनों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

बच्चों को तनाव से मुक्त रखने में माता–पिता भी अहम भूमिका निभा सकते हैं। उन्हें बच्चों पर परीक्षा में ऊंची श्रेणी प्राप्त करने के लिए दबाव नहीं डालना चाहिए और न ही असफल होने की स्थिति में उनकी उपेक्षा करनी चाहिए। उन्हें बच्चों के प्रयासों की सराहना के साथ–साथ बढ़ावा देते रहना चाहिए। उन्हें न तो बच्चों की अन्य बच्चों से तुलना करनी चाहिए और न ही उनके साथ नकारात्मक चर्चा करनी चाहिए। उनकी तैयारी के समय माता–पिता को हमेशा उनके साथ खड़ा रहना चाहिए। उनका व्यवहार मैत्रीपूर्ण हो, ताकि बच्चे सुरक्षित महसूस करें। बच्चों की पढ़ाई के एक समुचित परिवेश की व्यवस्था करनी चाहिए। बच्चों के समक्ष किसी भी प्रकार के द्वंद्व की स्थिति पनपने नहीं देना चाहिए, अन्यथा उनकी पढ़ाई प्रभावित हो सकती है।

3. शारीरिक दंड

बच्चों को अकसर अनुशासन के एक माध्यम के रूप में स्कूल में शिक्षक की पिटाई झेलनी पड़ती है। शारीरिक दंड का अर्थ शरीर को चोट पहुंचाना है। पीटना, प्रहार करना, थप्पड़ मारना, चिकोटी काटना अथवा छड़ी, बेल्ट या ऐसी किसी अन्य चीज से मारना इस श्रेणी में आता है। यह हिंसा दंड का एक जानबूझकर किया जाने वाला कार्य अथवा किन्हीं उत्तेजित शिक्षक, माता या पिता, किसी वयस्क अथवा किसी बड़े बच्चे की आवेगशील प्रतिक्रिया हो सकती है। किंतु हिंसा चाहे किसी भी रूप में हो, यह

हमेशा ही बच्चों के मूलभूत मानवाधिकारों का एक उल्लंघन होती है। शारीरिक दंड की व्याख्या अनुशासन के प्रयोजनों से किसी अधिकारप्राप्त व्यक्ति द्वारा एक पीड़ादायक, जानबूझकर शरीर को दिये जाने वाले दंड के रूप में की जा सकती है।

टिप्पणी

हम सभी ने कभी–न–कभी शारीरिक दंड का दुख झेला है। जब घर में बेटे के जिद करने पर उसकी जिद पूरी नहीं कर पाने की स्थिति में मां उसे थप्पड़ मारती है; जब पिता बेटी को इसलिए झकझोरते हैं कि उसने किसी दूसरे बच्चे पर प्रहार किया है; जब किसी किशोर को इसलिए पीटा जाता है क्योंकि उसने किसी बड़े को पलट कर जवाब दिया है। शारीरिक दंड के ये उदाहरण सामान्य हैं।

शारीरिक दंड के शब्द को कई तरीकों से समझा जा सकता है। ऐसे में इसकी एक सर्वमान्य व्याख्या यह है कि अनुशासन की एक क्रिया के रूप में शारीरिक दंड पीड़ा और कष्ट पहुंचाने के ध्येय से किया जाने वाला शारीरिक शक्ति का उपयोग है।

शारीरिक दंड किसी बच्चे को अनुशासन सिखाने के नानाविध गलत तरीकों में से एक है। लक्ष्य शारीरिक दंड नहीं बल्कि हिंसा का उपयोग किये बिना अनुशासन सिखाना है।

समाज में शारीरिक दंड की जड़ सख्ती से जमी है, और यह पीढ़ी दर पीढ़ी चला आ रहा है, हालांकि इसका यह अर्थ नहीं कि यह जायज़ है। हमें अभी कुछ वर्षों पहले तक महिलाओं की स्थिति पर विचार करना चाहिए, जो तब आज से भिन्न थी। फिर इसे गलत और अनुचित माना जाने लगा। हम इसके लिए किसी को दोष नहीं दे सकते, बल्कि हमारा प्रयास तो स्थिति में सकारात्मक परिवर्तन लाना होना चाहिए।

शारीरिक दंड को सही मानने वाले माता–पिता के अपने कारण हैं। वे बच्चों को लालच देना इसलिए सही मानते हैं कि इससे घर में तनाव में कमी आती है। उनका तर्क होता है कि बच्चों की सारी मांगें पूरी करना संभव नहीं होता, ऐसे में जब कभी बच्चे किसी बात के लिए जिद कर बैठें तो उन्हें डांटना या आत्यंतिक स्थिति में पीटना उचित है। कभी–कभी स्थिति ऐसी बन आती है कि माता–पिता अपने संवेगों पर नियंत्रण नहीं रख पाते, और बच्चों को या तो डांटते–झकझोरते हैं या फिर थप्पड़ मारते हैं अथवा कोई अन्य शारीरिक दंड देते हैं।

किंतु कारण और तर्क जो भी हो, शारीरिक दंड हर किसी के लिए हानिकारक होता है, इसीलिए इसे समाप्त करना हमारा नैतिक कर्तव्य है।

शारीरिक दंड के प्रभाव

शारीरिक दंड के अनेकानेक प्रभाव होते हैं, जिनमें से कुछ का विवरण यहां प्रस्तुत है–

शारीरिक दंड के चलते कोई बच्चा जीवनपर्यंत मानसिक विकारों जैसे अवसाद, कर्कशता, अत्यधिक दुश्चिंता, आदि का शिकार हो सकता है। वहीं आगे चलकर उसके मन में आत्महत्या का विचार भी पनप सकता है।

इस दंड के चलते बच्चे स्कूल और शिक्षा के प्रति उदासीन हो जाते हैं – वे न तो स्कूल जाना चाहते हैं और न ही पढ़ना।

पढ़ाई के अनुभव के प्रति बच्चों में कुढ़न पैदा होती है, वे पढ़ाई को महत्व देना छोड़ देते हैं।

बच्चे किसी विषय अथवा शिक्षक से घृणा करने लगते हैं।

यदि बच्चे शिक्षकों के भय से ग्रस्त रहें, तो उनका शैक्षिक विकास नहीं हो सकता।

टिप्पणी

इस दंड के चलते बच्चे स्कूल जाना कम कर देते हैं अथवा पढ़ाई छोड़ देते हैं। पढ़ाई में उनकी कोई रुचि नहीं रह जाती।

शारीरिक दंड निष्ठुरता और हिंसा की भावना को जन्म देता है। देखने में आया है कि अपराध और हिंसा करने वाले कई लोग बचपन में शारीरिक दंड के शिकार रहे हैं।

शारीरिक दंड स्कूल की छवि को धूमिल करते हैं।

शारीरिक दंड के चलते घायल बच्चों की चिकित्सा पर खर्च आता है।

शारीरिक दंड के आचरणिक परिणाम

शारीरिक दंड के प्रभाववश कई बच्चों के आचार–व्यवहार में परिवर्तन आ जाता है, वे चिड़चिड़े हो जाते हैं। अन्य बच्चों से बिना कारण लड़ने–झगड़ने लगते हैं। यही नहीं, वे अपने परिवार में भी हिंसात्मक कार्य करने लगते हैं। उनके मन में यह भावना पनपती है कि अपने से कमजोर किसी बच्चे पर अपने विचार थोपने के लिए हिंसा करना गलत नहीं है।

शारीरिक दंड के विकास पर पड़ने वाले प्रभाव

नियमित रूप से शारीरिक दंड झेलने वाले कई बच्चों का संज्ञानात्मक और संवेगात्मक विकास धीमा पड़ जाता है। भय और चिंता के कारण वे कोई नया कार्य नहीं कर पाते। नियमित रूप से होने वाली मानसिक अशांति के कारण उनमें ग्लानि और शर्म की भावना घर कर जाती है। उन्हें सामाजिक और शैक्षिक कौशल सीखने में आवश्यकता से कहीं अधिक समय लगता है। स्कूल में उनके प्रदर्शन में कमी आती है और स्वस्थ व संतोषजनक संबंध कायम करने की उनकी क्षमता बुरी तरह से प्रभावित होती है।

शारीरिक दंड के विकल्प : स्कूल के सुरक्षित परिवेश में सकारात्मक अनुशासन

बच्चों के बुरे व्यवहार के विरुद्ध शारीरिक दंड को रोकना तभी संभव हो सकता है, जब स्कूलों में इस दंड के विरुद्ध व्यावहारिक विकल्प हों।

किसी सुरक्षित स्कूल में सकारात्मक अनुशासन के उपयोग का विकल्प बच्चों को सीखने का अवसर देता है और वे किसी दर्द या पीड़ा के बिना आत्मानुशासन सीखते हैं।

सकारात्मक अनुशासन क्या है?

सकारात्मक अनुशासन बच्चों की संवेगात्मक और मानसिक आवश्यकताओं पर ध्यान देते हुए उनके आचार–व्यवहार को सही दिशा देने का एक तरीका है।

यह उत्तम निर्णय लेने और यह समझने में बच्चों की सहायता करता है कि ये निर्णय उनके सर्वोत्तम हित में क्यों हैं।

सकारात्मक अनुशासन बिना किसी भय के आत्मानुशासन सीखने में बच्चों की सहायता करता है। वे सीख पाते हैं कि कौन सा आचरण स्वीकार्य है और तदनुरूप दिशा निर्देशों का पालन करते हैं।

टिप्पणी

सकारात्मक अनुशासन बच्चों को अपनी गलतियों को समझते हुए आगे बढ़ने का अवसर देता है। वे यह समझ पाते हैं कि सही आचरण किस प्रकार उन्हें सकारात्मक अनुभव के अवसर दे सकता है।

इस पद्धति में बच्चों को उन गतिविधियों में भाग लेने की आवश्यकता होती है, जो उनके बुरे व्यवहार को दूर कर सकती हैं।

सकारात्मक अनुशासन पद्धति बाल–केंद्रित है और बच्चों के सर्वोत्तम हित की दिशा में प्रयासरत होता है। इस पद्धति का मुख्य बिंदु शिक्षक और छात्र–छात्राओं के बीच संबंध होता है। इस संबंध का सृजन शिक्षक बच्चों के विकास की आवश्यकताओं के मूलभूत ज्ञान के आधार पर करते हैं और उनका ध्येय केवल बच्चों का विकास होता है।

सकारात्मक अनुशासन गुरु और मार्गदर्शक के रूप में शिक्षक की भूमिका पर निर्भर करता है।

सकारात्मक अनुशासन पद्धति में शिक्षण के एक उपकरण के रूप में हिंसा का कोई स्थान नहीं होता।

4. स्कूल में हिंसा

स्कूलों में छात्रों, शिक्षकों और अन्य कर्मचारियों के बीच हिंसक गतिविधियां अकसर होती रहती हैं। इनमें छात्रों की छात्रों से लड़ाई, शिक्षकों और छात्रों का एक दूसरे को पहुंचाया जाने वाला शारीरिक या मानसिक आघात, छात्र या शिक्षक अपराध, छात्र और शिक्षक की प्रताड़ना, साइबर प्रताड़ना, साइबर संतर्जन, धर्म या पंथ से संबद्ध गतिविधियों के चलते होने वाली हिंसा, कक्षा में अशांति और शारीरिक हिंसा; मौखिक दुर्व्यवहार और मानसिक हिंसा; बलात्कार, यौन उत्पीड़न और यौन हिंसा, अत्याचार, आदि शामिल हैं।

स्कूल हिंसा की व्याख्या स्कूल समुदाय के किसी सदस्य द्वारा किसी दूसरे सदस्य के विरुद्ध की जाने वाली हिंसक गतिविधियों के रूप में की जाती है। हिंसा शिक्षा संस्थानों में उत्पन्न होती है, किंतु वहीं तक सीमित नहीं रहती, बल्कि स्कूल से जुड़े अन्य स्थलों पर भी हो सकती है, जैसे स्कूल के आसपास के स्थल अथवा वे स्थल जहां पाठ्येतर गतिविधियों का संचालन किया जाता हो, जैसे खेल के मैदान। हिंसा के चलते स्कूल का परिवेश प्रदूषित होता है और उसका प्रतिकूल प्रभाव छात्र–छात्राओं के मानस तथा शिक्षा पर पड़ता है। प्रभावित छात्र तनावग्रस्त हो जाते हैं और कक्षा से अनुपस्थित रहने लगते हैं। वहीं, प्रभावित कर्मचारियों को संवेगात्मक क्षति पहुंचती है। स्कूल में सबसे छोटे बच्चों पर हिंसा का सबसे ज्यादा प्रभाव पड़ता है। उनके साथ शारीरिक दृष्टि से मजबूत और बड़े छात्र निर्दयता का व्यवहार करते हैं, और फिर आगे चलकर वे बच्चे अपने से छोटे बच्चों के साथ दुर्व्यवहार करने लगते हैं।

हिंसा का स्वरूप और सीमा

टिप्पणी

अत्याचार (Bullying) : अत्याचार की व्याख्या सामान्यतः आक्रामक व्यवहार के रूप में की जाती है। इसमें अवांछित, नकारात्मक क्रियाकलाप, आदि आते हैं। इसे शक्ति का एक सुव्यवस्थित दुरुपयोग भी कहा जाता है। किसी प्रताड़ित बच्चे के साथ यह बार–बार किया जाता है।

अत्याचार का सर्वाधिक आम स्वरूप मौखिक होता है, जिस पर यदि रोक न लगाई जाए, तो यह शारीरिक हिंसा का रूप भी ले सकता है। शोध से पता चलता है कि अधिकांश अत्याचार अपने स्वरूप में यौन अथवा महिला–केंद्रित होते हैं। जिन बच्चों पर अत्याचार किया जाता है, उनके मानसिक स्वास्थ्य को भी खतरा रहता है – उनमें अवसाद के लक्षण या खाने, सोने आदि की समस्याएं दिखाई दे सकती हैं।

स्कूलों में अत्याचार की घटनाएं अकसर होती रहती हैं और कई संदर्भों में होती हैं। अत्याचार कोई बच्चा किसी दूसरे बच्चे पर या बच्चों की कोई टोली किसी एक बच्चे पर अथवा कोई टोली किसी दूसरी टोली पर करते देखा जा सकता है। शिक्षकों पर बच्चों का प्रहार या शिक्षकों का बच्चों पर प्रहार भी इसमें शामिल है। अत्याचार का मुख्यतः दो श्रेणियों में वर्गीकरण किया जा सकता है – शारीरिक और मौखिक। शारीरिक अत्याचार का तात्पर्य किसी बड़े और मजबूत बच्चे का किसी छोटे और कमजोर बच्चे पर अत्याचार से है और मौखिक अत्याचार का तात्पर्य तंग करने के अप्रिय तरीके तथा मौखिक दुर्व्यहार के अतिरिक्त अप्रत्यक्ष और संबंधपरक अत्याचार से है। अप्रत्यक्ष अत्याचार का अर्थ किसी बच्चे को स्वयं प्रताड़ित न कर किसी दूसरे से प्रताड़ित कराना होता है, अर्थात् इसमें मुख्य दोषी प्रत्यक्ष रूप से स्वयं शामिल नहीं होता। संबंधपरक अत्याचार का तात्पर्य उस प्रताड़ना से है, जिसमें सहपाठियों या समकक्षों को इस प्रकार क्षति पहुंचाई जाती है, जिससे उनके संबंध खराब हो जाते हैं। इसमें किसी बच्चे को उसके किसी मित्र के विरुद्ध गलत बातें कहना, या सामूहिक बहिष्कार शामिल है।

शारीरिक अत्याचार : इस हिंसा की व्याख्या ऐसे किसी भी दंड के रूप में की जाती है, जिसमें शारीरिक बल का प्रयोग किया जाता है और जिसका ध्येय हल्की या गंभीर पीड़ा अथवा कष्ट पहुंचाना होता है। इसमें किसी प्रताड़ित बच्चे को चोट पहुंचाना, लात मारना, धक्का मारना, कमरे में बंद कर देना, उसका सामान छीनकर तोड़–फोड़ देना, उससे बलपूर्वक काम कराना, आदि आते हैं। यह शारीरिक हिंसा के अन्य रूपों से भिन्न होता है।

मानसिक अत्याचार : इसमें मौखिक दुर्व्यवहार, संवेगात्मक दुर्व्यवहार, सामूहिक बहिष्कार, आदि शामिल हैं। इसमें अनादर करने, नीचा दिखाने, बदनाम करने, धमकियां देने, डराने, ताना मारने, सम्मान को क्षति पहुंचाने वाली गंदी अफवाहें फैलाने, आदि समेत कठोर और अपमानजनक मानसिक दंड आते हैं, जो शारीरिक स्वरूप के नहीं होते।

इंटरनेट पर अत्याचार : इसमें ईमेल और इंटरनेट पर बातचीत के जरिए अत्याचार शामिल है। यह अत्याचार आज एक गंभीर चिंता का विषय बन चुका है और इसमें उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है।

यौन और महिला–केंद्रित हिंसा : यौन हिंसा का शिकार सामान्यतः छात्राएं होती हैं, किंतु यदा–कदा लड़के भी इसका शिकार होते हैं। महिला–केंद्रित हिंसात्मक

घटनाएं महिला असमानता, रूढ़ मान्यता और सामाजिक स्तर पर थोपी गई भूमिकाओं के कारण घटती हैं। हिंसा की घटनाएं लड़कों और लड़कियों के साथ अलग–अलग रूप में घटती हैं, उनके अनुभव अलग होते हैं और वे स्वयं अलग ढंग से हिंसात्मक व्यवहार करते हैं। उदाहरणस्वरूप, आम तौर पर लड़कों को लड़कियों की तुलना में शारीरिक दंड अधिक दिया जाता है। इसके विपरीत यदि लड़कियां समाज में उनके लिए निर्धारित भूमिका के विपरीत कोई कार्य करती देखी जाती हैं, तो उन्हें परेशान किया जाता है, उन पर छींटाकशी की जाती है। लड़कियों के साथ यौन हिंसा उन्हें डराने–धमकाने, दंड देने या अपमानित करने या फिर काम तृप्ति के ध्येय से की जा सकती है। यौन हिंसा से लड़कियों के आत्मसम्मान को क्षति पहुंचती है। यही नहीं, वे अपनी पढ़ाई में अपनी योग्यता का समुचित प्रदर्शन नहीं कर पातीं और कभी–कभी तो पढ़ाई बीच में ही छोड़ देती हैं।

मारपीट

स्कूल परिसर में मारपीट और टोलियों के बीच लड़ाई की घटनाएं भी यदा–कदा घटा करती हैं। इनमें मारपीट तथा उससे उपजे भय और असुरक्षा का प्रभाव दोषी और प्रताड़ित दोनों व्यक्तियों के साथ–साथ उन पर भी पड़ता है, जो इसमें शामिल नहीं होते। इसमें छात्र हथियार का उपयोग भी करते देखे जाते हैं।

यहां यह उल्लेखनीय है कि स्कूलों में हिंसा जिन बच्चों के साथ होती है, केवल उन्हीं तक सीमित नहीं रहती। इसे देखने वाले बच्चों पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। इससे स्कूल में भय, दुश्चिंता और असुरक्षा का एक परिवेश जन्म लेता है, जो शिक्षा के अनुकूल नहीं होता। अपने चरम रूप में हिंसात्मक व्यवहार या हिंसा की धमकी प्रभावित बच्चों को पढ़ाई बीच में ही छोड़ देने को विवश कर देती है, या फिर हिंसा से रक्षा के लिए उनके माता–पिता उन्हें घर पर ही रख लेते हैं।

कारण

आचरणिक समस्याएं : बच्चों में कुछ आचरणिक समस्याएं होती हैं, जो उनके व्यक्तित्व में कुछ खास विकारों को जन्म देती हैं, जैसे बातचीत की समस्या, आत्मसम्मान की भावना का अभाव और आवेग। ये बच्चे स्कूल की गतिविधियों में घुल–मिल नहीं पाते और उपेक्षित महसूस करते हैं। उन्हें अपने साथियों के उपहास का सामना भी करना पड़ता है।

पारिवारिक परिवेश : बच्चों पर उनके परिवार का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। परिवार का परिवेश यदि दूषित हो, तो बच्चों का आचरण असामान्य हो सकता है। घरेलू हिंसा और घर में शारीरिक, मानसिक या स्वत्व दुरुपयोग बच्चों में यह भावना भर देता है कि समाज में आक्रमण और प्रहार की गुंजाइश है। उनकी यह भावना स्कूल में शिक्षकों अथवा अन्य बच्चों के साथ दुर्व्यवहार के रूप में दिखाई देती है। यही नहीं, इसका एक दूरगामी प्रभाव यह होता है, ऐसे परिवेश में पले–बढ़े बच्चे वयस्क होने पर कानून का उल्लंघन करते हैं और अपने बच्चों और परिवारों के प्रति अनुशासन व उत्तरदायित्व का निर्वाह नहीं कर पाते।

माता–पिता के मार्गदर्शन का अभाव : परिवार और माता–पिता को अपने क्रियाकलापों से अपने बच्चों पर सकारात्मक प्रभाव डालने की अपेक्षा की जाती है। किंतु,

टिप्पणी

आज माता–पिता दोनों काम पर जाते हैं, जो उनकी विवशता होती है। फलस्वरूप वे अपने बच्चों के लिए बहुत कम समय निकाल पाते हैं। कोई बच्चा जैसे–जैसे बड़ा होता है उसका सामना उसके आसपास की नई–नई चीजों से होता है। इनमें से कुछ उसे निरंतर परेशान करती रहती हैं, जो उसकी सोच के अनुरूप नहीं होतीं। किंतु, अपने–अपने कामों में व्यस्त माता–पिता उसकी समस्याओं को दूर नहीं कर पाते। ऐसी स्थिति में सामान्य परिवारों के वे बच्चे भी हिंसा के जाल में फंस सकते हैं।

संचार माध्यम : कुछ लोगों का मानना है कि संचार माध्यम भी स्कूल में हिंसा के कारक होते हैं, और यह कुछ हद तक सही भी है। टेलीविजन में हिंसा, वीडियो गेम में हिंसा और हिंसा के लक्ष्यार्थों वाले गीत–संगीत का बच्चों की मानस पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

हथियारों की उपलब्धता : स्कूलों में हिंसा का एक कारण छात्रों को सुलभता से हथियार उपलब्ध होना भी है। मारपीट में छात्र अकसर हथियार का उपयोग करते देखे जाते हैं।

यथार्थवादी और प्रभावकारी अनुशासन तंत्र का अभाव : यह एक मुख्य कारण है। स्कूलों में कहा–सुनी शुरू होने के समय ही उसे रोकने की बजाय हिंसा जब शुरू हो जाती है तब उसे रोकने का प्रयास किया जाता है।

सामुदायिकता का अभाव : छात्रों को माता–पिता, शिक्षकों और सलाहकारों की सहायता की आवश्यकता होती है। स्कूल प्रशासन को इनके बीच सरल, अनिवार्य और निरंतर संवाद की व्यवस्था करनी चाहिए।

निवारण के उपाय

सभी छात्रों और कर्मचारियों से मिलकर उन्हें यह संदेश दिया जाना चाहिए कि स्कूल के परिवेश और परिसर में असहिष्णुता, उत्पीड़न और हिंसा की कोई घटना न हो। हिंसा और उसकी रोकथाम के उपायों पर चर्चा–परिचर्चा में छात्र, कर्मचारी, माता–पिता और समाज के इच्छुक लोगों को भाग लेना चाहिए। छात्रों के समूहों में संवाद–संचार की कोई रुकावट नहीं होनी चाहिए। हिंसा की रोकथाम के प्रयासों में छात्रों को शामिल किया जाना चाहिए। समुदाय, संचार माध्यमों और पुलिस के साथ प्रभावकारी ढंग से सहयोग किया जाना चाहिए।

विमर्श एवं चिंतन : शिक्षकों को समाज के मानदंडों, मूल्यों और मान्यताओं पर चर्चा और चिंतन करना चाहिए। किंतु, हिंसात्मक अनुशासन को रोकने के लिए, उनके पास अनुशासन के वैकल्पिक उपाय होने चाहिए जिनका उपयोग वे कक्षा में कर सकें।

शिक्षकों की सहायता : शिक्षण एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। शिक्षकों को अकसर ऐसी कक्षाओं में काम करना पड़ता है, जिनमें छात्रों की संख्या बहुत होती है, किंतु संसाधन पर्याप्त नहीं होते। उन पर कार्य का भारी बोझ होता है, कभी–कभी उन्हें वांछित प्रशिक्षण, सहायता और समुचित वेतन नहीं मिलते। इन और इन जैसे अन्य अनेक कारणों से शिक्षकों में असंतोष रहता है और वे बच्चों में अनुशासन बनाए रखने के लिए शारीरिक दंड का उपयोग करते हैं। शारीरिक दंड को रोकने के लिए शिक्षकों के असंतोष के उक्त कारणों को दूर करने का प्रयास किया जाना चाहिए।

टिप्पणी

सामूहिक प्रयास : हिंसा को रोकने में शिक्षकों, स्कूल प्रबंधन, छात्र–छात्राओं, स्कूल के भौतिक परिवेश, स्कूल के समुदाय और माता–पिता के स्तर पर किये जाने वाले प्रयास प्रभावकारी होते हैं। यदि ये प्रयास पूरे मनोयोग से किये जाएं, तो शिक्षक भी छात्रों को हिंसात्मक दंड देना छोड़ सकते हैं। इसलिए, हिंसा को रोकने हेतु स्कूल में सभी स्तरों पर प्रयास किये जाने चाहिए।

समुचित प्रयासों का संयोजन : स्कूल के परिवेश को अच्छे से अच्छा बनाने या शिक्षक–छात्र सहयोग और वार्तालाप पर ध्यान देना प्रभावकारी हो सकता है। इसलिए शिक्षक और छात्र–छात्राओं के बीच बेहतर संबंधों और स्कूल में एक सकारात्मक परिवेश के सृजन का विशेष रूप से प्रयास किया जाना चाहिए।

इनके अतिरिक्त स्कूल में हिंसा की रोकथाम के और भी बेहतर कार्य और प्रयास हो सकते हैं, जिन पर शोध व चिंतन की जरूरत है।

5. द्वंद्व या संघर्ष

द्वंद्व या संघर्ष की व्याख्या अलग–अलग दृष्टिकोणों से की जाती है, और इसकी व्याख्या संदर्भ, प्रक्रिया, प्रयास और अध्ययन के क्षेत्रों में अलग–अलग हो सकती है। द्वंद्व या संघर्ष लोगों या समूहों के बीच उनके परस्पर विरोधी हितों और मूल्यों के कारण उत्पन्न असामंजस्य का एक विषय है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि जब दो या दो से अधिक लोग एक दूसरे से बातचीत कर रहे हों, और उन्हें विचारों में अंतर, अथवा अपने संसाधनों, अपेक्षाओं या मूल्यों को लेकर संकट महसूस हो और जब वे अपने अनुमान के अनुरूप प्रतिक्रिया करें तब संघर्ष की आदर्श स्थितियां जन्म लेती हैं। संघर्ष की गहनता, अवधि अथवा तीव्रता उसके समाधान की नीतियों के अनुरूप कम होती है या फिर बढ़ती है।

स्कूल में संघर्ष या द्वंद्व की व्याख्या स्कूली समुदाय के भीतर मूल्यों, हितों, सिद्धान्तों और विचारों के प्रति समूहों और लोगों के बीच असहमति के रूप में की जाती है। संघर्ष छात्र और छात्र तथा छात्र और शिक्षक के बीच संबंधों में होता है। छात्र और छात्र के बीच संघर्ष गलतफहमियों, मारपीट, टोलियों के बीच झगड़े, अत्याचार, भेदभाव, क्षेत्रों और परिसंपदाओं के उपयोग, यौन उत्पीड़न, स्कूल की परिसंपत्तियों को क्षति, विविधतापूर्ण चुनावों, यात्रा और उत्सवों को लेकर हो सकता है। वहीं, माता–पिता, शिक्षकों और स्कूल प्रशासकों के बीच संघर्ष कार्य सामग्री की क्षति, स्कूल के कैंटीन में पनपने वाली समस्याओं या फिर वैसी ही अन्य समस्याओं, शिक्षकों के अभाव, छात्रों को शिक्षकों की शैक्षिक सहायता की कमी, मूल्यांकन, स्वीकृति और अस्वीकृति के मानदंड और प्रबंधन की प्रशासनिक आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर पाने के चलते छात्रों के बीच और शिक्षकों के बीच होने वाली आक्रमण की घटनाओं को लेकर हो सकता है।

प्रकार

स्कूल में संघर्ष के कुछ मुख्य प्रकारों का विवरण यहां प्रस्तुत है–

भावोत्तेजक संघर्ष : यह संघर्ष संवेगात्मक होता है। दूसरे शब्दों में, दो व्यक्तियों या दो समूहों के बीच संवेगात्मक स्तर पर असामंजस्य होता है। छात्र एक दूसरे की भावनाओं को ठेस पहुंचाते हैं और समस्या को दूर करने के लिए शिक्षक को हस्तक्षेप

टिप्पणी

करना पड़ता है। जब भावोत्तेजक संघर्ष पनपता है, तब दोनों पक्षों में अकसर मिलजुल कर रहने की भावना नहीं रह जाती।

संज्ञानात्मक संघर्ष : संज्ञानात्मक संघर्ष मतभेद के कारण होता है। यह संघर्ष तब जन्म लेता है, जब किसी विषय या विचार पर छात्रों में वाद–विवाद होता है। यह संघर्ष अकसर भावोत्तेजक संघर्ष का रूप ले लेता है।

आचरणिक संघर्ष : संघर्ष किसी व्यक्ति या समूह की उन गतिविधियों के कारण भी उत्पन्न हो सकता है, जो दूसरों की भावना को ठेस पहुंचाती हों। यह तब होता है जब किसी व्यक्ति का आचरण किसी दूसरे व्यक्ति के विपरीत हो।

लक्ष्य संघर्ष : किसी छात्र को लक्ष्य संघर्ष की अनुभूति तब होती है जब उसके कुछ लक्ष्य कुछ अन्य लक्ष्यों के पूरा होने में रुकावट डालते हैं। यह कभी भी हो सकता है, जब छात्र दो या दो से अधिक लक्ष्यों को एक साथ पूरा करना चाहता हो।

संघर्ष के ये सभी अलग–अलग रूप एक दूसरे से जुड़े होते हैं। आचरणिक संघर्ष के क्रम में शिक्षक या किसी छात्र को क्रोध आ सकता है, जो भावोत्तेजक संघर्ष है। कक्षा में लक्ष्य संघर्ष तब हो सकता है जब शिक्षक बात करना बंद करना चाहते हों, पर वह छात्र इसे जारी रखना चाहता हो। संज्ञानात्मक संघर्ष तब हो सकता है, जब शिक्षक समझें कि उस के लिए छात्र से बात करना गलत है, पर छात्र को बात करना अनुचित न लगे।

कारण

स्कूल में संघर्ष के कई कारण होते हैं, जिनमें से कुछ मुख्य कारणों का विवरण यहां प्रस्तुत है–

परस्पर निर्भरता : संघर्ष का एक कारण कार्य को लेकर एक दूसरे पर निर्भरता है। कोई कर्मचारी जब अपने कार्य के लिए किसी दूसरे कर्मचारी की सहायता लेता है और उस स्थिति में यदि कोई गलती हो जाती है, तो उस गलती का दोष वह उस दूसरे कर्मचारी को दे सकता है। ऐसे में दोनों के बीच संघर्ष पैदा हो सकता है।

सीमित संसाधन : स्थान, कक्षाओं, चॉक, आदि जैसे संसाधनों की कमी किसी स्कूल में संघर्ष के कारणों में से एक है। इन संसाधनों की कमी जितनी अधिक होगी संघर्ष भी उतना ही अधिक होगा। यह संघर्ष मुख्यतः शिक्षकों और प्रधानाध्यापक के बीच होता है।

त्रुटिपूर्ण संवाद तंत्र : स्कूलों के प्रधानाध्यापक अकसर शिक्षकों और छात्रों को किसी नव परिवर्तन की समुचित जानकारी दिये बिना उसे लागू कर देते हैं। इस प्रकार प्रधानाध्यापकों और शिक्षकों में आपसी तालमेल की कमी होने पर संघर्ष की स्थिति पनपती है।

अधिकार : कई शिक्षकों को यह अच्छा नहीं लगता कि प्रधानाध्यापक उनसे कहें कि उन्हें क्या करना है, जबकि यह प्रधानाध्यापकों का अधिकार होता है। इस अधिकार के प्रति प्रधानाध्यापकों का सख्त होना संघर्ष को जन्म दे सकता है। कभी–कभी देखने में आता है कि अपने अधिकार या स्थिति को लेकर शिक्षक संघर्ष करते हैं। यदि दो या दो से अधिक शिक्षक अथवा विभाग एक ही कार्य या गतिविधि के प्रति अपने अधिकार का दावा करें तो संघर्ष हो सकता है।

असमान व्यवहार : व्यक्तिगत नीतियों और व्यवहारों अथवा पारितोषिक और दंड प्रणालियों के संचालन में किसी शिक्षक के साथ अनुचित व्यवहार संघर्ष को जन्म दे सकता है।

टिप्पणी

निवारण के उपाय

छात्रों को संघर्ष समाधान के कौशलों की शिक्षा देने के लिए स्कूलों में कई पद्धतियां अपनाई जाती हैं। इनमें सर्वाधिक प्रभावकारी पद्धति वह होती है, जब प्रशासकों, शिक्षकों, कर्मचारियों, छात्रों, और माता–पिता को संघर्ष के कौशलों को समझने और उनका व्यवहार करने का अवसर और मध्यस्थता के सहारे विवादों के निपटान का विकल्प दिया जाता है। यहां मुख्य तीन पद्धतियों का विवरण प्रस्तुत है–

मध्यस्थता पद्धति : इस पद्धति के कार्यक्रमों में छात्रों और शिक्षकों व शिक्षकेतर कर्मचारियों को अपने विवादों का समाधान अहिंसा के सहारे करने का अवसर दिया जाता है। इसमें एक मध्यस्थ एक सुरक्षित परिवेश का सृजन करता है, जिसमें लड़ रहे लोग एक दूसरे को ध्यान से और शांतिपूर्वक सुन सकें, निहित समस्याओं को समझ सकें, विभिन्न विकल्पों पर विचार कर सकें और विवाद के निपटान के सर्वाधिक उपयुक्त तरीके पर एकमत हो सकें। मध्यस्थता पद्धति के कार्यक्रमों में सहयोगशील वातावरण किसी सर्वसम्मत निर्णय को अपनाने में पक्षकारों की सहायता करता है। किंतु, मध्यस्थ कोई निर्णय थोप नहीं सकता।

छात्र मध्यस्थता कार्यक्रम : स्कूलों में कुछ छात्रों को मध्यस्थता का प्रशिक्षण दिया जाता है और उन्हें मध्यस्थ कहा जाता है। लड़ते छात्रों के झगड़े को मध्यस्थता की प्रक्रिया से दूर करने के लिए छात्र मध्यस्थता कार्यक्रमों में इन्हीं प्रशिक्षित छात्रों की सहायता ली जाती है। इन कार्यक्रमों में छात्रों के कई विवादों का सफलतापूर्वक समाधान कर लिया जाता है।

प्रशासक–शिक्षक–कर्मचारी–माता–पिता मध्यस्थता कार्यक्रम : इन कार्यक्रमों में बड़े छात्रों या कर्मचारियों, आदि की समस्याओं के समाधान में सहायता के लिए प्रशिक्षित मध्यस्थों की सहायता ली जाती है। इन कार्यक्रमों में कई गंभीर और उच्चतर विवादों व समस्याओं का समाधान किया जाता है।

शिक्षक–छात्र मध्यस्थता कार्यक्रम : इनमें सामान्यतः व्यक्तित्व संघर्ष, सम्मान की समस्याओं, आचरण की समस्याओं, और गुरु–शिष्य संबंधों को धूमिल करने वाले संघर्षों का समाधान किया जाता है।

कक्षागत पद्धति : इस पद्धति में सभी छात्रों को संघर्ष समाधान की अवधारणाओं को समझने और उन्हें व्यवहार में लाने का अवसर मिलता है। इस पद्धति का उपयोग निजी समस्या के समाधान के कौशलों का विकास करने के साथ–साथ शिक्षकों के कक्षा प्रबंधन के कौशलों और स्कूल के परिवेश में सुधार लाने के ध्येय से किया जाता है।

संघर्ष समाधान की शिक्षा से छात्रों और स्कूलों को संघर्षों के प्रभावकारी ढंग से समाधान में सहायता मिलती है। कई कार्यक्रमों और पाठ्यक्रमों में दंड की बजाय संबंध–सृजन पर आधारित सकारात्मक अनुशासन और कक्षा प्रबंधन को स्थान दिया जाता है।

2.3.2 शैक्षिक, व्यक्तिगत, सामाजिक और सांस्कृतिक विषयों से संबंधित व्यवहार में करुणा, प्रेम, देखभाल का समावेशन

टिप्पणी

शैक्षिक, व्यक्तिगत, सामाजिक और सांस्कृतिक विषयों से संबंधित करुणा, प्रेम, देखभाल, आदि तथ्यों को क्रमशः इस प्रकार समझा जा सकता है–

- **करुणा**

करुणा का अर्थ किसी व्यक्ति का अन्य लोगों और समग्र रूप में मानवता से तादात्म्य जोड़ने के एक मार्ग का दया, परानुभूति और उनके सुख व कष्ट के प्रति सरोकार के माध्यम से सृजन करना है। करुणा और दया छात्रों को केवल एक सहानुभूतिशील तरीके से व्यवहार करना सिखाना नहीं है। इसके आयाम को समझने हेतु मूल्यांकनात्मक चिंतन की आवश्यकता होती है।

करुणा की व्याख्या उस भावना के रूप में की जाती है, जो तब उत्पन्न होती है जब किसी को किसी दूसरे के कष्ट की अनुभूति होती है और उसमें उस कष्ट को दूर करने की भावना जाग उठती है।

करुणा परानुभूति – यह अन्य लोगों के संवेगों को समझने और महसूस करने की क्षमता से उत्पन्न होती है, किंतु यह यहीं तक नहीं रुकती बल्कि सहायता करने की आकांक्षा भी आ जाती है। इसमें कोई संदेह नहीं कि हमें इसकी अनुभूति इसका पालन किये बिना भी हो सकती है, और यह भी जरूरी नहीं है कि सहायता के सभी कार्य करुणा से प्रेरित हों। करुणा और दया साथ चलती हैं। दया में अकसर अन्य लोगों के लाभ का भाव छिपा होता है, हम दूसरों को लाभ पहुंचाना चाहते हैं, भले ही इसमें हमारी अपनी क्षति क्यों न हो।

शोध–अध्ययनों से पता चला है कि करुणा और दया की मानव स्वभाव में गहरे तक पैठ होती हैं – हमारा पहला संवेग या आवेग प्रतिस्पर्धा नहीं बल्कि सहयोग होता है। नन्हे बच्चे भी स्वाभाविक रूप से दूसरों की सहायता करते हैं। किंतु यह अंतर्जात दया भाव किसी प्रतिस्पर्धी समाज में कहीं खो जाया करता है। स्कूलों को छात्र–छात्राओं के करुणा पक्ष को संवारने का पर्याप्त अवसर होता है और वे स्कूल की एक ऐसी संस्कृति का सृजन कर सकते हैं, जिसमें दया का महत्व हो, छात्र–छात्राएं उसका पालन करें।

यह मूल्यांकनात्मक चिंतन सामान्य नहीं बल्कि विशिष्ट होना चाहिए, जिससे कोई व्यक्ति अपनी निजी आवश्यकताओं, मूल्यों, आदि को समझ सके।

बच्चे ज्यों–ज्यों परिपक्व होते जाते हैं, दया और करुणा की उनकी समझ में त्यों–त्यों परिवर्तन आता है। उदाहरणस्वरूप, चीजों को परखने की उनकी क्षमता का विकास होने पर उनकी करुणाशील होने और संवेग पर नियंत्रण करने की क्षमता का विकास होता है।

- **प्रेम**

यह एक अवधारणा है जिसका सर्वाधिक दुरुपयोग हुआ है। पुरुषों और महिलाओं के संवेगात्मक संबंध को प्रकट करने के लिए प्रेम को गलत ढंग से देखा जाता है। बल्कि प्रेम इन बंधनों से ऊपर होता है। यह सहभागिता, स्नेहशीलता और धैर्य में दिखाई देता है। प्रेम शांति और एकता का प्रतीक है। प्रेम का वशीभूत कोई व्यक्ति अपना सब कुछ

न्योछावर करने को तैयार हो जाता है। जहां प्रेम होता है वहां आपसी मतभेद और सांप्रदायिक कलह की कोई गुंजाइश नहीं होती। प्रेम दुख को दूर करता है और अपनेपन की भावना को जन्म देता है।

टिप्पणी

- **ध्यान**

ध्यान की व्याख्या वर्तमान क्षण के प्रति संवर्धित, सोद्देश्य, ग्रहणशील अवधान के रूप में की जाती है। दबाव या तनाव और दुश्चिंता को कम करने के लिए चिकित्सा के क्षेत्र में ध्यान के प्रशिक्षण का उपयोग किया जाता रहा है और इसकी लोकप्रियता व चलन उत्तरोत्तर बढ़ता गया है। हाल के दिनों में छात्रों के शैक्षिक अनुभवों और संज्ञानात्मक तथा सामाजिक–संवेगात्मक विकास में सुधार लाने के इच्छुक शिक्षकों के लिए एक सहायक उपकरण के रूप में ध्यान आधारित नीतियों को बढ़ावा दिया गया है, जो बेहतर शैक्षिक परिणामों का मार्ग खोल सकती हैं।

ध्यान के अभ्यास शिक्षा कार्यों में बेहतर परिणाम के मद्देनजर छात्रों के लिए अनुकूलनात्मक समाधान के एक उपयोगी उपकरण का कार्य कर सकते हैं। विशेष रूप से वयस्क हो रहे प्रथम वर्ष के छात्रों को विकासात्मक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, जैसे नए संबंध कायम करना और उन्हें बनाये रखना सीखना, विभिन्न व्यक्तिगत, सामाजिक और शैक्षिक आवश्यकताओं में से अधिक महत्वपूर्ण आवश्यकताओं को छांटना और किसी नए परिवेश में वृत्तिक सफलता के लिए एक व्यक्तिगत योजना तैयार करना। नानाविध अपेक्षाएं स्कूल के छात्रों के समक्ष मनोवैज्ञानिक तनाव के कारक प्रस्तुत करती हैं, जिनके त्रुटिपूर्ण समाधान के अकसर बुरे परिणाम होते हैं। अनुकूल समाधान और शिक्षा में वांछित सफलता हेतु तथा यह देखने के लिए कि ध्यान स्वस्थ किशोरों में आत्मसम्मान की भावना में वृद्धि करता है, अनेकानेक शोधकर्ताओं ने स्कूल के छात्र–छात्राओं के लिए तनाव कम करने के एक उपकरण के रूप में ध्यान के समेकन और समावेशन पर बल दिया है।

स्कूल–कॉलेजों में ध्यान–आधारित प्रक्रियाएं अपनाई जा रही हैं, और कुछ शोधों–अध्ययनों के अनुसार शिक्षक बताते हैं कि ध्यान के कुछ सप्ताहों के अभ्यास के बाद छात्र अपेक्षाकृत अधिक उदार हुए हैं और उनमें एकाग्रता का विकास हुआ है।

ध्यान का अर्थ एक विशेष तरीके से वर्तमान क्षण में उद्देश्य पर ग्रहणशीलता के साथ ध्यान देना है।

लगभग सभी कार्य सचेतन अभिज्ञता से पूरे किये जा सकते हैं।

सचेतन अभिज्ञता या जागरूकता की तीन विशेषताएं हैं : प्रयोजन, उपस्थिति और प्रतिग्रहण।

प्रयोजन : ध्यान व्यक्ति की अभिज्ञता को भटकने के लिए छोड़ देने की बजाय उसे साभिप्राय और उद्देश्यपूर्ण ढंग से स्वयं में अंतर्भूत कर लेता है।

उपस्थिति : ध्यान वर्तमान क्षण के साथ और उसके प्रति सचेत होता है।

प्रतिग्रहण : ध्यान उत्पन्न होने वाले किसी भी विषय के प्रति ग्रहणशील होता है। इसका अर्थ यह है कि बोधों, विचारों और संवेगों का अच्छे या बुरे, प्रीतिकर या अप्रीतिकर के रूप में भेद नहीं किया जाता है, उन्हें केवल 'घटना' के रूप में ग्रहण किया जाता है और जब तक वे बने रहते हैं, तब तक उन पर ध्यान रखा जाता है।

2.3.3 शांति के मूल्यों को स्पष्ट करने हेतु पाठ्यपुस्तक सामग्री का प्रयोग

टिप्पणी

छात्र–छात्राओं के लिए शांति के मूल्यों का ज्ञान अत्यंत आवश्यक है। इन मूल्यों को शामिल करने के लिए पाठ्यपुस्तकों की आवश्यकता होती है।

इक्कीसवीं शताब्दी और आने वाले समय में शांति के मूल्य एक रणनीतिक विषय हैं। देशों को अनेकानेक आंतरिक और बाह्य समस्याओं का सामना करना होगा, जो संघर्ष को जन्म दे सकती हैं। कुछ संघर्ष असहिष्णुता, हिंसा, अत्याचार, भेदभाव, परोक्ष शत्रुता, आदि को जन्म देते हैं।

शांति के मूल्य एक महत्वपूर्ण आवश्यकता हैं, जिनका संचार शिक्षा के माध्यम से छात्र–छात्राओं में निरंतर कराया जाना चाहिए। जिन देशों में संघर्ष की संभावना अधिक हो, उनमें शिक्षा और संघर्ष के बीच साहित्य और पाठ्यपुस्तकों का संबंध उल्लेखनीय ढंग से गहरा हुआ है। शिक्षा शांति के लक्ष्य को हासिल करने का सर्वाधिक महत्वपूर्ण माध्यम है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा वह शिक्षा है जो शांति के मूल्यों का स्वयं में समावेश करती है, और इस दृष्टि से पाठ्यपुस्तकों की महत्ता बढ़ जाती है। शिक्षा न केवल छात्र–छात्राओं के लिए बल्कि उनके सामाजिक और संवेगात्मक सुधार के लिए भी एक महत्वपूर्ण उपकरण का कार्य करती है।

शिक्षा प्रणाली में शांति के मूल्यों के समावेश के लिए पाठ्यपुस्तकों की सामग्री की आवश्यकता होती है। यूरोपीय देशों में नागरिक शिक्षा में सामाजिक आंदोलनों, मानवाधिकारों और मूल्यांकनात्मक चिंतन पर विशेष बल दिया जाता है। शोध से पता चलता है कि पश्चिमी यूरोप और उत्तरी अमेरिका के देशों में नागरिकता की पाठ्यपुस्तकों में मानवाधिकारों और विविधता की सामग्री को पर्याप्त स्थान दिया गया है।

पाठ्यपुस्तकों की व्याख्या शिक्षा के प्रयोजनों से लिखित पुस्तकों के रूप में की जा सकती है। पाठ्यक्रम और छात्र–छात्राओं की शिक्षा में पाठ्यपुस्तकों की एक रणनीतिक अवस्थिति होती है। पाठ्यक्रम के विकास के लिए पाठ्यपुस्तकें एक महत्वपूर्ण 'संबल' का कार्य करती हैं। शोध से यह भी पता चलता है कि पाठ्यक्रम में राजनीतिक और सैद्धांतिक संरचनाओं के बीच एक संबंध होता है, जिसका पाठ्यपुस्तकों के उत्पादन और उपयोग पर उल्लेखनीय प्रभाव पड़ता है।

शिक्षा में, पाठ्यपुस्तकें शिक्षाशास्त्रीय गतिविधियों की धुरी का कार्य करती हैं। पाठ्यपुस्तकें न केवल विषय का ज्ञान प्रदान करती हैं, बल्कि वे वैश्विक और किसी समाज विशेष के मूल्यों का संचार भी करती हैं। पाठ्यपुस्तकों में यदि शांति के मूल्यों का समावेश हो तो उनका महत्व और बढ़ जाता है और उनका उपयोग 'शांति के साधन' के रूप में किया जा सकता है। पाठ्यपुस्तकों में शांति के मूल्यों को प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों रूपों में बढ़ावा देने की क्षमता होती है। अध्ययन के प्रत्येक स्तर पर और क्षेत्र में, पाठ्यपुस्तकें और शिक्षा सामग्री शांति सृजन के मूल्यों, जैसे मानवाधिकार, अहिंसा के सिद्धान्त और अभ्यास, महिला–पुरुष समानता और भेदभाव की उपेक्षा, मेलमिलाप, पारस्परिक तालमेल और सम्मान को बढ़ावा देने का एक महत्वपूर्ण माध्यम हो सकती हैं।

इस प्रकार, पाठ्यपुस्तकों के महत्व को देखते हुए यह आवश्यक है कि इनमें शांति के मूल्यों का समावेश हो और जिन पाठ्यपुस्तकों में इन मूल्यों का समावेश हो उन्हें कक्षा के पाठ्यक्रम में स्थान दिया जाए।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

3. बेचैनी और नाखून कुतरना परीक्षा–तनाव के किस लक्षण के अंतर्गत आता है?
   (क) शारीरिक लक्षण
   (ख) आचरणिक लक्षण
   (ग) संवेगात्मक और मानसिक लक्षण
   (घ) इनमें से कोई नहीं
4. परीक्षा भय का प्रमुख कारण क्या है?
   (क) असफलता का भय
   (ख) अतीत के परिणाम
   (ग) तैयारी का अभाव
   (घ) उपर्युक्त सभी

2.4 शांति शिक्षक बनना

विद्यार्थियों के लिए अध्यापक आदर्श होते हैं। अगर अध्यापक का शांति के प्रति रुझान नहीं है, तो अनजाने में हिंसा का दुष्प्रचार करने में भूमिका निभाते हैं। कहा जाता है, "जो मैं जानता हूं वही पढ़ाता हूं और जो मैं हूं वही सिखाता हूं।" अध्यापक का पहला उत्तरदायित्व विद्यार्थियों को एक अच्छा व्यक्ति बनने में सहायता करना है और अपनी क्षमताओं का संपूर्ण प्रयोग करने के लिए उत्साहित करना है। ऐसा सिर्फ उसके हित में ही नहीं बल्कि समाज की भलाई के लिए भी है। इस तरह अध्यापक की तुलना माली से की जा सकती है जो ज्ञान और अच्छे संस्कारों का बीज बोता है, उसे ममत्व और करुणा के पानी से सीचंता है और अज्ञानता की खरपतवार को हटाता है। अच्छे शिक्षक शांति मूल्यों के आदर्श होते हैं, जैसे इनमें सुनने की कला, गलती को पहचानने और उसे सही करने की विनम्रता होती है, ये अपने द्वारा किए गए काम की जिम्मेदारी लेते हैं, चिंताओं को साझा करते हैं और मतभेदों से परे एक–दूसरे की समस्याओं को हल करते हैं। यदि ये शांति का उपदेश न दें तो भी शांति के लिए शिक्षा देते हुए प्रतीत होते हैं, अपने हाव–भाव से।

जो अध्यापक कक्षा में बच्चों पर मार–पिटाई के जरिए 'अनुशासन' थोपता है वह समस्या को हल करने की रणनीति के रूप में हिंसा को ही अनुकरणीय बना देता है। कक्षा में सकारात्मक वातावरण कायम करने में अध्यापक की भूमिका सर्वोच्च होती है। एक अध्यापक जो अपनी अभिवृत्तियों, सोचने के स्वाभाविक तरीकों और शिक्षण के उपागम को आवश्यक रूप से आमंत्रित कर सकता है– वह क्या पढ़ाता है और जो पढ़ाया है उसमें हस्तांतरित मूल्य क्या है और इन्हें कैसे पढ़ाया गया है– वह शांति के लिए शिक्षा की पूंजी है।

बच्चे सलाह के लिए अपने कान बंद कर लेते हैं और उदाहरण के लिए अपनी आंखें खोल लेते हैं। यह भारतीय संदर्भ में एकदम उपयुक्त है जहां अध्यापकों को ज्ञान

टिप्पणी

और बुद्धिमत्ता का स्रोत मानाजाता है। बच्चे तभी शांति संस्कारों को सीख पाएंगे जब उनके अध्यापक और बुजुर्ग व्यवहारतः आदर्श के रूप में इनको पेश करें। अगर वयस्कों की कथनी और करनी बेमेल निकली तो विद्यार्थी उसी का अनुकरण करेंगे जो सचमुच किया गया है। अध्यापकों को बच्चों के ऊपर अपने व्यवहार के प्रभाव के प्रति सचेत रहने की जरूरत है। उदाहरण के लिए विद्यार्थियों को 'दूसरों की देखभाल' के लिए प्रेरित करने के बजाय इस मूल्य को व्यवहार में लाना और विद्यार्थियों को इसकी समझ खुद बनाने देना ज्यादा प्रभावी है।

2.4.1 संवाद के लिए श्रवण कौशल का विकास

श्रवण कौशल मानव जीवन के सभी पक्षों का एक अति महत्वपूर्ण कौशल है। सुनना एक क्रियाशील अथवा सक्रिय प्रक्रिया है, जिससे हम जो कुछ सुनते हैं उसका अर्थ निकालते हैं, उसका मूल्यांकन करते हैं और उसका उत्तर देते हैं। सफल लोग सामान्यतः अच्छे श्रोता होते हैं। वे अन्य लोगों को अपना पूरा ध्यान दे सकते हैं ताकि वे कठिन और तनावपूर्ण स्थितियों में अपनी आवश्यकताओं को समझें और सही प्रश्न पूछें। वे अन्य लोगों के साथ ठोस संबंध कायम करने के लिए अपने श्रवण कौशल का उपयोग भी कर सकते हैं।

श्रवण प्रक्रिया के प्रकार

श्रवण प्रक्रिया के तीन प्रकार हैं – विषय श्रवण प्रक्रिया, मूल्यांकनात्मक श्रवण प्रक्रिया और सक्रिय श्रवण प्रक्रिया। यहां इन प्रक्रियाओं का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है।

विषय श्रवण प्रक्रिया

श्रवण की इस प्रक्रिया में वक्ता से प्राप्त जानकारी को समझना और बनाए रखना आते हैं। इसके लिए संदेश के मुख्य बिंदुओं को समझना और इंगितों को जानना आवश्यक होता है। इसके अतिरिक्त, विभिन्न वक्ताओं के कथन की ध्वनियों और स्वराघात (लहजा) को समझना जरूरी होता है। वहीं, शब्द प्रयोग, स्वर–प्रस्तुति, व्याकरण, सूचनात्मक संभाषण और सामान्य संभाषण जैसे कुछ अन्य कारकों को ध्यान में रखना भी आवश्यक होता है। विषय श्रवण प्रक्रिया का प्रभावकारी ढंग से उपयोग करने के लिए संदेश में निहित मुख्य विचार अथवा मुख्य बिंदुओं को समझना आवश्यक होता है। तदनंतर, प्रश्न पूछना भी जरूरी होता है ताकि यह समझा जा सके कि संदेश स्पष्ट हुआ या नहीं। इससे संदेश को समझने के स्तर में वृद्धि होगी।

मूल्यांकनात्मक श्रवण प्रक्रिया

मूल्यांकनात्मक श्रवण प्रक्रिया को विवेचनात्मक, आलोचनात्मक अथवा व्याख्यात्मक श्रवण प्रक्रिया भी कहा जाता है। इस प्रक्रिया का मुख्य लक्ष्य वक्ता के तर्कों का विश्लेषण करते हुए संदेश का तर्कसम्मत विवेचन या मूल्यांकन करना होता है। इसके लिए कुछ विश्लेषण, आलोचना और मूल्यांकनात्मक चिंतन की आवश्यकता होती है। यह प्रक्रिया साक्ष्य की क्षमता की समीक्षा और वक्ता के प्रयोजन का निर्धारण करने के लिए आवश्यक होती है। किंतु, मूल्यांकनात्मक श्रवण प्रक्रिया कोई सरल कार्य नहीं है क्योंकि यह जानकारी को आत्मसात और उसका मूल्यांकन दोनों एक साथ करने के लिए आवश्यक होती है।

मूल्यांकनात्मक श्रवण प्रक्रिया का उपयोग करते समय, मूल्यांकन करने के पूर्व, सबसे पहले वक्ता को समझना होता है। साक्ष्य की विश्वसनीयता, वैधता और क्षमता के प्रति प्रश्न पूछना आवश्यक होता है।

टिप्पणी

सक्रिय श्रवण प्रक्रिया

इस प्रक्रिया में श्रोता प्रश्न पूछते हुए या वक्ता के कथन का संक्षिप्त विश्लेषण करते हुए वाचिक अथवा सांकेतिक विचार व्यक्त करता है। इस स्थिति में, वक्ता के कथन के आगे सोचने के लिए श्रोता अपने अन्य ज्ञानेंद्रियों का उपयोग करता है। केवल सुनने भर से पर्याप्त जानकारी नहीं मिल सकती। यह वक्ता से अनावश्यक रूप से सहमत हुए बिना उसके विचार या दृष्टिकोण को समझना है। सक्रिय श्रवण प्रक्रिया श्रवण प्रक्रिया का सर्वाधिक उत्कृष्ट प्रकार है क्योंकि इसमें छात्र को संवेगों और भावनाओं को स्वीकार और अंगीकार करना होता है।

सक्रिय श्रवण प्रक्रिया का उपयोग एक दूसरे को समझना सुनिश्चित करने के लिए किया जाता है। वस्तुतः, किसी वार्तालाप में संभाषी या शिक्षक विरले ही समर्पित होते हैं। श्रोता अकसर अन्यमनस्कता, शोर और अन्य अवरोधों के कारण स्वयं को एकाग्र नहीं रख पाते।

श्रवण की यह प्रक्रिया किसी संघर्ष या द्वंद्व के दौरान अत्यंत उपयोगी होती है। जब कोई संघर्ष होता है, तो लोग अपने–अपने तर्कों के साथ–साथ इस पर ध्यान रखते हैं कि वक्ता को सुनने की बजाय वे किस प्रकार प्रतिक्रिया करेंगे। इसका अर्थ यह है कि वे वक्ता के संदेश को प्रभावकारी ढंग से समझने में असमर्थ हैं। सक्रिय श्रवण प्रक्रिया का अर्थ यह नहीं है कि श्रोता या श्रोताओं को वक्ता से सहमत होना है। संक्षिप्त विश्लेषण या व्याख्या यह देखने का एक बेहतर तरीका है कि श्रोता ने वक्ता के शब्दों को ठीक से समझा है या नहीं। ऐसा करने से गलतफहमी का पता चल सकता है और उसे तत्काल दूर किया जा सकता है।

किसी वक्ता विशेष के साथ कोई श्रोता उस वक्ता से संवाद की एक भिन्न गुणवत्ता से उत्पन्न सक्रिय श्रवण की विभिन्न स्थितियों का उपयोग कर सकता है। इसमें पुनरावृत्ति, संक्षिप्त विवेचन और चिंतन होते हैं।

सक्रिय श्रवण में वक्ता के आचरण और भावभंगिमा को भी शामिल किया जा सकता है। किसी व्यक्ति की भावभंगिमा को समझने से श्रोता उस वक्ता के संदेश को अधिक से अधिक गहराई से समझ सकता है।

श्रवण कौशल और मूल्यांकनात्मक चिंतन

मूल्यांकनात्मक चिंतन कौशल प्रभावकारी ढंग से सुनने की क्षमता के लिए आवश्यक और उससे जुड़े होते हैं। वहीं ये कौशल कथन की प्रक्रिया से भी जुड़े होते हैं।

मूल्यांकनात्मक चिंतन चिंतन की वह प्रक्रिया है, जिसकी सहायता से लोग संचित सूचना का गुणात्मक और मात्रात्मक मूल्यांकन करते हैं। मूल्यांकनात्मक चिंतन के कौशलों में अवलोकन, व्याख्या, विश्लेषण और अधिसंज्ञान (Metacognition) आते हैं। मूल्यांकनात्मक चिंतन की अवधारणाएं और सिद्धान्त श्रवण प्रक्रिया समेत किसी भी संदर्भ अथवा स्थिति में लागू किए जा सकते हैं। सुनने की प्रभावकारी प्रक्रिया से लोगों को किसी ऐसी विधि से सूचना संग्रह में सहायता मिलती है, जिसमें मूल्यांकनात्मक चिंतन और सफल संवाद को बढ़ावा मिलता है।

मूल्यांकनात्मक चिंतन की एक परिभाषा ''अवलोकन, अनुभव, मंथन, तर्कणा अथवा संवाद से संचित सूचना की गहनता और कुशलता से संकल्पना, क्रियान्वयन, विश्लेषण, संश्लेषण, और/या मूल्यांकन करने की बौद्धिक स्तर पर अनुशासित प्रक्रिया'' के रूप में की गई है।

मूल्यांकनात्मक चिंतन के कई व्यावहारिक उपयोग होते हैं, जैसे किसी जटिल व्यक्तिगत समस्या का एक व्यवहार्य समाधान, किसी समूह में इस बात पर विचार करना कि कौन सी क्रियाविधि अपनाई जाए, अथवा किसी अवधारणा या परिकल्पना के विज्ञानसम्मत निर्धारण में प्रयुक्त कल्पनाओं और विधियों का विश्लेषण। मूल्यांकनात्मक चिंतन का उपयोग लोग गणित के जटिल सवालों का हल निकालने तथा बाजार में मोल–तोल करने में करते हैं।

यह एक ऐसी प्रक्रिया है, जिससे किसी की केवल कक्षा में पढ़ाई की नहीं बल्कि उसके दैनिक जीवन के सभी पक्षों की जानकारी मिलती है।

मूल्यांकनात्मक चिंतन का श्रवण से संबंध

लोग जब कभी यह सोचते हैं कि किसका विश्वास करना चाहिए या क्या करना चाहिए, और ऐसा वे एक उचित, चिंतनशील प्रक्रिया में करते हैं, तब वे मूल्यांकनात्मक चिंतन के दौर से गुजर रहे होते हैं। सरल शब्दों में मूल्यांकनात्मक चिंतन 'जीवन की समस्याओं पर विचार करने की एक प्रक्रिया' है। इस प्रकार, बोलना, लिखना, पढ़ना और सुनना सब मूल्यांकनात्मक तौर पर हो सकते हैं, क्योंकि मूल्यांकनात्मक चिंतन कौशल इन सभी गतिविधियों में लागू किए जा सकते हैं।

श्रवण प्रक्रिया के चरण

किसी सक्रिय श्रोता को उससे कही जा रही बातों की ध्वनियों को सुनना और समझना चाहिए। उसे ध्वनियों के संदेश को समझना, मूल्यांकनात्मक रूप से उस संदेश का मूल्यांकन करना, संदेश को स्मरण रखना और जो सूचना उसने ग्रहण की हो उसका मौखिक अथवा सांकेतिक रूप से उत्तर देना चाहिए।

यहां श्रवण प्रक्रिया के कुछ मुख्य चरणों का विवेचन समीचीन है।

सुनने की प्रक्रिया के पांच चरण होते हैं : आदान चरण (Receiving Stage), अनुभूति चरण (Understanging Stage), मूल्यांकन चरण (Evaluation Stage), अनुक्रिया चरण (Responding Stage) और स्मरण चरण (Remembering Stage)।

आदान चरण (Receiving Stage): आदान चरण श्रवण प्रक्रिया का पहला चरण है, जिसमें सुनना और ध्यान देना आते हैं। श्रवण प्रक्रिया ध्वनि तरंगों को आत्मसात करने की शारीरिक प्रक्रिया है, क्योंकि वे कान के पर्दे को झंकृत करती हैं।

सुनते हुए सूचना और जानकारी का प्रभावकारी ढंग से संग्रह करने के लिए श्रोता जो कुछ सुन रहा होता हो, उसे शारीरिक रूप से सुनना चाहिए। ध्वनि जितनी ही साफ होगी सुनने की प्रक्रिया उतनी ही सरल होगी।

सुनने के साथ–साथ ध्यान देना श्रवण प्रक्रिया के आदान चरण का दूसरा हिस्सा है। ध्यान देने का तात्पर्य यह है कि श्रोता जिन विशिष्ट ध्वनियों को सुनता हो उसे ठीक से समझे और उसकी ठीक से व्याख्या करे। ध्वनियों का कोई अर्थ तब तक नहीं

होता, जब तक कि श्रोता उन्हें संदर्भ में उनका अर्थ न दे। श्रवण प्रक्रिया एक सक्रिय प्रक्रिया है, जो मौखिक और सांकेतिक दोनों संदेशों को अर्थ प्रदान करती है।

अनुभूति चरण (Understanding Stage): अनुभूति चरण श्रवण प्रक्रिया का दूसरा चरण है। इसमें श्रोता सुने हुए शब्दों के संदर्भ और अर्थों क निर्धारण करता है। अनुभूति का तात्पर्य संवाद संप्रेषण में पक्षों के बीच अर्थ साझा करना है। किसी संदेश के बृहत अर्थ को समझने से पहले, वक्ता जो कह रहा होता है उस पर ध्यान देना कठिन होता है। किसी वक्ता के अर्थ की बेहतर समझ की एक युक्ति उससे प्रश्न पूछना है। प्रश्न पूछने से बातों का अर्थ समझने में आसानी होती है।

मूल्यांकन चरण (Evaluation Stage): श्रवण प्रक्रिया के इस चरण में श्रोता प्राप्त जानकारी और सूचना का गुणात्मक और मात्रात्मक मूल्यांकन करता है। इससे उसे सूचना के प्रति अपने मत का निर्धारण और यथा आवश्यक अनुक्रिया करने का अवसर मिलता है। मूल्यांकन के क्रम में वह तय करता है कि वक्ता से प्राप्त जानकारी सुष्ठ है या बेतरतीब, सही या गलत या फिर महत्वपूर्ण अथवा गौण। मूल्यांकनात्मक विश्लेषण का यह चरण किसी श्रोता के लिए इस अर्थ में महत्वपूर्ण होता है कि उसने जो कुछ सुना है उसका प्रभाव उसके अपने विचारों, निर्णयों, क्रियाकलापों, मान्यताओं आदि पर पड़ेगा।

अनुक्रिया चरण (Responding Stage): यह श्रवण प्रक्रिया का वह चरण है, जिसमें अल्पकालिक अथवा दीर्घकालिक स्मृति के अनुरूप श्रोता मौखिक अथवा सांकेतिक अनुक्रिया करता है। स्मरण चरण (Remebering Stage) के बाद कोई श्रोता प्राप्त सूचना के प्रति मौखिक अथवा सांकेतिक अनुक्रिया कर सकता है। सांकेतिक संकेतों में सिर हिलाने, आंख से आंख मिलान, कलम या पेंसिल खटखटाने, बेचैनी दिखाने, सिर खुजलाने या थपथपाने, मुसकराने, आंखें घुमाने, मुंह बनाने आदि जैसी भावभंगिमाएं हो सकती हैं। मौखिक अनुक्रिया में प्रश्न पूछना, अतिरिक्त जानकारी के लिए आग्रह करना आदि हो सकते हैं।

स्मरण चरण (Remembering Stage): इस चरण में श्रोता प्राप्त जानकारियों का वर्गीकरण करता है और उन्हें स्मृति में बनाए रखता है, ताकि भविष्य में उनका उपयोग किया जा सके। आगे बढ़ने के लिए पिछली जानकारी को स्मरण रखना आवश्यक होता है।

श्रवण प्रक्रिया के उक्त पांचों चरणों को प्रभावकारी ढंग से अपनाने से आसपास की अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करने में सहायता मिलती है।

2.4.2 संभाषणमूलक (संवाद के लिए) श्रवण प्रक्रिया

संभाषणमूलक श्रवण प्रक्रिया का तात्पर्य वार्तालाप की उस प्रक्रिया से है, जिसमें दो लोग आपस में अपने विचारों का आदान–प्रदान करते हैं। इसमें प्रत्येक व्यक्ति के अलग–अलग ('मैं/मेरा/मेरी/मेरे') दृष्टिकोणों की बजाय ध्यान मुख्यतः सामूहिक अर्थात् 'हम/हमारा/हमारी/हमारे' दृष्टिकोण और वार्तालाप के मुख्य विषय पर दिया जाता है। यही नहीं, वार्तालाप में श्रवण की इस प्रक्रिया की मुख्य धुरियों में से एक के रूप में सृजनात्मक और खुली अभिवृत्ति जिज्ञासा को जगाए भी रखती है। यह जिज्ञासा ही वार्तालाप और दोनों सहभागियों के बीच एक मनोरंजक प्रक्रिया को बनाए रखती है।

टिप्पणी

संभाषणमूलक श्रवण प्रक्रिया की विशेषताएं

इस पद्धति की मुख्य विशेषताओं का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

'हम / हमारा / हमारी / हमारे' दृष्टिकोण

इसमें दोनों में से कोई व्यक्ति जो कुछ कहता है, उसके प्रति व्यक्तिवादी दृष्टिकोण की बजाय दोनों के सामूहिक दृष्टिकोण को अपनाया जाता है ताकि एक दूसरे के विचार और अभिव्यक्तियों के बीच सामंजस्य के साथ—साथ एक दूसरे के विचारों का पोषण हो तथा दोनों एक दूसरे को समझें।

वार्तालाप की शांत शैली

संभाषणमूलक श्रवण प्रक्रिया में वार्तालाप की शैली शांतिपूर्ण होती है, इसलिए वार्तालाप कष्टकर न होकर आनंददायक होता है।

सह—सृजन की प्रक्रिया

दोनों पक्षों की गतिविधियों पर ध्यान के कारण दोनों के बीच एक संबंध कायम हो जाता है, जिससे वार्तालाप में 'हम' की भावना उत्पन्न होती है।

2.4.3 श्रवण कौशल का संवर्धन व विकास

श्रवण कौशल के संवर्धन व विकास को निम्न बिंदुओं के अंतर्गत समझा जा सकता है—

अवरोध का परिहार

अवरोध आंतरिक अथवा बाह्य हो सकता है। बाह्य अवरोध में श्रव्य, दृश्य अथवा भौतिक शोर हो सकता है। आंतरिक अवरोध मानसिक अथवा सांवेगिक हो सकता है।

बाह्य अवरोध अकसर भौतिक परिवेश में भौतिक शोर के रूप में होते हैं। दृश्य और श्रव्य अवरोध बाह्य अवरोधों के दो रूप हैं।

आंतरिक अवरोधों का अर्थ अकसर मानसिक और सांवेगिक ध्वनि होता है। आंतरिक अवरोध तब भी उत्पन्न हो सकता है जब कोई व्यक्ति संभाषण के बाद योजनाओं पर विचार कर रहा हो, या फिर उन विषयों पर विचार कर रहा हो जिनका संबंध संभाषण से नहीं हो।

किसी वक्ता के संदेश पर अधिक से अधिक ध्यान देने के लिए, अवरोधों का परिहार करने का यथासंभव प्रयास करना चाहिए। गंभीर, प्रभावशील श्रोता बनने के लिए, लोगों को उन अवरोधों का परिहार करना सीखना चाहिए ताकि वे जो सुन रहे हों उस पर ध्यान रख सकें।

सक्रिय श्रवण प्रक्रिया

सक्रिय श्रवण प्रक्रिया संवाद की एक तकनीक है। यदि कोई श्रोता वक्ता के संदेश को सक्रियता से सुनता हो, तो उसे अवरोधों की अनुभूति नहीं हो सकती। वक्ता भी अवरोधों से परहेज के अभ्यास का विकास कर सकता है। सक्रिय श्रवण प्रक्रिया में वक्ता के संदेशों को आत्मसात करने के अतिरिक्त उसके आचरण और भावभंगिमा का अवलोकन और मूल्यांकन करना भी शामिल है। वहीं, इसमें उस संदेश को वापस वक्ता को बताना भी शामिल है। किसी वक्ता की भावभंगिमाओं और हाव—भावों की व्याख्या की क्षमता उस वक्ता के संदेशों को गहराई से समझने में श्रोता की सहायता करती है। यदि वक्ता

की सांकेतिक भावभंगिमा के प्रति श्रोता की कोई अनुक्रिया न हो, और वह केवल सामग्री के प्रति अनुक्रिया करे, तो संदेश की उसकी समझ सीमित हो सकती है। सक्रिय श्रवण प्रक्रिया का उपयोग अकसर व्यक्तिगत संबंधों में सुधार के साथ–साथ गलतफहमियों और विरोधों को दूर, सहयोग को मजबूत और आपसी तालमेल का पोषण करने के लिए किया जाता है।

टिप्पणी

तत्काल आलोचना से परहेज

प्रत्येक विषय के प्रति लोगों के अपने–अपने विचार होते हैं, इसलिए जब वे किसी वक्ता के संभाषण को सुन रहे होते हैं, तब उसके संदेश का अपने–अपने दृष्टिकोणों से अपने मन में ही आलोचना करने लगते हैं। किंतु, आलोचना की यह प्रक्रिया गलतफहमी को जन्म दे सकती है। ग्रहणशील और उदार लोग इससे परहेज करते हैं। वे तत्काल कोई निष्कर्ष नहीं निकालते, बल्कि वक्ता के संपूर्ण संदेश को सुनते और उसकी तर्क–पद्धति को समझने का प्रयास करते हैं।

किसी वार्तालाप में वक्ता अथवा संभाषण की सामग्री के प्रति पूर्व–धारणा बना लेना प्रभावकारी श्रवण क्षमता को सीमित करता है। विशिष्ट संदेशों के प्रति श्रोताओं के सकारात्मक अथवा नकारात्मक विचार हो सकते हैं और श्रोताओं के व्याख्या करने के ढंग पर उन विचारों का प्रभाव पड़ सकता है। ऐसे में यह आवश्यक है कि वक्ता के संदेशों को उसी की शर्त पर समझने के लिए संभाषण के दौरान उन विचारों पर नियंत्रण रखा जाए।

परानुभूति का उपयोग

किसी वक्ता को सुनते समय परानुभूति के उपयोग का अर्थ यह है कि श्रोता को वक्ता के संदेश को उसी के दृष्टिकोण से समझना चाहिए। इसका अर्थ यह नहीं है कि उसे वक्ता से यों ही सहमत हो जाना चाहिए, बल्कि उसे स्वयं को वक्ता की मानसिकता से जोड़कर सुनना चाहिए।

शिक्षक श्रवण कौशल की शिक्षा कैसे दें?

हालांकि श्रवण कौशल की परंपरागत कक्षा पूर्ववत है, किंतु एक बहुपक्षीय संवादमूलक प्रक्रिया के रूप में श्रवण प्रक्रिया के वर्तमान दृष्टिकोण के अनुसार श्रवण कौशल की शिक्षा की एक व्यापक पद्धति आवश्यक है, ताकि छात्रों को यथार्थ जीवन में श्रवण कौशल की चुनौतियों को दूर करने में सहायता मिले। हालांकि श्रवण कौशल एक व्यक्गित गतिविधि है, जो व्यक्ति के मस्तिष्क में निहित होती है, किंतु सुनने के सही ढंग की शिक्षा और शिक्षण की प्रक्रिया को कक्षा में शामिल किया जा सकता है।

नैदानिक (Diagnostic) पद्धति : शिक्षक श्रवण प्रक्रिया के पूर्व आम तौर पर कुछ अभ्यास करते हैं और फिर छात्रों से पाठ्य सामग्री को सुनने और उससे जुड़े विभिन्न कार्य करने के लिए कहते हैं। छात्रों की परिशुद्धता के आधार पर शिक्षक उनके कौशल का मूल्यांकन करते हैं। इस पद्धति में छात्रों के श्रवण कौशल की जांच उन्हें यह बताते हुए की जाती है कि वे कुछ बिंदुओं पर असफल रहे हैं। किंतु इसमें उन्हें इस कौशल की शिक्षा प्रायः नहीं दी जाती, अर्थात् उन्हें यह प्रायः नहीं बताया जाता कि श्रवण प्रक्रिया में उनसे भूल कहां हुई और उस भूल को किस प्रकार ठीक किया जा सकता है। इस त्रुटि को दूर करने के ध्येय से फील्ड ने श्रवण कौशल शिक्षा की नैदानिक

पद्धति का प्रतिपादन किया है, जिसमें शिक्षकों और छात्रों को श्रवण कौशल के अध्ययन–अध्यापन में आने वाली कठिनाइयों और उन कठिनाइयों को दूर करने की नीतियों पर ध्यान देने का अवसर मिलता है। नीचे इस नैदानिक पद्धति की कुछ विशेषताओं का उल्लेख प्रस्तुत है।

कमजोरियों का पता लगाने के लिए गलत उत्तरों का उपयोग और सहायता के लिए गतिविधियों का निर्धारण करना : शिक्षा में हुई किसी त्रुटि के कारण का पता नहीं चल पाने की स्थिति में शिक्षक वार्तालाप का कोई रिकॉर्ड बार–बार चला सकते हैं और अन्य छात्रों से सहयोग के लिए कह सकते हैं। इस पद्धति में संशोधन के लिए छात्रों के उत्तरों की जांच करते समय शिक्षक उनकी त्रुटियों को ध्यान में रखते हुए, समस्याओं की पहचान कर सकते हैं। तदनंतर वह छात्रों से इस बात पर चर्चा कर सकते हैं कि वे अमुक खास उत्तर कैसे दे सके, किन स्थितियों में पाठ के अंशों को समझने में बाधा आई और उनके श्रवण कौशल की प्रक्रियाओं में सुधार के लिए क्या किया जा सकता है। अंत में, वह चर्चा के दौरान सामने आई विशिष्ट समस्याओं पर केंद्रित गतिविधियों की जांच कर सकते हैं। ध्येय छात्रों की श्रवण प्रक्रियाओं के प्रति उनकी चेतना का विकास करना और प्रभावकारी श्रवण आचरण को ठोस बनाना है, जिनका उपयोग वे इन समस्याओं के पुनः उभरने पर कर सकें।

श्रवण प्रक्रिया के उन कार्यों से परहेज जिन्हें रटने की जरूरत हो : किसी संदेश को समझने का अर्थ प्रत्येक विवरण को रटना नहीं है, इसलिए जानकारी को स्मरण रखने की छात्रों की क्षमता हर बार समझ की कमी का संकेत नहीं देती। किंतु कुछ कार्यों से श्रोताओं अर्थात् छात्रों की श्रवण प्रक्रियाओं पर ध्यान देने की बजाय उनके स्मरण कौशलों की जांच की जाती है। इन कार्यों में बहुविकल्पी और अति महत्वपूर्ण प्रश्न पूछना शामिल है। शिक्षकों को शिक्षा की समस्याओं के विभिन्न प्रकारों को शामिल करने का प्रयास करना चाहिए, जिनमें पाठ के विषय पर चर्चा हो और छात्रों को श्रवण कौशल की शिक्षा के उनके परिणाम की जांच करने के लिए आमंत्रित किया जाए।

श्रवण कौशल शिक्षा की नीतियों का विकास करने में छात्रों की सहायता

कठिन पाठों को प्रभावकारी ढंग से समझने के लिए, छात्रों को विभिन्न नीतियों का ज्ञान होना चाहिए। छात्रों को समझाना, लक्ष्य के निर्धारण हेतु उनके साथ नमूना तैयार करना, नियमित रूप से अभ्यास करना, कार्यों का निर्धारण करना, आत्म निरीक्षण करना, मूल्यांकन करना, आदि श्रवण कौशल को सही दिशा में बनाए रखने में उनकी सहायता कर सकते हैं। विषय का पूर्वानुमान, निष्कर्ष निकालना, अनुमान करना, निरर्थकता को समझना, आदि श्रवण कौशल की समस्याओं को दूर करने में सहायक होते हैं। श्रवण कौशल का उपयोग करते हुए सहपाठियों और आसपास के स्थानीय वक्ताओं से बातचीत को बढ़ावा देने से संवादात्मक विषयों की समझ और आत्म–विश्वास का विकास होता है।

प्रभावकारी नीति का उपयोग स्वतः नहीं हो जाता। हालांकि नीतियों का विचार छात्रों को गूढ़ प्रतीत हो सकता है, पर उनकी श्रवण प्रक्रिया पर ध्यान के साथ गतिविधियों के सहारे शिक्षक नीतियों के महत्व को समझने में उनकी सहायता कर

सकते हैं। उदाहरणस्वरूप, छात्र छोटी टोलियों में अथवा कक्षा में इस पर चर्चा कर सकते हैं कि श्रवण कौशल की शिक्षा की तैयारी, पाठ को समझने, महत्वपूर्ण बिंदुओं का पता लगाने, आदि के लिए उन्होंने क्या किया। वहीं, कक्षा में श्रवण प्रक्रिया के विभिन्न कार्यों के निजी अनुभवों को साझा और अलग–अलग पाठों के लिए प्रभावकारी नीतियों की एक सूची का सृजन किया जा सकता है। नीति का सृजन शिक्षक यह बताते हुए कर सकते हैं कि वह क्या करते हैं और इस स्थिति विशेष में यह सहायक क्यों है। वहीं, श्रवण की विभिन्न स्थितियों में अभ्यास के लिए वह कुछ अवसर भी प्रदान कर सकते हैं। कार्यों के अनुरूप वह छात्रों को नीतियों का चयन करते समय व्यावहारिक बने रहने और कक्षा के बाहर नीतिगत श्रवण प्रक्रिया का उपयोग करने की याद भी दिला सकते हैं।

श्रवण कौशलों के बीच अंतर करना

कौशल केंद्रित विभिन्न आचरणों की पहचान करते हुए, शिक्षक छात्रों को श्रवण प्रक्रिया में एक और कौशल से अवगत करा सकते हैं। छात्रों से सूक्ष्म कौशलों का उनकी अपनी स्थानीय भाषा में उपयोग करने के लिए कहा जाना चाहिए, किंतु उन कौशलों का उपयोग किसी नई भाषा में करने हेतु विशेष गतिविधियों का आयोजन किया जा सकता है। कौशल प्रशिक्षण को श्रवण कौशल की एक बृहत्तर रूपरेखा से जोड़ा जाना चाहिए, जिसमें छात्रों को विभिन्न संदर्भों और कार्यों में नए प्रयोग का प्रयास करने के लिए कहा जाए।

श्रवण कौशल के सर्वांगीण (शीर्ष–पाद और पाद–शीर्ष / Top-Down and Bottom-Up) अभ्यास का अवसर देना

श्रवण प्रक्रिया एक बहुचरणी प्रक्रिया है, जिसमें प्रक्रिया के ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर दोनों प्रकार होते हैं, इसलिए कक्षा में कौशलों का अभ्यास कराया जाना चाहिए। हालांकि कई शिक्षक ऊपर से नीचे (शीर्ष–पाद) की गतिविधियों का चयन करते हैं, जिनमें कौशल के प्रश्न, अनुमान और सूची बनाना आते हैं, किंतु उच्चारण, व्याकरण और शब्द प्रयोग के लिए श्रवण प्रक्रिया में नीचे से ऊपर (पाद–शीर्ष) अभ्यासों को भी शामिल किया जाना चाहिए।

नीचे से ऊपर की प्रक्रिया पाठ को समझने हेतु शब्दों और उच्चारण की विशेषताओं को समझने में छात्रों की सहायता करती है। शब्द और वाक्य के स्तरों पर उनका प्रत्यक्ष ध्यान भाषा स्वरूपों पर होता है, इसलिए नीचे से ऊपर की प्रक्रिया विशेष रूप से निम्न स्तरों के उन छात्रों के लिए उपयोगी होती है, जो अपने भाषा स्तर का विकास करना चाहते हों। भाषायी विशेषताओं का ज्ञान जैसे–जैसे बढ़ता जाता है, छात्रों की समझ की गति और परिशुद्धता भी बढ़ती जाती है।

नीचे से ऊपर की प्रक्रिया के विकास हेतु छात्रों को विशिष्ट ध्वनियों तथा शब्द सीमाओं की पहचान के साथ–साथ जिन शब्द खंडों पर जोर दिया जाए उनकी पहचान करने के लिए कहना चाहिए। वहीं, उन्हें शब्द समूहों, व्याकरणिक स्वरूपों और योजक शब्दों की पहचान करने, उच्चारणों में ध्वनि–शैली के उतार–चढ़ाव पर ध्यान देने तथा शब्दसंकोचों और संयुक्त उच्चारण को समझने की सलाह भी दी जानी चाहिए।

टिप्पणी

ऊपर से नीचे की प्रक्रिया ध्वनियों और शब्दों से प्राप्त जानकारी के उपयोग से श्रवण के किसी पाठ का अर्थ निकालने के पूर्व ज्ञान और अनुभव पर निर्भर करती है। किसी पाठ का कोई अर्थ निकालने के लिए, छात्र संदर्भ, विषय, शिक्षक, स्थिति और परिवेश के अपने ज्ञान का सहारा लेते हैं और इस श्रवणिक जानकारी से उसका मिलान करते हैं। श्रवण की ऊपर से नीचे की प्रक्रिया में मूल आशय, मुख्य विचार, और विषय को सुनना और पाठ का विन्यास करना, विशिष्ट जानकारी को सुनना, जानकारी को क्रमबद्ध करना, अनुमान करना और निष्कर्ष निकालना शामिल हैं।

अर्थ सृजन के लिए कुशल छात्र ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर दोनों प्रक्रियाओं का उपयोग एक साथ करते हैं।

श्रवण कौशल के विकास में आने वाली बाधाएं

श्रवण कौशल के विकास में कुछ बाधाएं आ सकती हैं, जिनसे परहेज करना और जिन्हें दूर करना आवश्यक होता है। शिक्षक को यह ध्यान रखना चाहिए कि उनके अपने समेत कक्षा के सभी छात्र अपनी अभिवृत्तियों, मूल्यों, कल्पनाओं, निर्णयों, अतीत के अनुभवों और सुष्ठ भावनाओं के अनुरूप प्रत्येक शब्द को समझते हुए उसकी व्याख्या कर रहे हैं। शिक्षक को यह ध्यान भी रखना चाहिए कि श्रवण के आचरण पर आयु, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, शारीरिक गठन व तौर–तरीकों का प्रभाव पड़ता है। यहां श्रवण कौशल के विकास में आने वाली कुछ मुख्य बाधाओं का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है।

संस्कृति

श्रोताओं और वक्ताओं के बीच सांस्कृतिक अंतर प्रभावकारी संप्रेषण के मार्ग में बाधा खड़ी कर सकते हैं। सांस्कृतिक अंतरों में वार्तालाप में साझा जानकारी अथवा श्रोताओं और वक्ताओं की भूमिकाओं के प्रति वक्ताओं के स्वराघात (लहजा), शब्द प्रयोग, कल्पनाएं, आदि आते हैं।

सांस्कृतिक अंतरों के प्रति उदारता

संस्कृति में जाति, राष्ट्रीयता और नृजातीयता शामिल होती हैं, किंतु यह यहीं तक सीमित नहीं होती। जब हम संस्कृति की बात करते हैं, तब हमारा तात्पर्य मान्यता प्रणालियों, मूल्यों और आचरणों से होता है जो किसी विचारधारा विशेष अथवा सामाजिक व्यवस्था का आधार होते हैं। संस्कृति भाषा के प्रयोग, परिधान के सही स्वरूपों और विश्व के प्रति दृष्टिकोणों को दिशा देती है। संस्कृति की यह अवधारणा व्यापक है और इसमें समाज के कई क्षेत्रों का समावेश हो सकता है, जैसे किसी व्यक्ति की निजी भूमिका, परिवार की भूमिका, शैक्षिक प्रणालियां, रोजगार, महिला–पुरुष समानता, आदि।

अलग–अलग संस्कृतियों के संप्रेषण की विधियां अलग–अलग होती हैं, जो श्रवण की प्रभावकारी प्रक्रिया के समक्ष बाधा उत्पन्न कर सकती हैं। इस प्रकार के सांस्कृतिक अंतरों में वार्तालाप में वक्ता के स्वराघातों और शब्द प्रयोग के साथ–साथ साझा जानकारी और श्रोताओं तथा वक्ताओं की भूमिकाओं के प्रति कल्पनाएं आती हैं। संस्कृतियों के प्रति संवेदनशीलता बनाए रखने के लिए उदार श्रवण प्रक्रिया के कुछ मूलभूत तत्वों की आवश्यकता होती है, जैसे आलोचना से परहेज और परानुभूति का उपयोग।

श्रवण प्रक्रिया में सांस्कृतिक और महिला–पुरुष अंतर विचार

टिप्पणी

सांस्कृतिक अंतर : संवाद को अलग–अलग संस्कृतियों में अलग–अलग ढंग से समझा जाता है। सांस्कृतिक अंतरों के कुछ उदाहरण यहां प्रस्तुत हैं।

कुछ संस्कृतियों में रुकावटों, संशोधनों और संवाद के दौरान प्रश्नों को अशिष्ट माना जाता है जबकि कुछ अन्य संस्कृतियों में इन्हीं क्रियाओं के आधार पर निष्कर्ष निकाला जाता है।

कुछ देश ऐसे वार्तालापों से बैठक शुरू करते हैं, जिनका विचार के मुख्य बिंदु से कोई संबंध नहीं होता। इसके विपरीत कुछ अन्य देश इसे समय की बर्बादी मानते हैं। इसका सीधा संबंध समय के प्रति विभिन्न दृष्टिकोणों से हो सकता है।

विश्व के अलग–अलग हिस्सों में शब्दों के अर्थों में भिन्नता के कारण 'नहीं' और 'हां' जैसे सामान्य शब्दों का भी गलत अर्थ लगाया जा सकता है।

अंतर–सांस्कृतिक वार्तालाप में इन अंतरों के साथ–साथ अन्य अंतरों पर विचार करना भी आवश्यक होता है।

छात्रों को–

यह नहीं मान लेना चाहिए कि वे समझते हैं। उन्होंने समझा या नहीं यह देखने के लिए उन्हें शिक्षक के कथन का संक्षिप्त विश्लेषण करना चाहिए। यदि आवश्यक हो, तो वह इसमें सुधार कर देंगे।

यदि आवश्यक हो, तो संदेश को लिख लेना चाहिए और शिक्षक के साथ उसकी समीक्षा करनी चाहिए। गलतफहमियों को दूर करना चाहिए।

विषय से संबद्ध सभी संदेहों को दूर करने के लिए भ्रम के स्रोत को देखना चाहिए। विचार को स्पष्ट करने के लिए कहना चाहिए।

किसी शब्द की व्याख्या करने के लिए कहने में संकोच नहीं करना चाहिए, क्योंकि शब्दों के अर्थ अलग–अलग संदर्भों में अलग–अलग हो सकते हैं।

शिक्षक की संस्कृति के मूल तत्वों को समझना चाहिए।

दैनिक जीवन में अन्य संस्कृतियों का बुनियादी ज्ञान अति उपयोगी हो सकता है। वार्तालाप में, विशेष रूप से अलग–अलग पृष्ठभूमियों के लोगों के साथ वार्तालाप में, समय देना जरूरी होता है, इसलिए धैर्यपूर्वक सुनना चाहिए।

आलोचना से परहेज करना चाहिए। ऐसी अनेकानेक स्थितियों का सामना करना पड़ सकता है, जिनमें अन्य संस्कृतियों के लोगों से साक्षात्कार हो।

शिक्षक की शारीरिक भावभंगिमाओं पर ध्यान देना चाहिए, इससे उनकी और उनके कथन की जानकारी मिल सकती है।

श्रवण प्रक्रिया में महिला–पुरुष अंतर

महिलाओं और पुरुषों के सुनने के कारण और तर्क अलग–अलग होते हैं। उन्हें शिक्षक से अलग–अलग जानकारी की अपेक्षा भी होती है। पुरुष तथ्यों पर ध्यान देते हैं जबकि महिलाएं संवाद की भावदशा पर। किंतु, ये अंतर गौण हैं। महिलाएं विस्तार में जाना चाहती हैं, जिसे पुरुष समय की बर्बादी मानते हैं। पुरुष जब बोलते हैं, तो सीधे तथ्य प्रस्तुत करते हैं, जिससे महिलाओं की जिज्ञासाएं पूरी नहीं हो पातीं। वे अधिक से अधिक

जानकारी चाहती हैं ताकि स्थिति को बेहतर ढंग से समझ सकें। ऐसे में महिलाओं और पुरुषों के लिए और फिर दोनों के लिए कुछ दिशा निर्देश यहां प्रस्तुत हैं।

महिलाओं के लिए : महिलाओं को यथार्थवादी होना चाहिए। वे पुरुषों से हमेशा वैसा करने की अपेक्षा नहीं कर सकतीं जैसा कि वे चाहती हों। यदि पुरुषों की अनुक्रिया उनके अनुरूप नहीं हो, तो महिलाओं को इसका बुरा नहीं मानना चाहिए। उन्हें शांत रहना चाहिए। पुरुषों की हर बात का विश्लेषण करने की कोई आवश्यकता नहीं है। शब्द हमेशा द्वयार्थक नहीं होते। वह जो समझती हों वही कहना चाहिए। पुरुष उनके मन को पढ़ नहीं सकते।

पुरुषों के लिए : पुरुषों को धैर्यशील होना चाहिए। उन्हें स्थिति की अधिक से अधिक जानकारी देने के ध्येय से महिलाएं हर विषय को स्पष्ट करने की आवश्यकता महसूस करती हैं। महिलाओं को अकसर लगता है कि अनुक्रिया के अभाव में पुरुष जो कुछ कह रहे होते हैं उसकी परवाह नहीं करते। पुरुषों का ऐसा करना उचित नहीं है। पुरुषों को कल्पना नहीं करनी चाहिए। उन्हें यह नहीं मान लेना चाहिए कि वे जो कह रहे हैं वह इसलिए महत्वपूर्ण नहीं है कि विषय उनके लिए महत्वपूर्ण नहीं है। यदि महिलाएं उनसे इसके प्रति बात करना चाहें, तो इसका अर्थ यह है कि वे चाहती हैं कि उन्हें कहने के लिए समय दिया जाए।

दोनों के लिए : दोनों को कुछ मूल नियम बनाने चाहिए। उदाहरणस्वरूप, कोई गंभीर विषय शुरू करने से पहले, यह तय कर लेना चाहिए कि उस विषय पर बात करने के लिए कितना समय चाहिए। इससे कुछ अनावश्यक तर्क–वितर्क से बचा जा सकता है। दोनों को वार्तालाप में रुचि लेनी चाहिए। दोनों की अलग–अलग विषयों में रुचि होती है।

2.4.4 भाव और अभिव्यक्ति की चेतना का विकास

बच्चे बचपन में ही अपने भावों को समझना और उनका नियमन करना सीखना शुरू करते हैं। कुछ ऐसे बच्चों को, जो शारीरिक अक्षमता से ग्रस्त होते हैं या जिनका विकास समुचित गति से नहीं होता, अकसर अपने भावों को जानने, समझने और उनका नियमन करने के लिए स्वस्थ बच्चों से अधिक सहायता की जरूरत होती है। कुछ बच्चों को अपने और अन्य लोगों के भावों को समझने के लिए सहायता की आवश्यकता होती है। कुछ अन्य बच्चों को अपने उन भावों का नियमन करने में सहायता की जरूरत होती है, जिनके तीव्र होने की संभावना रहती है और जिनका परिणाम दुखद घटना, आवेग, अनादर और अन्य चुनौतीपूर्ण आचरणों के रूप में सामने आ सकता है।

बच्चों की भावों की चेतना वयस्कों, अन्य बच्चों और नई स्थितियों के साथ उनकी बातचीत और व्यवहार से बढ़ती है। भावों का वर्णन करने के लिए वे धीरे–धीरे शब्दों को सीखते हैं, यह जानकारी प्राप्त करते हैं कि भावों की अनुभूति कैसे होती है। इस क्रम में वे सामाजिक दृष्टि से उपयुक्त तरीके से अपने भावों पर नियंत्रण रखते हुए उन्हें व्यक्त करते हैं।

भावात्मक विकास

भावात्मक विकास में अनुभूतियों और संवेगों का ज्ञान प्राप्त करना, उनके उत्पन्न होने के ढंग और कारण को समझना, किसी व्यक्ति का अपनी और अन्य लोगों की

अनुभूतियों व भावनाओं को समझना और उन अनुभूतियों को प्रभावकारी ढंग से समुचित दिशा देना आदि शामिल हैं।

टिप्पणी

भावात्मक विकास क्या है?

भावात्मक विकास एक जटिल कार्य है, जो शैशवावस्था में शुरू होता है और वयस्कावस्था तक चलता रहता है। भावों के प्रारंभिक लक्षण बच्चों में खुशी, क्रोध, उदासीनता और भय के रूप में दिखाई देते हैं। बच्चों में आत्मबोध का विकास जैसे–जैसे होता जाता है, वैसे–वैसे उनमें संकोच, आश्चर्य, गर्व व उल्लास, आकुलता व उलझन, लज्जा, दोषबोध, गौरव और परानुभूति, आदि जन्म लेने लगते हैं। वयस्कावस्था से पूर्व स्कूल के छात्र भावों की पहचान करना, उनके उत्पन्न होने के कारणों को समझना और उन्हें उचित दिशा देना सीख रहे होते हैं।

बच्चों और युवा लोगों के विकास की गतियों में अंतर हो सकता है अर्थात् किसी बच्चे या युवा व्यक्ति के विकास की गति किसी दूसरे बच्चे या युवा व्यक्ति के विकास की गति से भिन्न हो सकती है। कुछ बच्चों के बचपन में ही भावात्मक कौशल के विकास की गति तीव्र हो सकती है, जबकि कुछ बच्चों की किशोरावस्था में भी विकास की गति धीमी होती है।

भावात्मक विकास और आत्मबोध

जब बच्चों को इस बात की अनुभूति होती है कि वे जो करते हैं, उसमें सफल हो सकते हैं, तब उनमें सक्षमता की एक भावना और आत्मविश्वास का जन्म होता है, जिसका प्रभाव उनके भावात्मक विकास पर पड़ता है। जो बच्चे वांछित स्तर पर सफल नहीं होते, उनमें अकसर असंतोष की भावना बनी रहती है, जिससे उनमें नकारात्मक आत्मबोध पनप सकता है। यदि बच्चों और युवाओं को उनकी और अन्य लोगों की क्षमताओं के मूल्य का ज्ञान कराया जाए और तदनुरूप प्रयास करने की प्रेरणा दी जाए, तो उनमें सकारात्मक सोच जन्म ले सकती है।

कक्षा में भावों की चेतना के विकास की शिक्षा

चेतना क्या है?

चेतना का तात्पर्य किसी व्यक्ति की उसके अपने विचारों, भावों और मूल्यों को समझने और उसके आचरण पर पड़ने वाले उनके प्रभाव को जानने की क्षमता से है। इसके अतिरिक्त इसका अर्थ व्यक्ति की क्षमताओं और कमजोरियों का आकलन करने की क्षमता भी है।

हालांकि बच्चे बचपन के सामान्य विकास के साथ–साथ आत्मनियमन और भावात्मक चेतना के आधारों को समझना सीखते हैं, किंतु अपने भावों को समझने और उन्हें स्वयं सही दिशा देने के अधिक से अधिक प्रभावकारी व सामाजिक दृष्टि से उपयुक्त तरीके सीखने के लिए उन्हें सहायता की जरूरत हो सकती है। जब बच्चे अपने भावों को प्रभावकारी ढंग से सही दिशा देने के योग्य हो जाते हैं, तब उनमें सीखने, दूसरों से बातें और परस्पर व्यवहार करने तथा अधिक से अधिक आत्मनिर्भर होने की क्षमता पनपने लगती है। किंतु बचपन में बच्चे जब तक अपने भावों को सही दिशा देने के योग्य नहीं हो जाते, तब तक उन्हें दूसरों की सहायता की जरूरत होती है।

टिप्पणी

भावनाओं को समझने की क्षमता आवश्यक होती है। कुंठा और क्रोध के बीच अंतर को समझना भावों को दिशा देने में छात्रों की सहायता कर सकता है। अपनी भावनाओं–अनुभूतियों, विचारों और कार्यकलापों के बीच सामंजस्य कायम कर वे अपने भावों की समस्याओं को दूर करने के साथ–साथ उनके अनुरूप अनुक्रिया कर सकते हैं।

छात्रों को अपने प्रति निष्ठा रखनी चाहिए। उन्हें स्वयं को निष्ठापूर्वक देखने की शिक्षा देना समादर और आलोचना के प्रति उदारता तथा नम्रतापूर्वक अनुक्रिया करने में सहायता कर सकता है। यह आत्मबोध उन्हें उनके स्वभाव के नकारात्मक और सकारात्मक दोनों पक्षों को देखने और स्वीकार करने की शिक्षा दे सकता है।

छात्रों को अपनी क्षमताओं और कमजोरियों का ज्ञान होना चाहिए। स्वयं को समझना, अपनी गलतियों को स्वीकार करना और अपनी क्षमताओं को समझना उनके आत्मविश्वास के संवर्धन में सहायक हो सकता है।

बच्चों और युवाओं की अनुभूतियों और भावनाओं पर ध्यान देते हुए उनके भावात्मक चेतना के विकास में सहायता शुरू की जा सकती है। स्कूलों में पाठ्यक्रमों में छात्रों के सामाजिक और भावात्मक कौशलों के विकास के लिए विशेष कार्यक्रमों को शमिल किया जाता है। इन कौशलों की शिक्षा नियमित रूप से विचारों के आदान–प्रदान और एक दूसरे के साथ कार्य करते हुए दी जा सकती है।

ऐसे कई उपाय हैं, जिनका उपयोग शिक्षक भावों की चेतना के विकास में बच्चों की सहायता के लिए कर सकते हैं। नीचे ऐसे कुछ मुख्य उपायों का विवरण प्रस्तुत है।

छात्रों की अनुभूतियों और संवेगों में सामंजस्य कायम करना : कुछ भाव स्पष्ट देखे जा सकते हैं, जबकि कुछ अन्य धुंधले या अस्पष्ट होते हैं। बच्चों और युवाओं के भावों में तालमेल जोड़ने में उनकी भावभंगिमाओं पर ध्यान देना, वह जो कुछ कह रहे हों उसे ध्यान से सुनना और उनके कहने के तरीके पर गौर करना, उनके आचरण का अवलोकन करना, आदि आते हैं। शिक्षक आवश्यकताओं के अनुरूप अधिक से अधिक प्रभावकारी ढंग से अनुक्रिया करने और भावों की चेतना को समुचित दिशा देने में छात्रों की उनकी सहायता कर सकते हैं।

साक्ष्य आधारित उपाय

- **भावों पर चिंतन को बढ़ावा देना** : बच्चों के साथ भावनाओं से जुड़े शब्दों, प्रतीकों और चित्रों का नियमित रूप से उपयोग करना बच्चों की उनके अपने और अन्य लोगों के भावों को समझने में सहायता कर सकता है। शिक्षक को भावों को समझने और दूसरों को बताने में बच्चों की सहायता करनी चाहिए। इस कार्य में शिक्षक अपने भावों की बात कर सकते हैं, बच्चों से उनकी अनुभूति का वर्णन करने अथवा चित्र के माध्यम से बताने के लिए कह सकते हैं।
- **भावों से जुड़ी पुस्तकें पढ़कर सुनाना** : शिक्षक को बच्चों को अनुभूतियों–भावनाओं से जुड़ी ऐसी पुस्तकें पढ़कर सुनानी चाहिए, जिनमें प्रश्न हों, जैसे 'जब आपको चोट लगी तब आप क्या कर रहे थे?' इससे उन्हें अपने भावों को समझने–सीखने में सहायता मिलेगी। बच्चों से उन अवसरों पर सोचने

के लिए कहा जा सकता है, जब पुस्तकों के चरित्रों में उन्होंने स्वयं को महसूस किया हो। इससे बच्चों से यह पूछने में भी सहायता मिल सकती है कि पुस्तक के चरित्रों के बारे में उनका क्या विचार है।

टिप्पणी

- **स्वांग अभिनय (Pretend Play) को बढ़ावा देना** : स्वांग अभिनय में वह अभिनय आता है, जिसमें बच्चे अलग–अलग पात्रों, मिथ्या खिलौनों का अभिनय करते हैं। इसमें अकसर भावनात्मक कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है। किसी अधिक अनुभवी व्यक्ति, जैसे शिक्षक, के साथ नियमित रूप से यह कार्य करने से बच्चों को उनके अनुभवों को व्यक्त करने और उनसे निपटने के तरीके बताते हुए उनके भावनात्मक विकास में सहायता मिलती है। इसमें बच्चे उन तनावपूर्ण स्थितियों का आयोजन भी कर सकते हैं, जिनका सामना उन्हें करना पड़ा हो। कुछ बच्चों, जैसे स्वलीनता से ग्रस्त बच्चों, को उनके स्वांग अभिनय के कौशलों का विकास करने में सहायता की आवश्यकता हो सकती है।
- **बच्चों के साथ सकारात्मक जुड़ाव कायम करना** : बच्चों के साथ एक घनिष्ठ और सुरक्षित संबंध उन्हें परिवेश के साथ घुलने–मिलने और भावों की चेतना का विकास करने में सहायता मिल सकती है। शिक्षक–छात्र संबंध, जो बच्चों की आवश्यकताओं के लिए उत्साहवर्धक होते हैं और आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देते हैं, सीखने और अनुभूतियों को खुलकर व्यक्त करने में बच्चों की सहायता कर सकते हैं। ये संबंध प्रतिकूल परिस्थितियों से निपटने में भी बच्चों की सहायता कर सकते हैं।
- **तनावपूर्ण स्थितियों में बच्चों की सहायता करना** : उत्साहवर्धक और सकारात्मक सहयोग किसी बच्चे के सामाजिक और भावनात्मक विकास के लिए आवश्यक होता है। भावनात्मक उत्साहवर्धन, सहायता और सकारात्मक भावना की अभिव्यक्ति से तनाव के क्षणों में बच्चों को यह सीख मिल सकती है कि भावों पर नियंत्रण संभव है। वहीं, इससे उन्हें भावों को उचित दिशा देने में सहायता भी मिल सकती है।
- **बच्चों को समस्या के समाधान के कौशल की शिक्षा देना** : बच्चों से बातचीत करते, उन्हें उदाहरणों के साथ समझाते हुए उनमें समस्या के समाधान के कौशलों का विकास किया जा सकता है। समस्या के समाधान की उदाहरण के साथ शिक्षा देने में कठपुतलियों और गुड़ियों को शामिल किया जा सकता है। शिक्षक को बच्चों को समस्या के समाधान की शिक्षा चरणबद्ध ढंग से देनी चाहिए, जैसे किसी समस्या को समझना, उसके लिए किन्हीं दो समाधानों पर विचार करना और फिर उनमें से किसी एक का उपयोग करने का प्रयास करना। बच्चों को समस्याओं के उनके अपने समाधानों पर विचार करने को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।
- **बच्चों से सहायता के लिए पूछना** : शिक्षक को बच्चों से पूछना चाहिए कि उन्हें किसी सहायता की जरूरत है या नहीं। इससे बच्चे चुनौतीपूर्ण स्थितियों में सहायता की मांग खुलकर कर सकते हैं।
- **एक डायरी बनाने को कहना** : छात्र जब अपने भावों की पहचान और उनका वर्गीकरण करना सीख लें, तब उन्हें एक डायरी बनाने को कहना चाहिए। छोटे

बच्चे इस डायरी में चिपकाएं जबकि बड़े छात्र इसका उपयोग अपने भावों का मूल्यांकन करने के लिए कर सकते हैं।

टिप्पणी

स्वस्थ चेतना भावात्मक कुशलता और आत्मसम्मान को बढ़ावा देती है। यह छात्रों को यह समझने का सूक्ष्म ज्ञान देती है कि वे क्या हैं, वे अनुक्रिया क्यों करते हैं। वहीं, यह उन्हें आत्म–सुधार की दिशा में भी ले जाती है। छात्रों के लिए आत्मचेतना महत्वपूर्ण होती है। जिन लोगों में आत्मचेतना होती है, उनमें किसी लक्ष्य की प्राप्ति का विश्वास होता है, और यह शीलगुण छात्रों की उनके हर कार्य सफलता प्राप्त करने में सहायता करता है।

2.4.5 सामाजिक–आर्थिक, सांस्कृतिक, तथा लिंग और जाति भेद के प्रति संवेदनशीलता

सामाजिक–आर्थिक, सांस्कृतिक, लैंगिक तथा जाति भेद के प्रति चेतना (संवेदनशीलता) को इस प्रकार समझा जा सकता है–

- **सामाजिक–आर्थिक विविधता की संवेदनशीलता (चेतना) का विकास**

जिस प्रकार छात्रों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमियां अलग–अलग होती हैं, जिस प्रकार वे अलग–अलग भाषाएं बोलते हैं, और जिस प्रकार उनकी आवश्यकताएं अलग–अलग होती हैं, उसी प्रकार उनकी सामाजिक–आर्थिक स्थितियां भी अलग–अलग होती हैं। किसी परिवार की सामाजिक–आर्थिक स्थिति की व्याख्या उसके सदस्यों की आय, शिक्षा और व्यवसाय के आधार पर की जाती है। किसी परिवार की सामाजिक–आर्थिक स्थिति का वर्गीकरण उच्च, मध्यम अथवा निम्न के रूप में किया जाता है।

शोधों के अनुसार स्कूली आयु वर्ग के पांच छात्रों में से एक गरीब होता है। गरीब छात्रों की पढ़ाई बीच में ही छोड़ देने की दर में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है। उच्च अथवा मध्यम सामाजिक–आर्थिक स्तर के छात्रों की तुलना में निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के बच्चों का प्रदर्शन बहुधा निम्न होता है। आरंभिक कक्षा में प्रवेश के समय इन छात्रों का भाषा कौशल निम्न स्तर का होता है। इसके विपरीत जिन माता–पिता का शैक्षिक और व्यावसायिक स्तर उच्च होता है, उनके बच्चों का भाषा कौशल अपेक्षाकृत अधिक समृद्ध होता है। गणित और वाचन के स्तर पर भी गरीब बच्चे कमजोर होते हैं। गरीब छात्र अकसर स्कूल से अनुपस्थित रहते हैं, जिसका प्रभाव उनकी शिक्षा पर पड़ता है।

सामाजिक–आर्थिक स्थिति का चित्रण शिक्षा, आय और व्यवसाय के आधार पर किया जाता है और इसका छात्रों के कल्याण व शैक्षिक परिणामों पर गहरा प्रभाव पड़ सकता है। निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के छात्रों को स्कूल या कॉलेज में प्रवेश के समय कठिनाई का सामना करना पड़ सकता है। ये छात्र जब स्वयं को निम्नतर कामकाजी वर्ग के क्षेत्र में देखते हैं, तब बेचैन हो उठते हैं और ऐसे में उनके मन में पढ़ाई बीच में ही छोड़ देने की भावना पनप सकती है। इन छात्रों की शिक्षा की नीतियां अपेक्षाकृत अधिक सीमित हो सकती हैं और उनकी पढ़ाई की पद्धति अलग हो सकती है। इसके अतिरिक्त, निम्न और उच्च सामाजिक–आर्थिक स्थितियों के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धियों में गहरा अंतर होता है।

टिप्पणी

शिक्षक की भूमिका

शिक्षक सक्रिय और समावेशी शिक्षा पद्धतियों की संरचना पर विचार कर सकते हैं, जिनमें विभिन्न विधियों का समावेश हो, शैक्षिक उपलब्धि के विभिन्न मार्ग हों और कक्षा के सब के लिए सुलभ तथा छात्रों व शिक्षकों के आमने–सामने बातचीत करने के एक परिवेश का सृजन हो। शिक्षक पाठ्यक्रम में आचरणिक शिष्टाचार के मानकों का समावेश भी कर सकते हैं, जिनमें छात्रों के लिए सम्मान और मुक्त द्वार नीति का विशेष स्थान हो।

शिक्षक नीचे प्रस्तुत कुछ नीतियों की सहायता से एक समावेशी परिवेश का सृजन कर सकते हैं।

ज्यादातर शिक्षक इस बात से सहमत होते हैं कि छात्रों को कक्षा में शामिल होने के लिए आवश्यक संसाधन मुहैया कराए जाने चाहिए। किंतु, वहीं यह भी आवश्यक है कि वे स्वयं कक्षा में केवल शिक्षा से जुड़ी सामग्री नहीं बल्कि छात्रों की बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करने वाली सामग्री भी लाएं। यही नहीं, शिक्षकों को छात्रों की सहायता भावनात्मक स्तर पर भी करनी चाहिए। कक्षा में छात्रों को भौतिक संसाधन प्रदान करने के अतिरिक्त उन्हें भावनात्मक सहायता देना भी जरूरी होता है। शिक्षकों को छात्रों को यह आभास कराना चाहिए कि वे कक्षा में केवल पढ़ाई में नहीं बल्कि भावनात्मक स्तर पर भी उनकी सहायता कर सकते हैं। इससे वे स्वयं को सम्मानित महसूस करेंगे। यदि उन्हें लगे कि शिक्षक अन्य समस्याओं को दूर करने में भी उनकी सहायता कर सकते हैं, तो वे अपनी आर्थिक स्थिति के कष्ट को झेल सकते हैं।

एक मुक्त द्वार नीति कायम करना : शिक्षक कक्षा के बाहर और भीतर छात्रों के साथ कार्य करने के लिए समय का निर्धारण कर सकते हैं और छात्रों से स्कूल में कम से कम एक बार मिलने के लिए कह सकते हैं ताकि व्यक्तिगत संपर्क बने और प्रत्येक छात्र के प्रति उनकी वचनबद्धता सुदृढ़ हो।

मानविकी के विभिन्न विषयों की शिक्षा को शामिल करना : शिक्षकों को मानविकी के विभिन्न विषयों और विभिन्न संस्कृतियों का समावेश करना चाहिए। इस पद्धति से सभी छात्रों को पाठ्यक्रम की सामग्री में अपनी स्थिति को समझने और उस पर सोचने में सहायता मिल सकती है।

कठिनाई पर ध्यान देना : महत्वपूर्ण अवधारणाओं की व्याख्या के लिए शिक्षक प्रचलित और सरल भाषाओं का उपयोग कर सकते हैं। कठिन विषयों के अध्ययन–अध्यापन की अलग–अलग पद्धतियां सामाजिक–आर्थिक स्थिति और शैक्षिक तैयारी के विभिन्न स्तरों को पूरा करते हुए छात्रों की बौद्धिक क्षमता में सुधार लाने में सहायक हो सकती हैं।

श्रेणी की अपेक्षाओं को स्पष्ट करना : पाठ्यक्रम और कक्षा की नीतियों का समावेश करते, कोई टिप्पणी या सुझाव देते और रचनात्मक व योगात्मक मूल्यांकनों को एक दूसरे से मिलाते हुए शिक्षक कक्षा के पहले दिन ही छात्रों को पाठ्यक्रम में स्पष्ट रूप से निहित कार्य, श्रेणी और मूल्यांकन की अपेक्षाएं बता सकते हैं। ऐसा करते हुए, जिन छात्रों को शैक्षिक प्रक्रिया की जानकारी कम हो, उन्हें समुचित जानकारी देकर वे छात्रों की आम शिकायतों को दूर कर सकते हैं।

टिप्पणी

छात्रों को पर्याप्त समय देना : सामाजिक–आर्थिक रूप से कमजोर छात्रों को प्रतिस्पर्धी दबावों का सामना करना पड़ता है और वित्तीय दबावों, रोजगार में लगने वाले समय, पढ़ाई के साथ–साथ परिवार और अभिभावक के प्रति दायित्वों को पूरा करने में लगने वाले समय के कारण इन छात्रों के पास समय की कमी रहती है। ऐसे में उनके पढ़ाई के कार्यों के लिए आवश्यक समय दिया जाना चाहिए।

छात्रों की समस्त जानकारी रखना : शिक्षक को छात्रों के नामों, पृष्ठभूमियों, आवश्यकताओं, पढ़ाई–लिखाई की शैलियों, पूर्व के अनुभव और शिक्षा और स्थितियों की जानकारी रखनी चाहिए। शिक्षक की यह जानकारी छात्रों की सफलता में एक बड़े कारक की भूमिका निभा सकती है।

छात्रों के साथ संवाद–संप्रेषण बनाए रखना : यह एक अति महत्वपूर्ण उपाय है। शिक्षक को छात्रों के विचारों और शिकायतों को ध्यान से सुनना चाहिए, उनसे समय–समय पर बात करते रहना चाहिए। उन्हें इसका विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए कि संवादहीनता जैसी कोई स्थिति न बने।

सहयोगशील कार्य को बढ़ावा देना : शिक्षक कक्षा में छात्रों को मिलकर कार्य करने को प्रोत्साहित कर सकते हैं। इनमें समूह–कार्य, स्थिति अध्ययन और समूह आधारित शिक्षा मुख्य हैं जो छात्रों को एक दूसरे से सीखने के पर्याप्त अवसर प्रदान करते हैं।

छात्रों की भावनाओं सम्मान करना : शिक्षकों को चर्चाओं में छात्रों की निजी अनुक्रियाओं को शामिल करने पर विचार करना चाहिए। इस कार्य से छात्रों में सूक्ष्मदृष्टि के विकास के साथ–साथ शैक्षिक चर्चा–परिचर्चा की क्षमता समृद्ध होती है।

• कक्षा में विविधता और सांस्कृतिक संवेदनशीलता (चेतना) का महत्व

कक्षा में सांस्कृतिक विविधता उत्तरोत्तर बढ़ रही है। बहुसांस्कृतिक होते समाज में, शिक्षकों के लिए कक्षा में बहुसांस्कृतिक दृष्टि से प्रभावशील शिक्षा का समावेश करना पहले की अपेक्षा अधिक जरूरी हो चला है। विविधता में इस वृद्धि का संबंध केवल जाति और नृजातीयता तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें अलग–अलग धर्मों, आर्थिक स्थितियों, काम प्रवृत्ति, महिला–पुरुष अस्मिता और भाषायी पृष्ठभूमियों के छात्रों को भी शामिल किया जा सकता है।

स्कूलों में विविधता को बढ़ावा देना जरूरी क्यों है?

बहुसांस्कृतिक शिक्षा के समावेश और चेतना का पोषण तथा शिक्षा की सांस्कृतिक दृष्टि से एक प्रभावशील पद्धति अपनाना सभी छात्रों के लिए लाभदायक होता है। न केवल बहुसांस्कृतिक स्तर पर बृहत्तर चेतना और समावेशी परिवेश का सृजन अलग–अलग पृष्ठभूमियों और आवश्यकताओं के छात्रों की सफल होने में सहायता करता है बल्कि बाहरी विविधतापूर्ण विश्व में जीवनयापन करने हेतु छात्रों के स्वयं को तैयार करने में भी सहायता करता है।

कक्षा में और कक्षा के बाहर विविधता बनी रहती है, इसलिए छात्रों को विकसित होते विश्व के अनुकूल बनाना और उनसे भिन्न लोगों को अपनाने की शिक्षा देना शिक्षक का कार्य है।

टिप्पणी

कक्षा में विविधता का निवारण कैसे करें?

ऐसे कई तरीके हैं, जिन्हें अपना कर शिक्षक सुनिश्चिति कर सकते हैं कि कक्षा का परिवेश और पाठ्यक्रम दोनों समाज में बढ़ती विविधता के लिए उपयुक्त होते हैं। प्रत्येक छात्र के समरसता बोध का संवर्धन और कक्षा में समावेश का पोषण करते हुए ये नीतियां सभी छात्रों की सांस्कृतिक चेतना को बढ़ावा देंगी।

छात्रों को समझना : शिक्षक को प्रत्येक छात्र को जानना–समझना चाहिए, ताकि कक्षा में सांस्कृतिक चेतना को बढ़ावा मिले। प्रत्येक छात्र की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, रुचियों, पढ़ाई की शैलियों, आदि के साथ–साथ यह समझना चाहिए कि उस छात्र का कौन सा गुण उसे विशिष्ट बनाता है। प्रत्येक छात्र और उसकी संस्कृति को समझने के प्रति एक सच्ची दिलचस्पी दिखाने से विश्वास कायम होता है और शिक्षक को उनसे जुड़ने का अवसर मिलता है, जिससे वे स्वयं को सम्मानित महसूस करते हैं। यदि शिक्षक छात्रों की सराहना करें और छात्र उनके साथ सहज महसूस करें, तो इस बात की बेहतर संभावना रहती है कि उन्हें कक्षा में अपने सहपाठियों के साथ बात करने और उनका सम्मान करने में सहजता महसूस होगी।

संवाद–संप्रेषण की प्रक्रिया को अनुकूल बनाए रखना : सांस्कृतिक दृष्टि से किसी जागरूक और समावेशी कक्षा के लिए संवाद–संप्रेषण जरूरी होता है। शिक्षकों को पूरे सत्र या पूरे वर्ष संवाद–संप्रेषण को जारी रखना चाहिए। प्रत्येक छात्र की प्रत्येक दूसरे छात्र से मिलकर बातचीत करने के कार्यक्रम का आयोजन कर वे अपनी कक्षा को प्रत्येक छात्र के लिए सहज बना सकते हैं। इससे समस्याओं को समझने और समस्त स्थिति में सुधार लाने में सहायता मिल सकती है। यह कक्षा में उनकी प्रगति पर चर्चा करने का एक अवसर भी होता है और इसमें उन्हें इसका दिशा निर्देश मिलता है कि एक छात्र के रूप में वे अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप सुधार कैसे कर सकते हैं।

प्रत्येक छात्र को अपनाना और उसका सम्मान करना : शिक्षक को यह ध्यान रखना चाहिए कि छात्र अपनी और एक दूसरे की पृष्ठभूमियों की सराहना और सम्मान करें। शिक्षक यथा आवश्यक छात्रों को उनकी अपनी सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों पर शोध करने और उन्हें समझने के लिए कह सकते हैं। इससे उन्हें अपनी और अपने सहपाठियों की संस्कृतियों के बीच अंतरों को समझने में सहायता मिलेगी। छात्र कक्षा में अपने कुल की संस्कृति और परंपराओं की जानकारी दे सकते हैं। इन अंतरों पर चर्चा–परिचर्चा के लिए एक सुरक्षित परिवेश का सृजन किया जाना चाहिए ताकि कक्षा के भीतर और बाहरी परिवेश में आपस में सामंजस्य कायम हो सके। शिक्षक को छात्रों को एक दूसरे की पृष्ठभूमियों को समझने, उन पर चर्चा करने के लिए कह सकते हैं।

संस्कृति के प्रति संवेदनशीलता बरतना : एक तरफ जहां छात्रों के साथ खुलकर बातचीत करना जरूरी होता है, तो वहीं दूसरी तरफ यह सुनिश्चित करना भी उतना ही जरूरी होता है कि शिक्षक प्रत्येक छात्र की संस्कृति, मान्यताओं और भाषा के प्रति संवेदनशीलता बरतें। शिक्षकों को छात्रों की पढ़ाई की शैलियों से भाषा के उपयोग तक के उनके सांस्कृतिक अंतरों को समझना चाहिए।

कक्षा की शिक्षा में विविधता को शामिल करना : सांस्कृतिक चेतना के पोषण के लिए कक्षा के परिवेश का उसके अनुकूल होना जरूरी होता है, किंतु शिक्षक

टिप्पणी

को शिक्षा में विविधता को भी शामिल करना चाहिए। शिक्षा में सांस्कृतिक चेतना और विविधता को शामिल करने की कई विधियां हैं, जिनका उपयोग शिक्षक कर सकते हैं। विषय से अलग हटकर, उन्हें शिक्षा को यथार्थ जीवन की समस्याओं से जोड़ने का प्रयास करना चाहिए।

- **महिला–पुरुष (लैंगिक) चेतना का विकास**

महिला–पुरुष विषय की व्याख्या सामाजिक स्तर पर निर्मित उन नियमों और विचारधाराओं के रूप में की जाती है, जो महिलाओं और पुरुषों के आचरण और कार्यकलापों का निर्धारण करते हैं। वस्तुतः महिला–पुरुष विषय का तात्पर्य महिलाओं और पुरुषों से जुड़े आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक गुणों और अवसरों से है। अलग–अलग संस्कृतियों में महिला या पुरुष होने के अर्थ की व्याख्या अलग–अलग रूप में की जाती है। महिला–पुरुष प्रकरण उन विशिष्ट विशेषताओं और भूमिकाओं की सामाजिक–सांस्कृतिक अभिव्यक्ति है, जिनका संबंध लोगों के समूहों से होता है।

महिला–पुरुष अवधारणा का तात्पर्य महिला और पुरुष के अस्तित्व से जुड़े सामाजिक गुणों और महिलाओं व पुरुषों के बीच तथा बालकों और बालिकाओं के बीच संबंधों से है। इन गुणों और संबंधों का सृजन सामाजिक दृष्टि और सामाजिक स्तर पर होता है और ये समाजीकरण की प्रक्रियाओं में सीखे जाते हैं। ज्यादातर समाजों में महिलाओं और पुरुषों के दायित्वों, कार्यों, संसाधनों की सुलभता और उन पर नियंत्रण तथा निर्णय निर्धारण के अवसरों में असमानताएं और अंतर होते हैं। महिला–पुरुष विषय बृहत्तर सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भ का एक अंग है।

महिला–पुरुष विषय को किसी बालक या किसी बालिका की सामाजिक और सांस्कृतिक अस्मिता के संदर्भों में समझे जाने की जरूरत है। इस अर्थ में देखने में किसी बालिका या किसी बालक के अपेक्षित आचरणों और समाज की अपेक्षित विशेषताओं को स्वीकार करना शामिल है।

बालिकाओं और बालकों के साथ व्यवहार में अंतर उन्हें समाज में उनकी अपेक्षित भूमिकाओं के प्रति संवेदनशील बनाते हैं। यह आवश्यक नहीं कि ये भूमिकाएं महिलाओं और पुरुषों के बीच अवसरों की समानता को बढ़ावा दें, बल्कि इसकी संभावना कम ही रहती है। कक्षा में बालिकाओं की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति का शिक्षा–शिक्षण प्रक्रिया पर प्रभाव तो पड़ता ही है, बल्कि इससे प्रशासन पर इस बात का जोर भी पड़ता है कि भौतिक आधारभूत संरचना के संदर्भ में बालिकाओं को सुविधाएं मुहैया कराई जाएं, जैसे उनके लिए अलग प्रसाधन कक्ष की सुविधा और महिला–पुरुष संबद्ध मामलों में केंद्र का मानव संसाधनों का विशेष प्रशिक्षण।

अध्ययन–अध्यापन प्रक्रिया में आवश्यक सुधार में शिक्षा की ऐसी स्थितियों का सृजन शामिल किया जाना चाहिए जिनमें महिलाओं और पुरुषों दोनों को समान सहभागिता का अवसर मिले। इसी प्रकार, बाल देखभाल एवं शिक्षा केंद्र (ECCE Centre) में बच्चों को शारीरिक रूप से सक्रिय रहने को बढ़ावा देते समय, शिक्षक को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि चढ़ने, दौड़ने, फुटबॉल, बल्ले और गेंद आदि से खेलने जैसी गतिविधियों में बच्चियां और गुड्डों–गुड़ियों, किचेन सेट और गुड़िया घरों से खलने में बच्चे भी समान रूप से भाग लें।

टिप्पणी

स्कूलों को ऐसा परिवेश सुनिश्चित करना चाहिए जिसमें लड़कियां सुखद और सुरक्षित महसूस करें। यदि बालिकाएं शारीरिक रूप से निःशक्त हों अथवा समाज के सुविधावंचित और कमजोर तबकों की हों, तो उन्हें दोहरे या फिर तिहरे भेदभाव का सामना करना पड़ता है। ऐसे में स्थिति बद से बदतर हो जाती है।

महिला संवेदनशीलता और शिक्षक

महिला संवेदनशीलता का अर्थ महिलाओं को पुरुषों के विरुद्ध खड़ा करना नहीं है। बल्कि महिला संवदेनशीलता की शिक्षा का लाभ महिलाओं और पुरुषों दोनों को मिलता है। इस शिक्षा से उन्हें यह तय करने में सहायता मिल सकती है कि महिला विषयक कौन–सी सोच उचित है और कौन–सी रूढ़िबद्ध।

शिक्षा से परिवर्तन आ सकता है, किंतु इसके लिए यह आवश्यक है कि कक्षा में शिक्षक और छात्र मिलकर प्रयास करें। महिला–पुरुष समानता को यदि एक नीति के रूप में अपनाया जाए, तो वांछित परिवर्तन की असीम संभावना बनती है क्योंकि इससे बालकों और बालिकाओं दोनों की व्यावहारिक और कार्यनीतिक आवश्यकताएं पूरी हो सकती हैं। महिला–पुरुष समानता के लक्ष्य की पूर्ति हेतु कक्षा में और कक्षा के बाहर शिक्षक अपनी शिक्षण प्रक्रिया में गुणात्मक सुधार और अपनी अभिवृत्तियों, मान्यताओं और कार्यप्रणालियों का समुचित प्रदर्शन कर परिवर्तन ला सकते हैं।

महिला संवेदनशीलता के विकास में शिक्षक की भूमिका

महिलाओं से जुड़ी समस्याएं समाज में जीवन के हर क्षेत्र में व्याप्त हैं। इन समस्याओं को कम करने के लिए सबसे पहले समाज की युवा पीढ़ी की मानसिकता को बदलना आवश्यक है क्योंकि ये युवा अपने अभिनव सिद्धान्तों, विचारों और कार्यप्रणालियों से समाज में परिवर्तन ला सकते हैं। इसके लिए समाज को सुशिक्षित शिक्षकों की आवश्यकता है, जिन्हें महिलाओं से जुड़ी समस्याओं की गहरी जानकारी हो। बच्चों की आरंभिक शिक्षा–दीक्षा में शिक्षक की भूमिका अहम होती है, और उनके विचार व मान्यताएं युवा छात्रों की विचार प्रक्रियाओं में परिवर्तल ला सकते हैं। इसलिए एक शिक्षक को अपने कार्यकलापों, अभिवृत्ति, आचरण, दृष्टिकोण, मानसिकता, आदि किसी बच्ची की महिला भूमिका को आकार देने में सहायक हो सकते हैं। यह सुनिश्चित करने के लिए कि छात्र–छात्राओं को उनके लक्ष्य हासिल करने में समान अवसर मिले, शिक्षक और शिक्षिकाएं विभिन्न कार्यनीतियों का उपयोग कर सकते हैं। उन्हें महिला समस्या के प्रति गंभीर होना चाहिए। उन्हें महिला संवेदनशीलता से जुड़े पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों के साथ–साथ महिला समानता की शिक्षा भी दी जानी चाहिए।

बालिकाओं को उनके अनुभव और समस्याएं बताने का अवसर देना : शिक्षकों को बालिकाओं की बातों को सुनना चाहिए। छात्र–शिक्षक संबंध के बल पर शिक्षक महिला–पुरुष समानता पर छात्र–छात्राओं के अपनी राय बनाने में प्रभावकारी ढंग से उनकी सहायता कर सकते हैं। वस्तुतः, स्थानीय समाज और महिला–पुरुष समानता की विशेषताओं के ज्ञान की अपनी क्षमता के बल पर शिक्षक कक्षा और शिक्षा के परिवेश को लड़कियों के लिए अधिक से अधिक समावेशी बना सकते हैं।

महिला–पुरुष समानता के मापदंडों का कक्षा के अन्य मानदंडों से जोड़ना : महिला समावेशी शिक्षा को यदि सभी छात्रों के लिए शिक्षा के मानकों में सफलता से जोड़ा जाए, तो इस पर लोग ज्यादा ध्यान दे सकते हैं। इसलिए,

गुणात्मक और मात्रात्मक मापदंडों का विकास करने हेतु एक साथ मिलकर काम करना जरूरी है।

टिप्पणी

कक्षा में सभी छात्र–छात्राओं के साथ समान व्यवहार करना : शिक्षक को छात्र और छात्राओं से समान रूप से मिलना या बात करना चाएिह। सभी बच्चों को उनके नाम से संबोधित करना चाहिए। देखने में आया है कि शिक्षक और शिक्षिकाएं दोनों कक्षा को संबोधित करने के लिए अकसर लड़कों को बुलाते हैं, जो उचित नहीं है।

प्रश्नों का उत्तर देने के लिए पर्याप्त समय देना : किसी शिक्षक से मिलने पर कुछ छात्रों अथवा छात्राओं को किसी प्रश्न के उत्तर पर सोचने में अन्य छात्र और छात्राओं की तलुना में अधिक समय की जरूरत हो सकती है। ऐसे छात्रों से मिलने पर शिक्षक को उन्हें किसी प्रश्न का उत्तर देने के लिए थोड़ा समय देना चाहिए।

- **जाति चेतना का विकास**

प्रभावकारी शिक्षा की एक विशेषता जाति चेतना का विकास है, जिसमें कक्षा में सांस्कृतिक विविधता के साथ–साथ जातीय और नृजातीय विविधता को मान्यता देते हुए अध्यापन नीतियों का प्रोन्नयन किया जाता है। शिक्षक अपने पाठ्यक्रम में जातीय विविधता का समावेश, समावेशी शिक्षण नीतियों का उपयोग और जहां उपयुक्त हो वहां फलदायी कक्षा परिचर्चा का आयोजन कर सकते हैं। शिक्षक एक समावेशी कक्षा परिवेश के सृजन पर भी विचार कर सकते हैं।

कक्षा में विविधता की शिक्षा के लिए पर्याप्त संसाधन नहीं होते। शिक्षकों को विविधता की शिक्षा देने के संसाधनों का अभाव रहता है। मूल्यांकनात्मक चिंतन अभ्यासों और दूसरों के प्रति किसी की अपनी अभिवृत्ति से इन अनिच्छित समस्याओं से बचा जा सकता है। अपने और अपने छात्रों के जातीय और सांस्कृतिक विविधता से संबद्ध ज्ञान का संवर्धन करते हुए जाति पर चर्चा के कुशलतापूर्वक संचालन हेतु शिक्षक कुछ उदाहरणों और नीतियों पर विचार कर सकते हैं। उन्हें पाठ्यक्रम में कुछ ऐसी नीतियों को शामिल करना चाहिए, जिनमें पृष्ठभूमि अथवा रूपरंग से परे सम्मान, शिष्ट वार्तालाप, ईमानदारी, धैर्य, आदि का समावेश हो।

नीचे कुछ नीतियों का विवरण प्रस्तुत है, जिन्हें अपनाकर शिक्षक कक्षा में जाति भेद के विरुद्ध चेतना का विकास कर सकते हैं।

समावेशी कक्षा परिवेश

कक्षा के समावेशी परिवेश का तात्पर्य एक ऐसे परिवेश से है, जिसमें सभी छात्र–छात्राओं को लगे कि उन्हें बौद्धिक और शैक्षिक स्तरों पर सहायता मिल रही है, उन्हें कक्षा में पहचान व अपनेपन का बोध हो। ऐसे परिवेश तभी बने रह सकते हैं जब चिंतन, सम्मान और शिक्षा में उत्कृष्टता के मद्देनजर छात्र और शिक्षक मिलकर कार्य करें। शोधों से पता चलता है कि ऐसे शिक्षा संस्थानों के कई छात्रों को शिक्षा में बेहतर करने का पर्याप्त अवसर मिल जाता है, और वे तदनुरूप सफलता प्राप्त भी कर लेते हैं, जहां का शैक्षिक परिवेश सहयोगशील हो।

कक्षा में एक मैत्रीपूर्ण, सौहार्दपूर्ण और सहयोगशील परिवेश का सृजन कर छात्रों की शिक्षा का संवर्धन किया जा सकता है। समावेशन को प्रोत्साहन देने के लिए शिक्षकों को पाठ्यक्रम, पढ़ाई में दिये गए सबक के विकल्पों, चर्चा–परिचर्चा की अपेक्षाओं और निजी शैली समेत विभिन्न क्षेत्रों पर विचार करना चाहिए।

मानविकी विषयों और समाज विज्ञान के शिक्षक ऐसे विभिन्न उदाहरणों का पता लगा सकते हैं, जिनमें वंचितों के अनुभव हों। उन्हें उनके समकालीन राजनीतिक और सामाजिक समस्याओं का ज्ञान होना चाहिए। वहीं वे छात्रों की उनके विचारों और दृष्टिकोणों को शिष्टाचार और सम्मान के साथ सभी सहपाठियों से साझा करने में सहायता कर सकते हैं।

जाति समावेशी परिवेश के सृजन के कुछ उपायों का वर्णन यहां प्रस्तुत है–

सम्मानपूर्ण और समान सहभागिता को बढ़ावा देने हेतु कक्षा में वार्तालाप की व्यवस्था करना : समुचित आचरण के लिए शिक्षक कुछ मूलभूत नियम अथवा दिशा निर्देश तय कर सकते हैं। छात्र गतिविधि को प्रोत्साहन देने की एक नीति के रूप में छात्रों की एक सूची बना सकते हैं जो इन नियमों और निर्देशों के सृजन और रखरखाव में सहायता करें। इसके अतिरिक्त, छात्रों को प्रश्नों के उत्तर पर सोचने अथवा उत्तर देने से पहले नए प्रश्न लिखने के लिए कुछ समय दिया जाना चाहिए। शिक्षक इसके लिए भी निर्देश दे सकते हैं कि छात्र जो बोलना चाहें उसके लिए उन्हें संकेत किस प्रकार देना चाहिए। वहीं, कक्षा के नियमों के उल्लंघन की स्थिति में शिक्षक को हस्तक्षेप करना चाहिए।

चिंतन करना : कक्षा में जाति विषयक चर्चा–परिचर्चाओं तथा अन्य कार्यों में भाग लेते हुए शिक्षक अपनी अभिवृत्तियों, अनुक्रियाओं, धारणाओं और विषय वस्तुओं पर चिंतन और जाति से जुड़ी अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। इस क्रम में उन्हें जाति से संबद्ध समस्याओं पर अपना चिंतन जारी रखना चाहिए। उन्हें छात्रों की यह समझने में सहायता करनी चाहिए कि किसी की सोच को उसकी अपनी जातीय पृष्ठभूमि और उसकी अस्मिता, उसके संगी–साथियों, परिवार, अनुभव आदि के अन्य पक्ष आकार देते हैं।

विषय की चित्रण प्रक्रिया में सुधार करना : शिक्षक पाठ्यक्रम सामग्री में अलग–अलग संस्कृतियों और समाजों के चित्रण का समावेश कर सकते हैं। उन्हें सुनिश्चित करना चाहिए कि पाठों, स्थिति अध्ययनों और कक्षा के उदाहरणों में दृष्टिकोणों और चित्रणों का समावेश हो। इस पद्धति से छात्रों को पाठ्य सामग्री में स्वयं को पहचानने और अपने बारे में सोचने में सहायता मिलेगी।

कक्षा में एक सुरक्षित और शिष्ट परिवेश का सृजन करना : जाति और जातिवाद पर लाभप्रद चर्चा हेतु सौहार्दपूर्ण परिवेश का सृजन करने के लिए, शिक्षक कुछ आधारभूत नियम बना सकते हैं, जिनमें सुरक्षा, समावेशन और सम्मान को प्रमुखता हो। उन्हें अलग–अलग समूह बनाते हुए कक्षा में विश्वास और भरोसा कायम करने में सहायता करनी चाहिए। छात्रों को सम्मान के साथ असहमति प्रकट करने, प्रश्न पूछने, अपनी अनुभूतियां बताने और अन्य लोगों की अनुभूतियां सुनने को प्रोत्साहित करना चाहिए।

टिप्पणी

कक्षा में जातीय संघटन पर विचार करना : शिक्षक को कक्षा में जातीय संघटन की जानकारी होनी चाहिए और जाति पर बातचीत करते समय यह देखना चाहिए कि कक्षा में कौन है। वे इस पर अलग से विचार कर सकते हैं कि यदि कक्षा में अलग–अलग जातियों के कुछ छात्र हों, तो इस विषय पर चर्चा किस प्रकार शुरू की जाए।

शब्दों की व्याख्या करना : शिक्षक को कुछ समय निकाल कर शब्दों की व्याख्या करनी चाहिए। छात्रों को शब्दों में अंतरों समेत जाति और पूर्वाग्रह से जुड़े शब्दों का ज्ञान होना चाहिए। उदाहरणस्वरूप, अभिनति, पूर्वाग्रह, धारणाओं और विचार में अंतर होता है और इनमें से प्रत्येक को कौन सा बिंदु विशिष्ट बनाता है इसका ज्ञान जाति और जातिवाद पर संरचनात्मक वार्तालाप का एक महत्वपूर्ण आधार होता है। वहीं, यह समझना भी जरूरी होता है कि अप्रत्यक्ष अभिनति किस प्रकार विचार के अतीत में

अपेक्षाकृत अधिक प्रचलित प्रत्यक्ष रूपों से अलग रूप में दिखाई देती है। परस्पर बातचीत में अकसर उपयोग की जाने वाली अभिनति और पूर्वाग्रह अपने स्वरूप में संरचनात्मक अभिनतियों और पूर्वाग्रहों से भिन्न होते हैं।

वर्तमान को अतीत से जोड़ना : जातिवाद और अन्याय की सामयिक घटनाओं पर चर्चा करते समय, चर्चा को अतीत के किसी संदर्भ से जोड़ना लाभदायक होता है। इसलिए, शिक्षकों को जहां उचित हो, वर्तमान को अतीत से जोड़ने के लिए ऐतिहासिक पृष्ठभूमि प्रदान करनी चाहिए।

संचार माध्यमों को ध्यान में रखना : शिक्षकों को छात्रों को समाचारपत्रों, टेलीविजन, इंटरनेट, वीडियो आदि समेत संचार के सभी माध्यमों से गंभीरता से जुड़े रहने की सलाह देनी चाहिए। शिक्षक जातीय घटनाओं के समाचारों पर गंभीरता से विचार करने में छात्रों की सहायता कर सकते हैं। इसके लिए वे कक्षा में वीडियों क्लिपों, उद्धरणों आदि का उपयोग कर सकते हैं।

परानुभूति के लिए प्रेरित करना : छात्रों की करुणा और परानुभूति जाति और जातिवाद को समझने में उनकी सहायता करती हैं। शिक्षक को छात्रों को जातिवाद से प्रभावित लोगों से व्यक्तिगत रूप से बातचीत करने और साक्षात्कार, वीडियो, फोटो और रिकॉर्डिंग के माध्यम से उनकी भावनाओं और विचारों को समझने का अवसर देना चाहिए। शिक्षक छात्रों को इन अनुभवों पर चिंतन करने और विशेष रूप से अन्य लोगों की भावनाओं पर ध्यान देने के लिए भी कह सकते हैं।

2.4.6 संवेगात्मक सहायता के कौशल

संवेगात्मक सहायता की अवधारणा में नानाविध आचरणों का समावेश होता है, जिनमें नैतिक अनुशासन, अवधान, विश्वास, संवाद–संप्रेषण, सहानुभूतिशील सहभागिता, समानुभूति, दूसरों को बढ़ावा, प्रेम, सहृदयता, मित्रता, सम्मान की अनुभूति आदि मुख्य हैं। इस सहायता से छात्रों को अंतर्वैयक्ति संबंधों में सुधार, जीवन के कुछ लक्ष्यों के निर्धारण और कष्टों को कम करने में सहायक संवेगों और भावनाओं को व्यक्त करने का अवसर मिलता है।

संवेगात्मक स्तर पर सहायता करने वाले शिक्षक सहृदय और छात्रों की संवेगात्मक अपेक्षाओं के प्रति संवेदनशील होते हैं। वे छात्रों को समुचित दिशा निर्देश

देते, उनसे सकारात्मक ढंग से बातचीत और परस्पर व्यवहार तथा सम्मानपूर्ण भाषा का उपयोग करते और सभी छात्रों के प्रति सम्मान का भाव रखते हैं। उनका आचरण आदेशात्मक नहीं होता, वे छात्रों की आलोचना नहीं करते, न ही अनुशासन के लिए दंडात्मक पद्धति अपनाते हैं।

टिप्पणी

संवेगात्मक क्षमता का सृजन करना छात्रों के लिए लाभदायक होता है। यदि उन्हें संवेगात्मक स्तर पर सहायता मिले और वे स्वयं को समाज के अन्य लोगों से जुड़ा महसूस करें, तो पढ़ाई में उनका मन ज्यादा से ज्यादा लग सकता है। उनमें यह भावना विभिन्न उपायों की सहायता से जाग्रत की जा सकती है और माता–पिता ऐसा करते भी हैं। किंतु, कक्षा में छात्रों की संवेगात्मक अपेक्षाओं को पूरा करने में शिक्षक की भूमिका अहम होती है। इन अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए वह विभिन्न नीतियों का उपयोग कर सकते हैं, जिनमें से कुछ नीतियों का संक्षिप्त विवरण यहां प्रस्तुत है।

छात्रों की अपेक्षाओं पर ध्यान देना : शिक्षक को प्रत्येक छात्र के संवेगातमक कौशलों और खास अपेक्षाओं पर ध्यान रखना चाहिए। छात्रों की सहायता के लिए वह अपने पाठों को सुंदर और सुगम्य बना सकते हैं और तदनुरूप प्रयास कर सकते हैं। एक शिक्षक के रूप में उनकी उपस्थिति उन छात्रों में आत्मविश्वास को गहरा कर सकती है, जो कठिन परिस्थितियों से गुजर रहे हों। उन्हें छात्रों का मार्गदर्शन इस प्रकार करना चाहिए कि उन्हें लगे कि वह उनकी सहायता के लिए उनके साथ हैं। उन्हें शिक्षा के एक ऐसे परिवेश का सृजन करना चाहिए, जिसमें छात्रों की भावनात्मक अपेक्षाएं पूरी हों।

संवेगात्मक ज्ञान के संवर्धन में सहायता करना : संवेगात्मक ज्ञान का अर्थ एक स्वस्थ तरीके से किसी व्यक्ति की अपने संवेगों की पहचान करने, उन्हें समझने और व्यक्त करने की क्षमता है। शोधों से पता चलता है कि जिन छात्रों का संवेगात्मक ज्ञान गहरा होता है, वे स्कूल में बेहतर प्रदर्शन करते हैं। जो छात्र संवेगात्मक भाषा का उपयोग करने में सक्षम नहीं होते, उन्हें अपनी भावनाएं व्यक्त करने में कठिनाई होती है। उन्हें दूसरों की भावनाओं को समझने में भी कठिनाई हो सकती है। छात्रों के आत्मसम्मान के संवर्धन, आत्मविश्वास के विकास और उत्तेजनात्मक अनुक्रियाओं पर आत्मानुशासन को प्रोत्साहन के लिए उन्हें संवेगात्मक शिक्षा देना आवश्यक होता है। शिक्षकों को छात्रों को एक दूसरे के संवेगों–भावनाओं को समझना सिखाना चाहिए।

मित्रता कौशलों का विकास करना : मित्रता से छात्र परस्पर व्यवहार और बातचीत करना सीखते हैं। उन्हें आदान–प्रदान, सहयोग, संघर्ष निवारण आदि सीखने के अवसर भी मिलते हैं। शिक्षकों को छात्रों से बातचीत करते हुए मित्रता के कौशलों का विकास करना चाहिए। मित्रता के कौशलों की शिक्षा देने के लिए वे अलग–अलग गतिविधियों का आयोजन कर सकते हैं। उन्हें साथ मिलकर काम और एक दूसरे की सहायता करने वाले छात्रों की सरहाना करनी चाहिए। वह किसी छात्र को किसी दूसरे छात्र की सहायता करने के लिए कह सकते हैं। उन्हें छात्रों को टोलियों में काम करने की सलाह देनी चाहिए ताकि छात्रों को अपने सहपाठियों के साथ

टिप्पणी

बातचीत करने के साथ–साथ नेतृत्व कौशलों का विकास करने और अपनी क्षमताओं को समझने में सहायता मिले।

अपनी और अन्य लोगों की भावनाओं को पहचानना : समानुभूति अन्य लोगों की स्थिति और भावनाओं को पहचानने और समझने की क्षमता है। समानुभूति में अन्य लोगों की भावनाओं और समुचित अनुक्रिया के प्रति संवेदनशीलता प्रकट करना आता है। शिक्षक को छात्रों को सिखाना चाहिए कि वे अपनी और अन्य लोगों की भावनाओं के बीच भेद करने की क्षमता का विकास कैसे करें। छात्रों के संवेगात्मक ज्ञान के विकास के कौशलों के विकास में समानुभूति की शिक्षा की भूमिका अहम होती है। शिक्षक छात्रों के उनके संवेगों के प्रति अधिक से अधिक जागरूक होने और दूसरों को समझने में उस जागरूकता का उपयोग करने में उनकी सहायता कर सकते हैं। उन्हें छात्रों में समानुभूति से जुड़े आचरणों का विकास करना चाहिए।

समस्या समाधान के कौशलों का विकास करना : छात्रों की संवेगात्मक क्षमता के विकास में समस्या समाधान और संघर्ष निवारण के कौशलों की भूमिका अहम होती है। शिक्षक को छात्रों को इसकी शिक्षा देनी चाहिए कि कोई समस्या उत्पन्न होने पर वे स्थिति को कैसे संभालें और कोई समुचित समाधान कैसे ढूंढें। इससे किसी आवेगशील आचरण अथवा आक्रमण को कम करने में छात्रों को सहायता मिलेगी। शिक्षक को समस्या की पहचान करनी चाहिए। कक्षा की आम चुनौतियों के अधिक से अधिक समाधानों पर विचार करने और समाधान निकालने का अवसर देकर शिक्षक समस्या समाधान के कौशलों का विकास करने में छात्रों की सहायता कर सकते हैं। छोटे से छोटा विचार भी किसी समस्या के समाधान में सहायक हो सकता है, इसलिए उन्हें सोचने का अवसर देना चाहिए। शिक्षक छात्रों को बता सकते हैं कि हर समस्या का अंत होता है। वार्तालाप की गतिविधियां इस सीख को बेहतर ढंग से समझने में छात्रों की सहायता कर सकती हैं।

छात्रों की निजता और गोपनीयता

आज के पहचान की सुरक्षा और निजता के कानूनों के इस युग में, छात्रों की गोपनीयता और निजता को लेकर शिक्षकों का दायित्व पहले से कहीं ज्यादा बढ़ चला है। पूर्व में अपने विवेकाधिकार का उपयोग वे केवल छात्रों और उनके परिवारों के साथ काम करते हुए करते थे। आज इसके लिए कानून बन गए हैं। समाज में आज निजता और गोपनीयता को लेकर इतने संकट पनप चुके हैं कि शिक्षकों के लिए यह समझना कठिन होता है कि एक शिक्षक के रूप में उनकी सहायता की आवश्यकता कब पड़ेगी अथवा वे निजी विवेकाधिकार का उपयोग कब कर सकते हैं।

छात्रों के परिवारों की निजता और गोपनीयता की रक्षा के लिए राज्यों और केंद्र की सरकारों ने स्कूलों में छात्रों के शैक्षिक दस्तावेजों में उनकी जानकारी को गुप्त रखने हेतु कठोर नियमों का प्रावधान किया है। इन नियमों के तहत विवरण संग्रह प्रक्रियाओं का सृजन, जानकारी के खुलासे पर प्रतिबंध और जानकारी की गुणवत्ता की रक्षा की व्यवस्था दी गई है। छात्रों के सभी शैक्षिक दस्तावेजों की सुरक्षा निजता और गोपनीयता के इन्हीं नियमों के तहत की जाती है और इनके संरक्षण का दायित्व स्कूल के सभी कर्मचारियों का होता है। इसलिए, जो पदाधिकारी और उनके सहायक तथा स्कूल के

अन्य कर्मचारी इन दस्तावेजों का रखरखाव करते हैं, उनका इन नियमों को जानना अनिवार्य होता है, ताकि दस्तावेजों और उन नियमों में निहित सिद्धान्तों की गोपनीयता सुनिश्चित हो।

टिप्पणी

छात्र और उनके माता–पिता स्कूल को अपनी निजता का विवरण इस आशा से देते हैं कि स्कूल इस जानकारी का उपयोग छात्रों की अपेक्षाओं को प्रभावपूर्ण ढंग से पूरा करने में करेगा। स्कूल किसी छात्र की व्यक्तिगत जानकारी का रखरखाव और उपयोग शिक्षा के विभिन्न प्रयोजनों से करता है। स्कूल के कर्मचारी छात्रों की निजता और उनके परिवारों की सुरक्षा के प्रति उत्तरदायी होते हैं। हालांकि छात्रों और उनके परिवारों–अभिभावकों की निजता की सुरक्षा के नियम–कानून हैं, किंतु शिक्षण संस्थाओं में इसके लिए अतिरिक्त नीतियों और प्रक्रियाओं की आवश्यकता होती है।

गोपनीयता के सिद्धान्त

गोपनीयता के मूलभूत सिद्धान्त इस प्रकार हैं –

- किसी छात्र के निजता और गोपनीयता के अधिकार का सम्मान।
- छात्रों के उन संबंधों का सम्मान जिनमें व्यक्तिगत जानकारी साझा की जाती हो।
- छात्र और स्कूली समुदाय दोनों की गोपनीयता के महत्व का सम्मान।

गोपनीयता की रक्षा करना

एक सुदृढ़ गुरु–शिष्य संबंध कायम करने और उसे बनाए रखने के लिए गोपनीयता बहुत जरूरी है। यह आवश्यक है कि शिक्षकों को छात्रों के निजता व गोपनीयता के अधिकारों का ज्ञान हो और वे छात्रों से संबद्ध विवरण के गोपनीय स्वरूप का सम्मान करें। किंतु, छात्रों की सहायता अधिक से अधिक प्रभावकारी ढंग से करने के लिए शिक्षक अन्य लोगों से सलाह ले सकते हैं।

छात्रों के परिणामों में सुधार लाने के लिए शिक्षा प्रणाली को विवरणों की जरूरत होती है। शिक्षक विवरणों और आंकड़ों का उपयोग विभिन्न कारणों से करते हैं। किंतु यहां प्रश्न उठता है कि यह सुनिश्चित कैसे हो कि शिक्षकों को निजता और गोपनीयता के महत्वपूर्ण विवरणों में निर्णय लेने का ज्ञान है या नहीं और वे सुरक्षा की सर्वोत्कृष्ट कार्यप्रणालियों का पालन करते हैं या नहीं।

शिक्षकों को निजता, गोपनीयता और सुरक्षा में अंतर का ज्ञान होना चाहिए, तभी उन्हें अपने विषय के साथ सहजता महसूस हो सकती है। निजता और गोपनीयता पर विचार करते समय शिक्षकों को यह स्मरण रखना चाहिए कि छात्रों की सभी निजी जानकारी उनकी अपनी होती है और उसे गोपनीय ही रखा जाना चाहिए। इस जानकारी में परीक्षा के परिणाम, श्रेणियां और जनसांख्यिकीय जानकारी होते हैं। छात्रों को अपने शिक्षकों पर इस बात का भरोसा होता है कि वे उनके विवरण को गोपनीय रखेंगे और किसी को बताने में पूरी सावधानी बरतेंगे। इसलिए, उन्हें छात्रों के व्यक्तिगत विवरण की गोपनीयता बनाए रखनी चाहिए। कुछ विशेष स्थितियों में वे इसकी जानकारी छात्र के माता–पिता, अन्य शिक्षकों और स्कूल के प्रशासकों को दे सकते हैं।

शिक्षकों को इसकी जानकारी होनी चाहिए कि निजता, गोपनीयता और सुरक्षा

टिप्पणी

की नीति किस प्रकार कक्षा में उनके कार्य पर लागू होती है। उन्हें छात्रों के उन सभी विवरणों पर विचार करना चाहिए जिनका संग्रह वे कक्षा में करते हैं।

परीक्षाफल (श्रेणी) की गोपनीयता

छात्रों के माता–पिता को उनके परीक्षाफल (श्रेणी) की जानकारी देना शिक्षकों का दायित्व है, पर वे परीक्षाफल को आम नहीं कर सकते। वे परीक्षा के अंकों का खुलासा कर सकते हैं, किंतु अंकों से जुड़े छात्रों के निजी विवरण का खुलासा नहीं कर सकते।

गोपनीयता की रक्षा की कुछ नीतियां

शिक्षकों को किसी की जानकारी किसी दूसरे छात्र या किसी अन्य व्यक्ति को देने से पहले उस छात्र से संपर्क कर उसकी सहमति लेनी चाहिए।

छात्रों की सहायता अधिक से अधिक प्रभावकारी ढंग से करने के लिए शिक्षक अन्य लोगों से सलाह ले सकते हैं। शिक्षक किसी व्यक्ति को किसी छात्र के केवल उसी विवरण की जानकारी दे सकते हैं, जो उस छात्र के सर्वोत्तम हित में हो, और जब आवश्यक हो, तभी उसका नाम बता सकते हैं।

जानकारी की लिखित प्रति देने की बजाय शिक्षकों को अपने सहयोगियों से केवल मौखिक रूप से जानकारी साझा करनी चाहिए, किंतु उन्हें यह सुनिश्चित करना चाहिए कि जिन्हें वे जानकारी दें, वे उस जानकारी के गोपनीय बनाए रखें। किसी को छात्रों की जानकारी देते समय शिक्षकों को ध्यान रखना चाहिए कि वह सही हो।

अपनी प्रगति जांचिए

5. श्रवण प्रक्रिया के कितने प्रकार हैं?
   (क) दो (ख) तीन
   (ग) चार (घ) पांच
6. शिक्षक किस नीति की सहायता से एक समावेशी परिवेश का सृजन कर सकते हैं?
   (क) कठिनाई पर ध्यान देना
   (ख) छात्रों को पर्याप्त समय देना
   (ग) छात्रों के साथ संवाद–संप्रेषण बनाए रखना
   (घ) ये सभी

2.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ख)
2. (ग)
3. (ख)
4. (घ)

5. (ख)

6. (घ)

2.6 सारांश

टिप्पणी

भारत में शिक्षा, जाति और संस्कृति के बीच एक गहरा संबंध है। आज भी देश के भीतर कई समुदायों में बच्चों को स्कूल भेजने की कोई परंपरा नहीं है। इसके अतिरिक्त, ये परंपराएं उन स्थापित सामाजिक मानकों के साथ चलती हैं, जो बाल श्रम और स्कूल से वंचित बच्चों की अनदेखी करते हैं। स्कूल में भी महिला, जाति, आयु और सामाजिक स्थिति सब मिलकर शिक्षकों की पहचान को आधार देते हैं और इन कारकों का शिक्षकों के विचारों, अध्यापन–कला, व्यवहार व अभ्यास और छात्रों के साथ परस्पर क्रियाओं पर प्रभाव पड़ता है। इन सामाजिक कारकों का प्रभाव छात्रों पर भी पड़ता है।

भारत में जाति प्रथा को एक अति व्यवस्थित सामाजिक सोपान के रूप में चित्रित किया जा सकता है, जिसमें अलग–अलग सामाजिक स्थिति और सामाजिक अर्थ के साथ लोगों के विशाल अंतर्विवाही समूह निहित होते हैं। जाति प्रथा के मूल पारंपरिक व्यवसायों से जुड़े हैं, जिसके आधार इस प्रथा का चार वर्गों में वर्गीकरण किया गया है। पांचवें वर्ग को, जिसे पहले 'अछूत' कहा जाता था, इतना गौण माना जाता था कि उसे प्रथा में स्थान नहीं दिया गया। इस वर्ग को आज 'अनुसूचित जाति' की औपचारिक और तटस्थ संज्ञा दी गई है। यह वर्ग सामाजिक, शैक्षिक और आर्थिक स्तर पर पिछड़ा है।

संस्कृति सापेक्ष शिक्षा अध्यापन की एक कला है, जिसमें शिक्षा के सभी पहलुओं में छात्र–छात्रों के सांस्कृतिक संदर्भों को शामिल किया जाता है। शिक्षा की परंपरागत नीतियों में शिक्षक–छात्र गतिविधि पर बल दिया जाता है : शिक्षक विशेषज्ञ होते हैं और मानकीकृत परीक्षाओं के अनुकूल पाठ्यक्रम का सख्ती से पालन करते हैं, जबकि छात्र–छात्राएं ज्ञान अर्जन करते हैं। यह पद्धति पुरानी पड़ चुकी है।

कक्षा के बाहर शिक्षा की गतिविधियां छात्र–छात्राओं का ध्यान कक्षा की शिक्षा से खींच सकती हैं। किंतु, हाल के एक शोध के अनुसार कक्षा के बाहर के अनुभव और गतिविधियां कक्षा की शिक्षा पर अधिक से अधिक ध्यान देने के साथ–साथ अन्य कौशलों जैसे नेतृत्व, क्रांतिक चिंतन और तर्कशक्ति में सुधार लाने में भी सहायता करती हैं। कार्य अथवा प्रयोग–आधारित शिक्षा छात्रों की सकारात्मक सोच में सुधार लाने में सहायता करती है।

स्वस्थ और सकारात्मक अनुशासन अनुशासन का वह प्रारूप है, जिसका उपयोग स्कूलों और माता–पिता के बच्चों के लालन–पालन में किया जाता है, जो आचरण के सकारात्मक बिंदुओं पर केंद्रित होता है। यह इस सिद्धान्त पर आधारित है कि कोई भी बच्चा बुरा नहीं होता, केवल आचरण अच्छे और बुरे होते हैं। स्वस्थ और सकारात्मक अनुशासन का उपयोग करने वाले मानते हैं कि अच्छा आचरण बुरे आचरण छुड़ाते समय बच्चे को किसी प्रकार की मौखिक अथवा शारीरिक चोट पहुंचाए बिना सिखाया और प्रबल किया जाता है। स्वस्थ और सकारात्मक अनुशासन की प्रक्रिया में शामिल लोगों का मानना है कि वे समस्याओं को नजरअंदाज नहीं करते बल्कि स्थितियों को समुचित तरीके से संभालने में बच्चों से नरमी के व्यवहार के साथ उनकी सहायता करते हुए समस्या का समाधान अलग ढंग से करते हैं।

टिप्पणी

शांति शिक्षा में, शिक्षा कैसे दी जाए यह भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि शिक्षा क्या दी जाए। शिक्षाशास्त्र वह स्वरूप है, जिसे शांति शिक्षा के लिए अपनाया जाता है, और इसमें शिक्षण के वे उपागम और विधियां आती हैं, जिनका उपयोग शांति के शिक्षक करते हैं। कैसे का उत्तर हमें शिक्षाशास्त्र से ही प्राप्त होता है। शिक्षा के प्रत्येक संस्थान में, शिक्षकों से अपेक्षा की जाती है कि वे जो पढ़ा रहे हों उसके विषय, संरचना और स्वरूप पर विचार करें।

शांति शिक्षा के शिक्षाशास्त्र को लागू करने के लिए अलग–अलग मार्गों और अलग–अलग नीतियों की आवश्यकता होती है, क्योंकि इसका वास्तविक स्वरूप संपूर्णतावादी और सहयोगशील होता है। शांति शिक्षा का शिक्षाशास्त्र उपदेशात्मक उपागम से परहेज करता है, जिसका संबंध संप्रत्ययात्मक शिक्षा से होता है। शांति शिक्षाशास्त्र की नीति छात्रों को उनके अपने हेतु अनुभव के लिए बढ़ावा देना है – स्कूल में विभिन्न संदर्भों तथा जीवन के यथार्थ विन्यासों में शांति का शैक्षिक अनुभव। इस प्रकार, शांति का शिक्षाशास्त्रीय उपागम संपूर्णतावादी, सहभागी, सहयोगी, आनुभविक और मानवतावादी होता है।

परीक्षा का भय सभी आयु वर्ग के छात्र–छात्राओं में होता है। कुछ छात्र–छात्राएं इससे उबरने के लिए संघर्ष करते हैं और इस संघर्ष के क्रम में उन्हें दुश्चिंता घेर लेती है। कुछ मामलों में तो वे अवसाद से भी ग्रस्त हो जाते हैं। परीक्षा के इस भय के चलते छात्र कभी–कभी अपनी योग्यता के अनुरूप भी प्रदर्शन नहीं कर पाते। इस भय से उनमें किसी भयजनक स्थिति या वस्तु से बचने की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है, जिसके फलस्वरूप भय और भी गहरा हो जाता है।

पाठ्यपुस्तकों की व्याख्या शिक्षा के प्रयोजनों से लिखित पुस्तकों के रूप में की जा सकती है। पाठ्यक्रम और छात्र–छात्राओं की शिक्षा में पाठ्यपुस्तकों की एक रणनीतिक अवस्थिति होती है। पाठ्यक्रम के विकास के लिए पाठ्यपुस्तकें एक महत्वपूर्ण 'संबल' का कार्य करती हैं। शोध से यह भी पता चलता है कि पाठ्यक्रम में राजनीतिक और सैद्धांतिक संरचनाओं के बीच एक संबंध होता है, जिसका पाठ्यपुस्तकों के उत्पादन और उपयोग पर उल्लेखनीय प्रभाव पड़ता है।

श्रवण कौशल मानव जीवन के सभी पक्षों का एक अति महत्वपूर्ण कौशल है। सुनना एक क्रियाशील अथवा सक्रिय प्रक्रिया है, जिससे हम जो कुछ सुनते हैं उसका अर्थ निकालते, उसका मूल्यांकन करते और उसका उत्तर देते हैं। सफल लोग सामान्यतः अच्छे श्रोता होते हैं। वे अन्य लोगों को अपना पूरा ध्यान दे सकते हैं ताकि वे कठिन और तनावपूर्ण स्थितियों में अपनी आवश्यकताओं को समझें और सही प्रश्न पूछें। वे अन्य लोगों के साथ ठोस संबंध कायम करने के लिए अपने श्रवण कौशल का उपयोग भी कर सकते हैं।

स्वस्थ चेतना भावात्मक कुशलता और आत्मसम्मान को बढ़ावा देती है। यह छात्रों को यह समझने का सूक्ष्म ज्ञान देती है कि वे क्या हैं, वे अनुक्रिया क्यों करते हैं। वहीं, यह उन्हें आत्म–सुधार की दिशा में भी ले जाती है। छात्रों के लिए आत्मचेतना महत्वपूर्ण होती है। जिन लोगों में आत्मचेतना होती है, उनमें किसी लक्ष्य की प्राप्ति का विश्वास होता है, और यह शीलगुण छात्रों की उनके हर कार्य सफलता प्राप्त करने में सहायता करता है।

सामाजिक–आर्थिक स्थिति का चित्रण शिक्षा, आय और व्यवसाय के आधार पर किया जाता है और इसका छात्रों के कल्याण व शैक्षिक परिणामों पर गहरा प्रभाव पड़ सकता है। निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के छात्रों को स्कूल या कॉलेज में प्रवेश के समय कठिनाई का सामना करना पड़ सकता है। ये छात्र जब स्वयं को निम्नतर कामकाजी वर्ग के क्षेत्र में देखते हैं, तब बेचैन हो उठते हैं और ऐसे में उनके मन में पढ़ाई बीच में ही छोड़ देने की भावना पनप सकती है। इन छात्रों की शिक्षा की नीतियां अपेक्षाकृत अधिक सीमित हो सकती हैं और उनकी पढ़ाई की पद्धति अलग हो सकती है। इसके अतिरिक्त, निम्न और उच्च सामाजिक–आर्थिक स्थितियों के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धियों में गहरा अंतर होता है।

संवेगात्मक सहायता की अवधारणा में नानाविध आचरणों का समावेश होता है, जिनमें नैतिक अनुशासन, अवधान, विश्वास, संवाद–संप्रेषण, सहानुभूतिशील सहभागिता, समानुभूति, दूसरों को बढ़ावा, प्रेम, सहृदयता, मित्रता, सम्मान की अनुभूति आदि मुख्य हैं। इस सहायता से छात्रों को अंतर्वैयक्ति संबंधों में सुधार, जीवन के कुछ लक्ष्यों के निर्धारण और कष्टों को कम करने में सहायक संवेगों और भावनाओं को व्यक्त करने का अवसर मिलता है।

छात्रों के परिणामों में सुधार लाने के लिए शिक्षा प्रणाली को विवरणों की जरूरत होती है। शिक्षक विवरणों और आंकड़ों का उपयोग विभिन्न कारणों से करते हैं। किंतु यहां प्रश्न उठता है कि यह सुनिश्चित कैसे हो कि शिक्षकों को निजता और गोपनीयता के महत्वपूर्ण विवरणों में निर्णय लेने का ज्ञान है या नहीं और वे सुरक्षा की सर्वोत्कृष्ट कार्यप्रणालियों का पालन करते हैं या नहीं।

2.7 मुख्य शब्दावली

- **परिवेश** : वातावरण, माहौल।
- **सजग** : चेतन, जागरुक।
- **अर्जन** : ग्रहण करना।
- **आकस्मिक** : अचानक।
- **संवाद** : बातचीत, वार्तालाप।
- **संवर्धन** : बढ़ोत्तरी।
- **आत्मसात** : अपनाना।
- **अवसाद** : डिप्रेशन, उदासी।
- **आघात** : चोट।

2.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. कक्षा के बाहर शिक्षा से क्या तात्पर्य है? स्पष्ट कीजिए।
2. स्कूल स्तर पर परीक्षा भय के प्रमुख लक्षण कौन–से हैं?

टिप्पणी

3. द्वंद्व या संघर्ष की परिभाषा लिखिए।
4. शांति शिक्षक की क्या भूमिका है? स्पष्ट कीजिए।
5. श्रवण प्रक्रिया के कितने चरण होते हैं? बताइए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. शांति शिक्षा की पाठ्यक्रम प्रक्रियाओं की समीक्षा कीजिए।
2. लिंग, जाति, संस्कृति के लिए अनुशासन पद्धतियों का वर्णन कीजिए।
3. स्कूल स्तर पर तनाव, शारीरिक दंड, हिंसा और संघर्ष को दूर करने हेतु शैक्षणिक कौशलों का उल्लेख कीजिए।
4. शांति के मूल्यों को स्पष्ट करते हुए पाठ्यसामग्री के प्रयोग पर टिप्पणी लिखिए।
5. सामाजिक–आर्थिक, सांस्कृतिक, लैंगिक व जाति भेद के प्रति संवेदनशीलता को समझाइए।

2.9 सहायक पाठ्य सामग्री

- Burnley, Jen 1988 Developing Skills for International Understanding Journal of the WCCI, vol.2 (1) June 1988, PP.108-112
- Balassoriya A 5 2001 Learning the way to Peace-A Teacher’s Guide to Peace Education, Unesco, New Delhi.
- Carson, Terrance R. and Gideonse, Hendrik D. 1987 Peace Education and the Task for Peace Educators, WCCI.
- Gangrade K.D. 2001 Religion and Peace: A Gandhi Perspective, Gandhi Smriti and Darshan Smriti, New Delhi.
- Kaur B. 2006 Teaching of Peace and conflict and Pride- school Histories of the Freedom Struggle in India, Penguin Books India, New Delhi.
- Kumar K. 2006 Peace Lines, Penguin Publications, New Delhi.
- Kumar K 2007 Shanti Shiksha Aur Gandhi (In Hindi) Maharishi Valmiki College of Education, Delhi University.
- Mutart, Edmund, 1987 Pathways to Peace, Journel of WCCI (2) PP 33-36.
- Obach, Mifrando ,1987 Peace Education and children. A Structural Dialogue About Global Responsibility, Journael of WCCI, 3 (2) 48-67.
- Prasad D 2005 Education for Living Cretively and Peacefully, Spark India Hyderabad.